लीलाधर मंडलोई

वरिष्ठ लेखक। सन् 1953 जन्माष्टमी को छिंदवाड़ा, मध्य प्रदेश में जन्म। साहित्य के लिए अब तक क्रमशः पूश्किन, शमशेर, नागार्जुन, रज़ा, रामविलास शर्मा, दुष्यंत अलंकरण, वागीश्वरी तथा हिन्दी दिल्ली अकादमी का कृति सम्मान।

अब तक प्रकाशित काव्य संग्रह-घर-घर घूमा, रात बिरात, मगर एक आवाज़, क्षमायाचना, लिखे में दुक्ख, एक बहुत कोमल तान और महज़ शरीर नहीं पहन रखा था उसने । प्रतिनिधि कविताओं के चयन कवि ने कहा और देखा-अदेखा शीर्षक से। साथ ही गद्य की किताबें-दिल का क़िस्सा, काला-पानी, दाना-पानी, अर्थजल और कविता का तिर्यक।

इसके अतिरिक्त संपादित तथा अनुदित किताबें। और आदिवासी साहित्य पर काम के अलावा बच्चों के लिए किताबें।

विश्व पुस्तक मेला जर्मनी में भारत का प्रतिनिधित्व। इसके साथ ही क्रमशः फ्रांस, रूस, इंग्लैंड, ग्रीस, मिडिल ईस्ट सहित कई देशों की यात्राएं।

फिल्म निर्माण में अभिरूचि कुछ फिल्में।

सम्प्रति - ए-6 हुडको प्लेस एक्सटेंशन एंड्रयूजगंज, नई दिल्ली-49
फोन- 26258277 (निवास)

मूल्य : 150.00 रुपये (साधारण)
: 225.00 रुपये (सजिल्द)

ISBN 978-81-7007-215-7

श्रेष्ठ हिन्दी कहानियाँ (1980 - 1990) - लीलाधर मंडलोई

श्रेष्ठ हिन्दी कहानियाँ

(1980 – 1990)

सम्पादक
लीलाधर मंडलोई

पीपुल्स पब्लिशिंग हाउस (प्रा.) लि.

श्रेष्ठ हिन्दी कहानियाँ
(1980 - 1990)

संपादक
लीलाधर मंडलोई

पीपुल्स पब्लिशिंग हाउस (प्रा.) लि.
5-ई, रानी झांसी रोड, झंडेवालान, नई दिल्ली-55

प्रथम संस्करण, जनवरी, 2010

ISBN : 978-81-7007-215-7

मूल्य :
साधारण : 150.00
सजिल्द : 225.00

शमीम फैजी द्वारा एम.के. प्रिन्टर्स, 5803/6, न्यू चन्द्रावल, दिल्ली-110007 में मुद्रित
व पीपुल्स पब्लिशिंग हाउस (प्रा.) लि. 5-ई, रानी झांसी रोड, झंडेवालान,
नई दिल्ली-110055 द्वारा प्रकाशित।

प्रकाशकीय

पीपुल्स पब्लिशिंग हाऊस प्रा.लि. नई दिल्ली की श्रेष्ठ साहित्य प्रकाशन योजना के अन्तर्गत आज़ादी के बाद छय संकलनों में हिन्दी की श्रेष्ठ कहानियों का प्रकाशन किया जा रहा है। संकलनों में लेखकों का क्रम कहानी दशकों के अनुसार किया गया है, पर उनकी कहानियों को दशकों से मुक्त रखा गया है। संपादकों ने कोशिश की है कि लेखकों की यथासंभव श्रेष्ठ कहानियाँ चुनी जायें और संकलन में सभी प्रवृत्तियों का प्रतिनिधित्व हो सके। संकलनों की पृष्ठ संख्या को अतिविस्तार से बचाने के आग्रह में कुछ और महत्वपूर्ण लेखकों को शामिल नहीं किया जा सका। इसके लिए हमें खेद है।

आशा है ये संकलन पाठकों के लिए उपयोगी और सार्थक प्रमाणित होंगे।

–प्रकाशक

भूमिका

समकालीन कहानी ने कुछ पड़ाव हासिल किए। कुछ आंदोलन। समय–समय पर गंभीर चिंतन। बहस और मुबाहिसे। एक अंतराल भी। कोई आंदोलन नहीं। न ही कोई ऐजेंडा। लेकिन समकालीन कहानी ने अबाध यात्रा जारी रखी। कई महत्त्वपूर्ण कथाकार परिदृश्य में आए। उन्होंने कथ्य भाषा और शिल्प को यथासंभव बदलने का उपक्रम किया। और यह सब बिना वाद और आंदोलन के संभव हुआ। उनकी स्मृतियों में साठवे दशक का प्रस्थान बिंदु था। नेहरू युग का मोह भंग। सातवे दशक के चीन और पाकिस्तान के साथ हुए युद्ध। इसके अलावा अयाचित अकाल, अन्न की कालाबाज़ारी, मुनाफाखोरी, भ्रष्टाचार, शोषण, पूँजीवादी शक्ति का उदय, सांप्रदायिकता का उभार आदि का प्रभाव। इन तथ्यों के साथ असंतोष की चिंगारियाँ और नक्सलवादी आंदोलन की सातवे दशक में ही शुरुआत। इसी के बेकड़ाप में आठवे दशक की कहानियाँ अपना अस्तित्व अर्जित करती हैं। कहानियों में कई तहों को भेद कर पता चलता है कि उनमें विस्थापन, आतंकवाद, पृथकतावादी चेतना, जाति–वर्ग संघर्ष, पारिवारिक विघटन, लोकतंत्रीय क्षरण के भी गहरे संकेत विन्यस्त हैं। इन्हीं प्रभावों के बीच हमें कहानी में नागरिक दायित्व से लैस आदमी के दर्शन होते हैं। साथ ही उसके भीतर के स्खलन भी। कहानीकारों ने क्रांतिवादिता को दरकिनार कर सामाजिक अंतर्विरोधों की गहरी पड़ताल के साथ यथार्थ की परतों में उतरने का काम किया। उन्होंने अपने समय के सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक स्थितियों की समीक्षा की और जीवन की जटिलता को पहचाना। परंपरा और आधुनिकता के द्वन्द्व को पहचानने में कहानीकारों ने भीतरी ज़द्दोजेहद की और मानवीय संवेदना को समय के परिप्रेक्ष्य में नया आयाम देने की चेष्टा की। उनके भीतर एक नया आलोचनात्मक विवेक जन्म ले रहा था। वे अपने समय के यथार्थ की संश्लिष्टता को समझने की दृष्टि विकसित कर रहे थे। जीवन के जटिल

प्रश्नों को समझने में उनकी भाषा नया रूप धर रही थी। और फॉर्म को भी वे नए ढंग से अर्जित कर रहे थे। उनका भाषिक मुहावरा उनकी पहचान बनने की ओर सशक्त क़दम रख रहा था। इन कहानीकारों के सामने प्रगतिशील और जनवादी कहानियों वाला न तो सीमित यथार्थ था न समय। वे अपने संघर्षशील जातीय बोध की परंपरा के आलोक में नए जीवन को पकड़ रहे थे। लेकिन मजदूर, दलित, स्त्री, अल्पसंख्यक और आदिवासी समाज भी इनकी निगाह में था। पूँजीवाद के निर्मम और क्रूर व्यवहार ने अमीरी-गरीबी के बीच के फर्क को बढ़ाने के लिए जिस तरह सत्ताओं को लगभग रेहन रख लिया था और इसके दुष्परिणामों में राजनीति जिस तरफ प्रयाण कर रही थी, कहानीकारों ने उसे चीन्ह लिया था और वे इस बदलाव को भी कहानी में दर्ज़ कर रहे थे। चूंकि इस दौर में कोई राजनीतिक आंदोलन न था न ही संघर्ष का कोई ब्लू प्रिंट, इस दृष्टि से यह समय जटिल था। बाजार अपने पाँव बढ़ा रहा था। बहुराष्ट्रीय कंपनियाँ अपना ख़तरनाक जाल फैला रही थीं और शेयर मार्केट विश्व पूंजी और कार्पोरेट घरानों का बंधक हुआ जा रहा था, तब ऐसे में कहानी के सामने अनेक चुनौतियाँ दस्तक दे रही थीं। इन्हीं सब उपस्थित या आगत दबावों के बीच आठवे दशक की कहानियों को अपना रास्ता बनाना था। यह संतोष का विषय है कि इस दौर की कहानियों ने इन तमाम चुनौतियों के बीच अपना निजी चरित्र गढ़ा। जातीय स्मृति के साथ ही ऐतिहासिक बोध की संगति ने इन कहानियों को एक नई अस्मिता दी।

आठवे दशक की चर्चा करते हुए मैं यह बात स्पष्ट करना चाहता हूँ कि मैंने जिन कहानीकारों का चयन किया है, वे इस दशक में ही चर्चित हुए। उनकी कहानियों को एक मकाम मिला। ये और बात है कि चयनित कहानियाँ आठवे दशक के कुछ बाद की भी हों लेकिन हमारी स्मृति में कहानीकारों की सर्वाधिक ख्यात कहानी ही रही। ऐसा आग्रह कहानीकारों का भी था और प्रकाशक का भी। सो चयन में ऐसा कुछ हुआ तो अन्यथा न लें। प्रयास सिर्फ इतना था कि पाठकों को बेहतर या कहें सर्वश्रेष्ठ कहानियाँ मिल सकें। एक बात और कहानियों को दशकों में बाँधने का शिल्प मुझे हमेशा से नागवार गुजरता रहा है लेकिन इस योजना के रूप में ही सही, मैं चाहता हूँ कि कहानीकारों की ख्यात कहानियों को एक जगह दे सकूँ। इस बात का स्वीकार भी मुझे जरूरी लगता है कि 12-13 कहानियों का चयन करते हुए कुछ कहानीकारों को छोड़ना पड़ा। लेकिन यह सच है कि जब दो कहानियाँ आमने-सामने हों तो एक छूट ही जाती है। बहुत मुमकिन है कि कुछ कहानियाँ आने से छूट गईं हों लेकिन यह एक स्वाभाविक प्रक्रिया है। किसी भी चयन में कुछ और आने की संभावना सदैव बनी रहती है। और मैं भी इस द्वन्द्व का शिकार रहा। लेकिन मेरे सामने एक तरफ योजना की सीमा थी तो दूसरी तरफ यह कि इन कहानियों को वांछित जगह और आकाश क्यों न मिले? सो

अच्छा या आधा-अधूरा सही यह चयन पाठकों के सामने है। कहना न होगा जो अंतिम निर्णायक हैं और अद्‌भुत क़द्रदान। वे कहानी की राजनीति में नहीं उसके अवदान पर जाते हैं।

इस चयन में जिन कथाकारों ने अपनी प्रतिनिधि कहानी से परिदृश्य को रोशन किया है, वे हैं-अरूण प्रकाश (भैया एक्सप्रेस), असगर वजाहज (होजवाज पापा), संजीव (अपराध), स्वयं प्रकाश (पार्टीशन), उदयप्रकाश (तिरिछ), विष्णु नागर (पैंट), शशांक (दर-ब-दर), अखिलेश (चिट्‌टी) महेश कटारे (मुर्दा स्थगित), प्रियवंद (खरगोश), शिवमूर्ति (तिरिया-चरित्तर), राजेंद्रदानी (इस सदी के अंत में एक सपना) और हरिभटनागर (ग्रामोफोन)। यह एक उर्जस्वित कथासंसार है। इन कहानियों में मेरा प्रवेश एक पाठक की तरह बार-बार हुआ। एक पोएटिक डिस्टेंस था मेरे और कहानी के बीच। इसलिए बाधारहित पर्यावरण था और मेरा मानस। मैंने अनेक पाठ संभव किए और भीतरी तहों में आवाजाही का जोखिम भरा लुत्फ उठाया। इन कहानियों से लौटने के अनुभव जितने मारक थे उतने ही विचारोत्तेजक। भैया एक्सप्रेस में अरूण प्रकाश कथा और भाषा का एपिकल फॉर्म खड़ा करते हैं। इसे पढ़ते हुए भूख, बेरोजगारी, दैन्य और विस्थापन की एक यथार्थ फिल्म चेतना में अमिट रूप में अंकित हो जाती है। बतौर पाठक मैं अपने को बिशुनदेव पाता हूँ (मृत) तो कभी राम देव। बिहारी भैय्या की जगह मैं होता हूँ और क्षेत्रीयता नदारद। मैं पंजाब का नहीं दुनिया के किसी भी जगह के आतंकवाद में बिशुनदेव की तरह अपने को मरता हुआ पाता हूँ। मैं पीछे छूट गए भैया-भौजी की मर्मांतक पीड़ा को अवचेतन में लिए पंजाब नहीं समूची दुनिया में अपने को पाता हूँ। कथा में आया वास्तविक लोकेल, भैय्या लोगों के प्रति अनुदारता-अपमान, सरहद का भय, भाषा में छिपा सच जैसे पूरी दुनिया के ऐसे ही शोषित-उपेक्षित और प्रवंचित लोगों का यथार्थ बन जाता है। इस यथार्थ में कहीं छिपी वह मानवीय करुणा भी जो मनजीत कौर याकि सरूप (सरपंच) में उपस्थित है और जीवन का भरोसा। यातना और मानवीयता इसी तरह सार्वदेशिक और सार्वकालिक होती है। इसे पढ़ते हुए जैसे मैं देश-देशांतर की यात्राओं पर निकलता हूँ। और एकाएक रू-ब-रू होता हूँ असगर वजाहज के 'होजवाज पापा' से। दूर देश। हंगरी। 84 वर्षीय बूढ़ा। उसकी बेटी। गरीबी रेखा के इतने नीचे कि बूढ़ा अस्पताल से मिले भोजन से चुराकर अपनी बेटी को ब्रेड और अन्य वस्तुएँ सरकाता। अस्पताल इतनी सुरक्षित जगह कि वहीं रह जाने का ख्याल कि बाहर अंर्तहीन संघर्ष। मारिया और हायनिका नर्सें भी गरीब। हायनिका कुल मिलाकर फ्लेट की किश्तें चुकाने का स्वप्न देखती। रोज की नौकरी के लिए छह घंटों की यात्रा। इस इंसानी जद्दोजेहद को किसी देश, किसी काल, किसी भाषा विशेष से जोड़कर कैसे देखा जा सकता है। जीवन भर की हाड़तोड़ मशक्कत का हासिल जब

कुछ नहीं तो एक आम सपना बूढ़े पापा का। लोटो लॉटरी और सौ मिलियन फोरेंत। इतना पैसा ज़िंदगी के आखिरी एक डेढ़ साल में भी पा लेने की लालसा। एक आम फ़हम ज़िंदगी। कहीं भी एक सी। और वहाँ भी कहानी का नायक मैं। संवेदनशील। बूढ़े के प्रति समर्पित। उसकी चिंता में। मानो उसका सगा। ऐसे पात्र दुनिया में हर कहीं सामने आ खड़े होते हैं और वैश्विक चेतना मनुष्यता के धरातल पर अंततः एक सी होती है। इन दोनों कहानियों में अपनी-अपनी तरह के विस्थापन हैं। भीतरी होते हुए भी बाहरी हैं और बाहरी होते हुए बहुत भीतरी। करुणा इन कथाओं में धातु की तरह सतत् चमकती है। कहना न होगा एक तरह की असुरक्षा, भय और असहायता के तत्त्वों के बीच इनके किरदार हैं जो जिंदगी को सकारात्मक ढंग से लेते हैं और नकारात्मकता भी उनमें कम नहीं। स्वयं प्रकाश की 'पार्टीशन' को इस धरातल पर देखना एक पृथक् मारक सत्य है। 'पार्टीशन' में जिस वृतांत से हम रू-ब-रू होते हैं उसे इतिहास बोध के साथ ही पढ़ा जा सकता है। कुर्बान भाई की कहानी के दो मार्मिक धरातल हैं जहाँ एक ओर भारत-पाक विभाजन से उपजी असुरक्षा का द्वन्द्व है और किसी एक देश को चुनने का भीतरी संघर्ष जिसमें धर्म सामने है। अंततः वह देश को चुनता है। सबकुछ लुट जाने के बाद किसी तरह एक दुनिया बनाता है और अपने विश्वासों की धर्मनिर्पेक्ष जीवन की चाहत में अपना मनमुआफिक समाज रचता है और अंततः उस रास्ते चल पड़ता है जो साम्प्रदायिकता का निषेध करती है। वह हमख्याल लोगों में एक रोशनी बन उठता है जो साम्प्रदायिक ताकतों को नागवार लगता है और वे उसे मुस्लिम क़रार दे देती हैं। सत्ता उसके विरुद्ध हो जाती है और वह अकेला। अंततः प्रगतिशील बनता एक सच्चा इंसान कदाचित पुनः भयवश टोपी पहनकर मस्जिद जाने लगता है। यह क्रूर और भयावह यथार्थ है। इसमें बनती-बिगड़ती दुनिया का निर्मम आख्यान है। जिसे स्वयं प्रकाश ने कथा शीर्षता दी। यह इस विषय पर लिखी एक अविस्मरणीय मार्मिक कथा है जो इतिहास की है, इतिहास है और उस पर एक तमाचे की तरह उछरी है।

उदय प्रकाश इस दौर के अत्यंत प्रतिभाशाली कथाकार है। 'तिरिछ' ने समकालीन कथा को कथ्य, भाषा और शिल्प के स्तर पर यकीनन एक प्रस्थान की तरफ मोड़ा है। फंतासी का इतना अद्‌भुत प्रयोग कम कथाकार कर पाते हैं। स्वप्न के भीतर चलती एक भयावह फंतासी को पढ़ना मानो अपने समय के द्वन्द्व, भय, अनिश्चय, असहायता और असुरक्षा से रू-ब-रू होना है। 'तिरिछ' को लोक से उठाकर एक आधुनिक मिथक में बदल देने की कला में सिद्धहस्त उदय प्रकाश तमाम तरह की न्यायिक, सामाजिक, राजनीतिक और आर्थिक सत्ताओं को जिस तरह एक्सपोज करते हैं उन्हें तह-दर-तह ही पढ़ा और समझा जा सकता है। और जो सिर्फ अनेक पाठों में संभव होता है।

संजीव की कहानी 'अपराध' एक सर्वस्पर्शी वैचारिक रचना है। सिद्धार्थ की उपाधि से आभूषित नायक (मैं) कंचनजंघा हवेली का ऐसा मिसफिट किरदार है जो सत्ता से असहज है। जबकि पूरा परिवार सत्ता के चरित्र और खेल में आकंठ लिप्त है। नायक प्रेसीडेंसी कालेज में एक अनुकूल वातावरण पाता है और सचिन-संघमित्रा का घर, जो वैचारिक केंद्र है। मार्क्सवाद से उसका परिचय। उसके आस्था और व्यवहार में तब्दीली। हवेली को इसकी खबर और चिंता। साथ में साजिश। उसे पुलिस के चरित्र की क्राइम स्टडी पर लगा दिया जाता है। उसके साथी जबकि सत्ता की क्रूरता के शिकार। नायक के पिता उसे उसकी वैचारिक तब्दीली के आस-पास एक धूर्त रचना के तहत कई यूनियन में ओहदे दिलवाने के काम में सक्रिय हो जाते हैं। सचिन और संघमित्रा सत्ता के कुचक्र में गायब हो जाते हैं। एक लंबे समय के बाद अपनी क्राइम स्टडी के सिलसिले में सचिन से सेलुलर जेल में मुलाकात होती है और बातचीत। सचिन नायक की स्टडी और उसके पीछे की कारण कथा को पढ़ लेता है। वह जर्जर अवस्था में भी स्वाभिमान से भरा है। और सचिन की शोध फाइल पर न केवल थूकता है वरन फाड़कर बर्बाद कर देता है। उसे वहाँ संघमित्रा की कहानी मालूम होती है और वह भीतर तक हिल जाता है। वहीं उसके भीतर द्वन्द्व जन्म लेता है और अपराध बोध। लौटते हुए वह अपनी शोध फाइल गंगा में फेंक देता है। यह कहानी मार्क्सवाद के साथ हुए घात-प्रतिघात, पराभव और साजिश का पर्दाफाश करती है। नायक को लगता है कि वह अपने परिवार के साथ मार्क्सवाद के विरुद्ध रचे षड्यंत्र के अपराध में शामिल था। नायक को संघमित्रा का जुमला हॉट करता है-'अपराध खत्म करना है तो नस्ल बदल डालो।' यह कहानी एक विरल कथानक को न केवल सामने लाती है अपितु बदलते समय में मार्क्सवादी संघर्ष की जरूरत और दशा-दिशा पर रोशनी डालती है। भाषा, संवाद और शिल्प के अलावा राजनीतिक विचार के लिए यह कहानी एक नया रास्ता बनाती है।

समकालीन कहानी में एक परंपरा परसाई और श्रीलाल शुक्ल की है। जिसमें विष्णुनागर का नाम प्रमुख है। इन दोनों के बाद विष्णुनागर ने करुणा को अपनी कहानियों में एक नया आयाम दिया। व्यंग्य की खिलंदड़ी धातु से कथा को एक विरल ऊष्मा और चमक भरने की सलाहियत नागर की विशिष्टता है। वे दुःख को मजे लेकर कहने की कला में माहिर हैं। मध्यवर्गीय जीवन के दैन्य और उससे उपजी विडंबना को केंद्र में रखकर 'पैंट' कहानी में, उन्होंने एक मध्यवित जीवन भोगी आदमी की पीड़ा को मूर्त किया है। कहानी का नायक एक बार बहुत अधिक पैसे आ जाने पर एक नई पैंट सिलवाता है लेकिन कमीज और चप्पलें पुरानी हैं। उनके साथ पैंट पहनने पर जग

हँसाई के डर से वह आत्मिक द्वन्द्व में इतना घिर जाता है कि उसे न पहन पाता है न उससे निजात पा सकता है। इस कहानी को पढ़ते हुए एक पल को पेखव की 'क्लर्क की मौत' का क्लर्क किरदार माद आता है। कथा भूमि भिन्न और कारुणिक है। और भारतीय मध्यवर्ग के क्रूर यथार्थ को नुभाया करती है। इस कहानी में जो विडंबना है वह समूचे मध्यवर्ग की समानधर्मा तकलीफ को ट्रांसेड करती हुई एक अनूठी कथा बन जाती है। इसे परसाई परंपरा को कथा प्रविधि और शैली के आलोक में पढ़ना समीचीन होगा। कहना न होगा कि कथा में व्यंग्य का प्रयोग विरले कथाकार ही आज तक कर पाए हैं। विष्णुनागर की यह कथा समता उन्हें अलग से पढ़ने की माँग करती है।

शशांक की 'दर-ब-दर' जीविका के प्रसंग में विस्थापन की यंत्रणा का मूर्त दस्तावेज़ है। मितकथन और मंथर गति में दर-ब-दर होने की यातना को कथा में अत्यंत पोएटिक अंदाज में जिस तरह से छोटे-छोटे सधे वाक्यों में लिखा गया है, हठात् परसाई की वाक्य रचना का शिल्प याद आता है। शशांक मेें विषय में उतरने की गहरी क्षमता है वे पंक्तियों और उससे बाहर दुख की रेखाओं को बिंब रचना में जिस तरह से पकड़ते हैं वह उनकी कलात्मक क्षमता को भासमान करता है। मैं और दुबे जी की दिल्ली में जो त्रासदी है, उसे अंतर्भूत करती यह कथा एक ऐसे संकट की ओर इशारा करती है जिसमें आजादी के बाद का समाज क्रमिक और तीव्रगति में अभाव, दैन्य, बेरोजगारी और भूख को सुरसा की तरह मुँह फैलाए पाता है। दूसरी ओर से यह अद्भुत मानवीय संबंधों की गाथा भी है। आज के नामुराद् महानगरीय जीवन में, इस कथा में असहायता के बीच जीने की जिजीविषा और संघर्ष की सकारात्मक अभिव्यक्ति है।

इसी कथावस्तु की एक और मार्मिक कथा अखिलेश की 'चिट्ठी' में है। कथा शिल्प प्रयोगात्मक है। फ्लेश बैक में आर्थिक विपन्नता के शिकार स्वप्नजीवी विद्यार्थी हैं। उनके भीतर सत्ता को लेकर एक ओर विद्रोह है तो दूसरी ओर एक खास ढंग का बेलौस खिलंदड़ापन। जीवन के प्रति नए वैचारिक दृष्टिकोण, उनको लेकर बहस का गंभीर शिल्प भी। विनोद, कृष्णमणि, विनोद, उपमा, दीनानाथ, त्रिलोकी, मदन और प्रदीप आदि का एक ऐसा अयाचित-आत्मीय परिवार जिसमें एक से स्वप्न, संघर्ष और प्रेम के प्रतिमान हैं। वे लगभग एक ही फॉर्म में त्रासद मोड़ को पाते हैं। स्वप्नभंग और क्रूर यथार्थ के साक्षात्कार में उन्हें बेरोजगारी और आर्थिक विपन्नता में शहर छोड़ गाँव लौटना पड़ता है। वे जीवन में कुछ बेहतर और मनोनुकूल होने पर चिट्ठी लिखने का वादा करते हैं। मर्मांतक प्रसंग यह कि कोई एक भी चिट्ठी अभी तक लिखी न जा सकी। यह हमारे समाज और सत्ता के कुत्सित चरित्र और भारतीय लोकतंत्र की उदासीनता पर एक तीखी टिप्पणी करती प्रासंगिक कथा है।

महेश कटारे की 'मुर्दा स्थगित' 2वीं सदी की लोकतंत्रीय व्यवस्था के बखिये उधड़ेती एक ऐसी कहानी है जिसमें 16वीं से 18वीं सदी के सामंती मूल्यों का साम्राज्य है। महाराजा का वैभव है। महाराजा की सत्ता है। महाराजा की सरकार है। कलेक्टर, कमिश्नर, पुलिस अधिकारी, निर्वाचित नेता सभी महाराजा के हैं। महाराजा और सरकार भूख, गरीबी, अन्याय, अनाचार, सूखा, अकाल, विरोध, खून-खराबे आदि के बीच भी महाराजा हैं नख से शिख तक। लोकतंत्र मात्र चुभलाने का विषय है। आम आदमी दृश्य में इतना असहाय और अदृश्य मानो एक मुर्दा जो महाराजा के यहाँ भव्य शादी में अंतिम संस्कार के लिए स्थगित। यहाँ तक लोकतंत्र के चौथे स्तंम्भ अखबार तक अपने उद्देश्य से स्थगित और जय-जयकार में डूबे हुए। इसमें फिल्म की अपूर्व संभावना विन्यस्त है और इसका वितान प्रबंधात्मक काव्य के अनकरीब है। अनेक दृश्य विधान, साउंडस, लाइट्स, उपकथाओं और वेकग्राउंड स्कोर लिए यह हमारे समय का एक यथार्थ आख्यान है पहली बार इस रूप में। इसे पढ़ना जैसे लोकतंत्र के मर्सिये में डूबना-उतराना है।

राजेंद्र दानी की कहानी 'इस सदी के अंत में सपना' एक ऐसी भय कथा है जो फंतासी में अनोखा रूपाकार पाती है। अकेलेपन के संत्रास, अभाव के करुण संगीत और अंधकार की मार्मिक सिफंनी में डूबी यह कहानी 2वीं सदी की जनसामान्य जिंदगी का उजागर करती है। इसे पढ़ते हुए मुक्तिबोध के ब्रह्मराक्षस की याद दूसरे संदर्भ में आती है। फ्रेंकलिन का अदृश्य दु:ख जो कि अत्यंत मारक है। किस तरह गिरीश को स्थानांतरित होता है, उसे इसे पढ़ना लोमहर्षक अनुभव है। साँप दरअसल 2वीं सदी का वह चरित्र है जो हर वक़्त आपकी छाती पर डोलता है लेकिन काटता नहीं और काटने के डर की प्रत्याशा में क्रमश: आदमी का नैसर्गिक और संघर्षशील जीवन ख़त्म होता है। फ्रेंकलिन और गिरीश के बीच की यह कथा मानवीय भी है और सामाजिक-राजनीतिक भी। इसके भीतरी पर्दे में विश्व राजनीति, पूँजी, अस्त्र-शस्त्र सत्ता, अर्थ प्रपंच सभी कुछ हैं जो प्रतीकों और बिंब में है। इसे पढ़ना जैसे आत्मा की स्केनिंग करना है।

हरि भटनागर की कहानी 'ग्रामोफोन' निम्नवर्गीय जीवन के जाफर मियाँ के द्वन्द, अंतद्वन्द, प्रेम, मित्रता, उसके साथ हुए अन्याय-अपमान का ऐसा जीवंत दस्तावेज है जिसमें उसके संघर्ष की अनोखी प्रविधि है। हरि विषय में इस तरह प्रवेश करते हैं कि अविश्वसनीय लगता है कि इस कथा में जो संभावित सपाटपन था उसे आपरेट करते हुए वे ऐसे औजारों को ईजाद करते हैं कि कहानी हठात् एक भिन्न और असंभावित ऊँचाई को प्राप्त होती है। अमीर-गरीब मित्रों के नैसर्गिक चरित्र के दो विपरीत ध्रुव जिस

तरह से स्थापित हुए हैं वे एक साधक कथाकार के बलबूते की बात है। प्रेम और घृणा की दो प्रवृत्तियों को जिस तरह आमने-सामने रखकर रचा गया है वह एक कठिन काम है। किरदारों का सजीवीकरण हरि की पहचान रही है। उनके पात्र कथा से अधिक वास्तव होते हैं। जाफर मियाँ को उन्होंने इतना सजीव किया है कि वह घर या पड़ोस का यथार्थ पात्र लगता है। पाठक उसकी कथा पढ़ते हुए खुद को उसके दुख-सुख, जय-पराजय और प्रेम-घृणा में शामिल पाता है। 2वीं सदी में बनते पूँजीवादी मनुष्य और परंपरा से प्राप्त नैतिक मानवीय मनुष्य की लगभग अंतिम उपस्थिति को संकेतित करती यह कथा 2वीं सदी के अयाचित बदलाव को क़ामयाब ढंग से प्रकाशित करती है।

इस चयन में एक ईमानदार कोशिश है। पाठकों के प्रति गहरी निष्ठा और प्रतिबद्धता। बहुत थोड़े में कहानियों पर कुछ रोशनी डालने का आधा-अधूरा ही सही एक छोटा सा इरादा। समीक्षा और संपादकीय के बीच के फर्क को समझते हुए यदि इन कहानियों को पढ़ा गया तो मेरे लिए संतोष की बात होगी।

–लीलाधर मंडलोई

अनुक्रम

भैया एक्सप्रेस

–अरुण प्रकाश

इज़ ही ए भैया?

ट्रेन की रफ्तार तेज होती जा रही थी। दरवाजे से लटके रामदेव के लिए धूल भरी तेज हवा में आँख खुली रखना मुश्किल था। कब तक लटका रहेगा बंद दरवाजे पर? रामदेव ने दरवाजे पर जोर से थाप मारी। उसके कंधे से लटकता झोला गिरते–गिरते बचा।

कुछ देर बाद दरवाजा खुला। वह सँभलता हुआ अंदर घुसा और दरवाजा भिड़ाकर डिब्बे के गलियारे में गमछे से मूँगफली के छिलके और सिगरेट के टोंटों को हटाने लगा। दरवाजा खोलने वाले फौजी ने घृणा से मुँह बिचकाया 'भैणचो..मरने चले आते हैं! ये रिजर्वेशन का डिब्बा है। तेरा रिजर्वेशन है?'

रामदेव चुप! अठारह साल के साँवले, पतले रामदेव के लिए यह पहली लंबी यात्रा थी। अब तक उसने तिलरथ के अगले स्टेशन बरौनी तक ही रेल यात्रा की थी। रिजर्वेशन से उसका पाला ही नहीं पड़ा था। पहली दफा वह बिहार तो क्या, अपने जिले से भी बाहर निकला था। अपने भाई विशुनदेव से उसने जरूर सुन रखा था कि पंजाब जाने में क्या–क्या परेशानी होती है। दिल्ली होकर पंजाब जाने में सुविधा होती है। और, आसाम मेल दिल्ली जाती है। बरौनी स्टेशन पर डिब्बे में लोग बोरे में सूखी मिर्च की तरह ठूँसे जाते थे। आखिर ट्रेन खुल गई तो जो डिब्बा सामने आया, उसी में दौड़कर लटक गया था।

'टिकट है!' रामदेव ने बमुश्किल कहा।

'टिकट होने से क्या होता है? यह रिजर्वेशन का डिब्बा है, समझे?'

अब रामदेव क्या करे, चुप, डरी आँखों से फौजी को देखता रहा। पुरानी बेडौल पैंट और हैंडलूम की बेरंग शर्ट पहनकर रामदेव अपने मोहल्ले में ही आधुनिक होने का स्वांग कर सकता था। इस नई दुनिया में सारी चीजें अचंभे से भरी थीं।

कुर्ते और शलवार में लिपटी, सामने के बर्थ पर लेटी औरत ने अंग्रेजी उपन्यास को आँखों के सामने से हटाया और उस फौजी से पूछा, 'सिविल कंपार्टमेंट इज लाइक धर्मशाला...इज ही ए भैया?'

'हाँ लगता तो है!' फौजी भुनभुनाकर रामदेव की ओर मुखातिब हो गया, 'तुमको कहाँ जाना है?'

'पंजाब।'

रामदेव को लगा कि वह यहाँ बैठा रहा तो इन बड़े लोगों की नजर में चढ़ा रहेगा। वह उठा और बाथरूम के सामने वाले गलियारे में अंगोछा बिछाकर झोले का तकिया बनाकर लेट गया। ट्रेन में घुसने से लेकर पिछले एक सप्ताह तक के दृश्य उसकी आँखों के सामने घूम गए।

दसवीं का इम्तिहान खत्म होते ही माई पंजाब जाने-आने के लिए पैसे का इंतजाम करने लगी थी। गाँव का कोई आदमी मार-काट की वजह से पंजाब जाकर उसके भैया विशुनदेव को ढूँढ़ने को तैयार नहीं था। कई लोगों से मिन्नत करने के बाद, माई रामदेव को ही पंजाब भेजने पर तैयार हो गई। पैसों की समस्या साँप की तरह फन काढ़े फुकार रही थी। पुश्तैनी पेशा-अनाज भूनने में क्या रखा है? कनसार में अनाज भुनवाने लोग आते नहीं। मकई की रोटी अशराफ लोग खाते नहीं। दाल इतनी महँगी है कि लोग चने की दाल बनवाएँगे कि कनसार में चना भुनवाकर सत्तू बनवाएँगे? उस पर इतनी मेहनत-गाँव के बगीचों, बंसवाड़ियों में सूखे पत्ते बटोरकर जमा करो, उन्हें जलाकर अनाज भूनकर पेट की आग ठंडी करो। किसी तरह एक शाम का भोजन जुट पाता। आखिर माई उपले थापकर, गुल बनाकर बेचने लगी थी। तब किसी तरह भोजन चलने लगा। लेकिन कोई काम आ पड़ता तो कर्ज लेने के अलावा कोई रास्ता नहीं बचता था। इस बार भी पंडितजी ने ही पैसों की मदद की। भैया की शादी में कर्ज बढ़ा तो मुश्किल हो गई। मूल तो मूल, सूद सुरसा की भाँति बढ़ने लगा। आखिर भैया को थाली-लोटा, कंबल, वंशी लेकर कमाने पंजाब जाना पड़ा। वहाँ से वह पैसा भेजता तो माई सीधा पंडितजी को जाकर देती। कर्ज चुकने को ही था कि अचानक सब कुछ बंद।

पंजाब में खून-खराबे की खबर मिलती तो माई के साथ-साथ रामदेव का भी दिल डूबता। माई को पड़ोसी ताने मारते। इतना ही दुख था तो खून-खराबे में बेटे को कमाने पंजाब काहे भेजा? अगर विशुनदेव पंजाब नहीं जाता तो वे सब बेघर हो जाते। जनार्दन उनके घर की जमीन खरीदने की ताक में था। पंडितजी का तकाजा तेज हो रहा था। घर ही बचाने-बसाने विशुनदेव को पंजाब जाना पड़ा था। बहू आती तो कहाँ रहती, क्या खाती? नई जिंदगी के कोंपल को माई कैसे मसलने देती? भरे मन से माई ने विशुनदेव को पंजाब जाने दिया था। सब ठीक-ठाक होता जा रहा था कि अचानक सब कुछ बंद।

लेटे-लेटे रामदेव ने कमीज की चोर जेब में हाथ डाला। जेब में रेलवे टिकट, भाई के पत्तेवाला पोस्टकार्ड और पैसों को छूकर उसे इत्मीनान हो आया। झोले का तकिया ठीक से जमाकर आँख बंद कर सोने की कोशिश की। ट्रेन की खटर-पटर, गलियारे में फैली बदबू थी ही। डर भी था और इतना था कि नींद में भी पंजाब-सी उथल-पुथल थी। विशुनदेव! ऐ विशुनदेव!

भैया पंजाब से पिछली दफा लौटा तो वहाँ के किस्से खूब सुनाता था। माई भी रोज रात उससे पंजाब के बारे में पूछती थी।

'रोटी खाने? भात नई मिलै छौ?'

'माई, ऊ लोग सब खाना के रोटी कहै छै! इ बड़का गिलास में चाह! ओह चाह हिया कहाँ?'

'मर सरधुआ! चाह तो हियैं बनबे करेई छै!'

'नइगे माई, ऊ सब बनिहारवाला चाह में हफीम के पानी मिलाए दै छै, वैइसे थकनी हेंठ भे जाइछै! अ बनिहार लोग खूब काम कइलक।'

'कत्ते देर काम करै छहि?'

'सात बजे भोर सै छ बजे साँझ तक! बीच में रोटी खाइके छुट्टी-एक घंटा।'

'सब ताश खेललकर, हम्में अपनी बँसुरी-बंजइलौं। हमर मलकिनी ठीक छौ। हाँक पारतौ-ए विशुनदेव! ऐ विशुनदेव! मलकिनी कै हमरी बाँसुरी बजेनाई खूब नीक लगैइछै! विद्यापति, चैतावर सुने लेल पागल। पढ़लो छे गे माई बी.ए.पास!'

'खूब सुखितगर मालिक छौ?'

'खूब कि फटफटिया, ट्रैक्टर, जीप महल सन घर। दूगो बेटा। दिल्ली में नौकरी में

लागल, टीभी से हो छै!'

'उ कथी?'

'जेना रेडियो में खाली गाने बोलई छै ने, टीभी में गाना के साथ-साथ सिनेमा एहन फोटूओ देखेवई छै!'

'मालिक मारै-पीटे त नईं न छौ!'

'कखनो-कखनो, गाली हरदम भैनचो... भैनचो बकै छै।'

'की करभी, पैसा कमेनाइ खेल नईं छै। मन त नईं लागै होतौ?'

'गरीब नईं रहने माई, पंजाब कहियो नईं जैति अइ र इ पैसा...'

विशुनदेव का गौना सामने था। खर्चा जुटाने उसे दूसरी बार भी पंजाब जाना पड़ा। अपने इलाके में न साल भर मजदूरी का उपाय, और मजदूरी भी पंजाब से आधी। विशुनदेव पंजाब से थोड़ा भविष्य लाने गया था।

रात में कोई गाड़ी पंजाब नहीं जाती।

नियॉन लाइट से जगमगाती नई दिल्ली स्टेशन के प्लेटफॉर्म पर उतरते ही उसे लगा कि इतने लोगों के समुद्र में वह खो जाएगा। भीड़, धक्कम-मुक्का, अजनबी लोग और इतनी रोशनी! उसने अपने सीने को कसकर दबा लिया ताकि टिकट, पैसा और पते वाला पोस्टकार्ड कोई मार न ले। वह ठिठक गया, पता नहीं गेट किधर है। आखिर भीड़ में वह घुस गया। ओवर ब्रिज पारकर स्टेशन के बाहर आ गया।

बाहर टैक्सरी, कार और थ्री व्हीलर की कतारें। रात का समय। सब कुछ स्वप्न-लोक-सा था जैसा उसने हिंदी फिल्मों में देखा था। आसाम मेल रास्ते में ही पाँच घंटे लेट हो गई थी। उसे मालूम था कि दिल्ली से ट्रेन या बस से उसे अमृतसर जाना पड़ेगा। वह मुसाफिरखाने की ओर बढ़ा। पंजाब जाने वाली गाड़ी के बारे में किससे पूछे, सब तो अफसर की तरह लग रहे थे। मुसाफिरखाने के एक कोने में कुछ साधारण मैले-कुचैले कपड़ों में थकी-बुझी आँखों वाले लोग टिन की बदरंग पेटियों के पास बैठे थे। उन्हीं की तरफ बढ़ा।

'ऊ सामने वाली खिड़की पर जाकर पूछो!'

खिड़की पर कई लोग जमे थे। जब लोग हटे तो उसने बाबू से पूछा।

'बाबू, अमृतसरवाली चली गई?'

'हाँ!'

'अब दूसरी गाड़ी कब जाएगी!'

'अब तो भैया, कल जाएगी!'

'इ तो बड़ा स्टेशन है?'

'आजकल रात में कोई गाड़ी पंजाब नहीं जाती।'

वह मुड़ा, तो बाबू भी अपने दोस्त से बात करने लगा।

'सारे हिंदुस्तान को पता है, रात में कोई ट्रेन पंजाब नहीं जाती फिर भी पूछ रहा था!' बाबू के दोस्त के स्वर में उपहास था।

'बिहारी भैया था!' बाबू फिस्स से हँस पड़ा।

'जलंधर, लुधियाने, सारे पंजाब में ये लोग भरे हैं।'

'अरे बिहार से आनेवाली गाड़ी को पंजाब में भैया एक्सप्रेस कहते हैं! उस तरफ हर गाड़ी में ये लोग ठुँसे रहेंगे।'

'वहाँ इन्हें काम नहीं मिलता?'

'काम मिलता तो पंजाब थोड़े ही मरने जाते! भूख थोड़े ही रुकती है, इसलिए भैया एक्सप्रेस चलती रहेगी... सरकार की पटरी, सरकार की गाड़ी सब है ही!'

घर पंजाब हो गया है

'आजकल' रामदेव के लिए बड़ा शब्द है।

पिछले चार महीने-सोते-जागते पहाड़ की तरह गुजरे। भैया कैसा होगा? पंजाब में बहा खून का हर कतरा, वहाँ चली हर गोली माई को लगती। रेडियो विशुनदेव का हाल-चाल थोड़े ही बोलेगा। माई फिर भी पंडित जी के यहाँ रेडियो सुन आती। वह भी चाय की दुकान पर अखबार पढ़ आता। रजिस्ट्री चिट्ठी लौट आई तो माई रात-भर रोती रही। बेगूसराय जाकर उसी पते पर तार भिजवाया लेकिन कुछ नहीं पता चला। माई मन्नतें माँगती, पंडित जी के पंचाँग से शगुन निकलवाती, रो-धोकर उपले-गुल बेचने फूटलाइजर टाउनशिप निकल जाती। इतनी मेहनत पर मौसी टोकती तो माई का एक ही जवाब होता, 'एगो बेटा पंजाब में, इ रमुआ पढ़ लिए जे एकरा पंजाब नईं जाए पड़ैय।'

भौजी के यहाँ से अक्सर पूछवाया जाता-कोई खबर मिली? माई को लगता-शादी टूट जाएगी। कोई कब तक जवान बेटी को घर बिठाए रखेगा। माई को लगता, बेटे का पता नहीं, पतोहू छूट रही है। कोशिश करती कि किसी तरह बिखरते घर को आँचल

में समेटे रहे।

'रमुआ से पुतोहू के बियाह के देबैई', माई से यह सुनते ही रामदेव शर्म से काठ हो गया था। भौजी की साँवली, निर्दोष, बड़ी-बड़ी आँखों वाला चेहरा उसके सामने घूम गया था। अशराफ़ के घर में ऐसा होगा? शादी के बाद भैया पंजाब से लौट आया तो? माई पागल है!

लेकिन माई ने हारना नहीं सीखा था। जो कुछ बचा था, उसे छाती से चिपकाए रहना चाहती थी। एक चक्कर डाक बाबू के यहाँ लगा लेती। 'लोभ में बेटे को पंजाब भेज दिया, अब काहे को रोज चिट्ठी के लिए पूछती हो?' पोस्टमैन उसे झिड़क देता।

माई का सूखता शरीर, पंडित जी का सूद, जनार्दन का मंसूबा, भौजी की उदासी, भाई के जीवन का संशय, रोज की किचकिच, माई का रुदन...रामदेव को लगता-घर पंजाब हो गया है। रात-रातभर सो नहीं पाता। पढ़ता-लिखता क्या खाक! बस एक चीज काबिज थी-पंजाब!

खून की तरह जमा शहर

अमृतसर आते-आते बस में यात्रियों की बातचीत सुनते-सुनते मन में ऐसा डर बैठ गया कि वह बस से भी डरने लगा।

बस से उतरते-उतरते फैसला ले लिया-जो भी हो, जैसे-तैसे रात अमृतसर के बस अड्डे पर काट लेगा लेकिन बस से अटारी नहीं जाएगा। साढ़े छह बजे शाम से ही बस अड्डे पर हड़बोंग मची थी। सबको ऐसी जल्दी थी कि जैसे बाढ़ में बाँध टूट गया हो और सब जान बचाने के लिए भाग रहे हों। दुकानें फटाफट बंद हो रही थीं। ठेलेवाले अपनी दुकानें बढ़ा रहे थे। खाली बसों के ड्राइवर-खलासी पास के ढाबों में जल्दी-जल्दी खाना खा रहे थे। ढाबे के मालिकों को भी जल्दी थी। इसलिए उनके नौकर भी रेस के घोड़ों की तरह हाँफ रहे थे। सबको एक ही डर था...सात बजे कर्फ्यू लगने वाला था।

रामदेव ने मूँगफली वाले का अक्षरश: अनुसरण किया। अपना सत्तू घोलकर पी गया और उसी के साथ लेट गया। मूँगफली वाला राँची का ईसाई आदिवासी था। तीन साल पहले घर से भागकर यहाँ आया था। चेहरे पर बढ़ी दाढ़ी और सिर पर गमछे के मुरैठा से उसके सरदार होने का भ्रम होता था। हँसता तो चमकीले दाँत मोतियों की तरह जगमगा उठते। निष्पाप आँखें छलछला आतीं। जेम्स 'अपने देस' के रामदेव जैसे आदमी से मिलकर खुश हो गया था। दोनों गठरी की तरह कोने में दुबके थे। और भी

बहुत गठरियाँ थीं। गुमसुम!

कर्फ़्यू लग चुका था।

चादर की ओट में रामदेव ने झाँककर देखा। बाहर सब कुछ थमा था। इंजन की तरह दहाड़ता बस अड्डा लाश की तरह खामोश था। न पंछी, न हवा, न कोई पत्ता हरकत कर रहा था। चीख़ भी निकलती तो डर से बर्फ़ हो जाती। चलती गोली हवा में थम जाती। पृथ्वी का घूमना जैसे बंद हो गया था। साँसें बेआवाज़ चल रही थीं। मच्छर थे कि ग़लीज़ में बेफ़िक्री से भिनभिना रहे थे।

सन्नाटे में ही वर्दीवालों से भरी एक जीप गुज़र गई। रामदेव को लगा कि गर्दन पर से कोई धारदार चाकू गुज़र गया। 'इधर में ऐसा ही होता है।' जेम्स फुसफुसाया, 'चुप सो जाओ, पेशाब करने भी मत जाना।' रामदेव सोने की कोशिश करने लगा। दिन-भर की थकान के बावजूद उसे नींद नहीं आ रही थी।

रात के कोई ग्यारह बजे बस अड्डे पर जैसे कहर टूट पड़ा। वर्दी वाले सबों को बूट की ठोकरों से जगा रहे थे। पचास सवाल। कहाँ से आए हो? क्या मतलब है? डर से कोई हकलाया तो लात, घूँसे, बंदूक के कुंदे से ठुकाई। तीन नौजवान सरदारों को घसीटते हुए ले गए। बिहार का नाम सुनकर वे आगे बढ़ गए थे। रामदेव फिर भी थर-थर काँपता रहा। जेम्स फिर सो गया जैसे कुछ हुआ ही नहीं हो। लेकिन रामदेव के कानों में उन तीन नौजवानों की चीख जिद्दी मधुमक्खी की तरह भनभनाती रही। रफ्ता-रफ्ता सब चीजों की आदत हो जाती है। सो धीरे-धीरे शहर भी खून की तरह जम गया।

अग्गे पाकिस्तान है!

स्टेशन पर टिकट लेकर बैठा तो उसे इत्मीनान आया। उसने अपनी जेब से मुड़ा-तुड़ा, बदरंग पोस्टकार्ड निकाला, और पता पढ़ने लगा-विशुनदेव, इंदर सिंह का फारम, गाँव रानीके, भाया अटारी, जिला अमृतसर (पंजाब)। पढ़कर उसने सामने बैठे बुजुर्ग सरदार की ओर बढ़ा दिया ताकि वे रानीके जाने का रास्ता बता दें।

सरदार जी ने अफसोस में सिर हिलाया और कहने लगे, 'मैं हिंदी पढ़ना नहीं जानता। सारी उम्र उर्दू पढ़ी है। बस हिंदी समझ लेता हूँ। बता क्या है?'

'मुझे रानीके अटारी गाँव जाना है। अनजान आदमी हूँ। बिहार से आया हूँ।' रामदेव का संकोच सरदार जी की आत्मीयता से घुल गया और उसने पूरा पता पढ़ लिया।

'संतोख सिंह वाला रानीके? अग्गे अटारी स्टेशन आऊँगा, तू उत्थे उतर जाणा।

बाहर टाँगेवाले नूँ पुच्छ लईं। तू तो मुंडा-खुंडा है, पजदा-पजदा दो मील चला जाएगा। अच्छा सुण, अंबरसर दे बाहर बुर्जावालियाँ दी बस जांदी ए, तू सीधा रानीके उतर जाणा सी। गां दे बाहर की संतोख सिंह दी दो मंज़िली कोठी नजर आउगी। उत्थे पुच्छ लेणा। सामने इंदर सिंह दा फारम है।'

रामदेव इतना ही समझ पाया कि अटारी स्टेशन से दो मील पर रानीके गाँव है। गाँव के बाहर संतोख सिंह की दो मंजिली कोठी है। उसके सामने इंदर सिंह का फारम है।

'एन्नी दुरो कल्ला किंदा आ गया? बिहार के हो कि यू.पी. के?'

'बिहार। रानीके गाँव भाई को खोजने जा रहा हूँ।'

'तेरी तो मूँछें भी नहीं फूटी हैं? पुत्तर हिम्मत ही इंसान दा नाम है।'

गाड़ी रुकते ही 'अच्छा' कहकर बुजुर्ग उतर गए। रामदेव उन्हें जाते, खिड़की से देखता रहा। गाड़ी खिसकी तो टिकट-चेकर सामने था।

'टिकट?' चेकर ने यांत्रिक लहजे में पूछा।

'अटारी कितने स्टेशन है?' रामदेव टिकट थमाते हुए पूछ बैठा।

'पहली बारां आया तू?' अगला स्टेशन है। उत्थे उतर जाणा, अग्गे पाकिस्तान है! चेकर टिकट पंच कर आगे बढ़ गया।

रामदेव सन्न! कहाँ आ गया? पाकिस्तान!

स्वेरे देखेंगे

क्रीच...क्री... च। गाड़ी रुक गई। उतरकर स्टेशन के गेट की तरफ बढ़ा। बाहर निकलते ही ताँगेवाले ने उससे पूछा, 'पाकिस्तानी गाड़ी है जी? टेम तो उसी का है।' उसने भी पलटकर पूछ लिया, 'रानीके गाँव कौन-सी सड़क जाती है?'

'सीधी सड़क जाती है... आगे भी पुच्छ लेणा।'

सूरज सर पर चढ़ गया था। तेज चलने की वजह से वह पसीने-पसीने हो रहा था। पर मंजिल पर पहुँचने की खुशी ने उसे बेफिक्र कर दिया था। सड़क के किनारे गेहूँ के कटे, नंगे खेत थे। उसके गाँव की तरह ही थोड़ा तिरछा, औंधा, साफ आसमान था। हवा सोई हुई थी, गर्म बगूले सीधा उड़ते और सूखे पत्तों, धूल को ले उड़ते। सुनसान सड़क पर दूर-दूर तक कोई राही नहीं था। चारों तरफ तापमान का राज था। रामदेव का ध्यान भाई विशुनदेव की तरफ था। रोज-रोज के कर्फ्यू में चिट्ठी कैसे पहुँचती। भैया भी

चिट्ठी का इंतजार करता होगा। भैया उसे देखते ही लिपट जाएगा। वह भी आँसू नहीं रोक सकेगा। भैया तिल का लड्डू देखते ही खिल जाएगा। लेकिन भैया...उससे पहले खाने-पीने को पूछेगा। भैया घुमा-फिराकर भौजी के बारे में भी पूछेगा। वह भाई से जनार्दन से बदला लेने के लिए जरूर कहेगा...

उसे सामने सड़क के किनारे दो मंजिला मकान दिख गया। एक सरदार जी आगे-आगे जा रहे थे। उसने अपनी चाल तेज कर दी।

'भाई साहब, इंदर सिंह का फारम किधर है?' उसने पास पहुँचकर पूछा।

'किसनू मिलना? तू आया कित्थों?' सरदार जी ने खुलासा ही पूछ लिया। पर रामदेव की समझ में ठीक से न आ पाया।

'बिशुनदेव, बिहारी।' रामदेव अटपटाकर बोला।

'बात तो पल्ले पैंदी नई, चल सरपंच सरूप को चल, उत्थे जाके गल करी?' सरदार जी ने उसे पीछे-पीछे आने का इशारा किया।

परेशान रामदेव उनके पीछे-पीछे बढ़ता गया। कुछ दूर जाकर, पुरानी ईंटों वाले महलनुमा घर के सामने जाकर दोनों रुक गए। रास्ते में सरदार जी ने उसका नाम पूछ लिया, अपना नाम भी बता दिया-किरपाल सिंह। किरपाल सिंह ने आवाज दी।

'सरपंच जी, सरपंच जी, थल्ले आओ! एक परदेशी बंदा आया सी!' कुर्ता-पजामा पहने एक लंबा-तगड़ा गोरा-चिट्टा आदमी बाहर आया। उसके चेहरे पर हल्की नुकीली काली मूँछें सज रही थीं। किरपाल सिंह को देखकर मुस्कराया और उसका हाथ पकड़कर अपनी ओर खींचने लगा।

'किरपाल्या, ऐ बंदा कोनी? इनु कित्थों फड़के ले आया?'

'सरपंच जी, मैं कित्थों ले आऊंगा?' ए बंदा किसी दी खोज विच आया सी। हिंदी बोल्दा सी, तुसी समझ लो! गल-बात कर लो!'

सरपंच सरूप रामदेव की ओर मुड़ा, उसे गहरी नजरों से देखा।

'काका, क्या बात है?'

'मेरा भाई विशुनदेव इंदर सिंह के फारम पर काम करता है, बहुत दूर बिहार से आया हूँ। ये चिट्ठी है।' रामदेव ने कार्ड सरपंच सरूप के हाथ में थमा दिया। सरपंच सरूप ने पोस्टकार्ड उलट-पुलटकर पढ़ा और रामदेव को वापस थमाते हुए बोला, 'पता तो ठीक है।'

'किरपाल्या, देख पाई दी खिंच एन्नी दूर ले आई... अरे याद आया सी। एक बिहारी मुडा इंदर दे फारम ते देख्या सी... चल तुझे इंदर सिंह के पास ले चलता हूँ।' सरपंच सरूप आगे बढ़ा।

रामदेव उसके पीछे चला। किरपाल सिंह 'अच्छा' कहकर अपनी राह चला गया। तेज धूप में चलते दोनों पास ही इंदर सिंह के फार्म पर पहुँचे।

'स-सिरी अकाल जी!' एक महिला ने शालीनता से कहा।

सरपंच ने सिर हिलाया।

'स-सिरी अकाल! इंदर सिंह कहाँ गया?'

'वो तो कल सवेरे आएँगे जी। अंबरसर में कुछ काम था।'

'ये मुंडा अपने भाई से मिलने आया है। इसका भाई तेरे फारम दा काम करता है... क्या नाम बताया?'

'विशुनदेव,' रामदेव ने साफ-साफ लहजे में कहा। उसके चेहरे से उत्सुकता का लावा जैसे फूट पड़ना चाहता था। महिला ने उसे गौर से देखा।

'विशुनदेव! इस नाम का एक भैया तो था जी, तीन महीने पहले कपूरथले लौट गया। पिछले साल उसे हम अपने मामा जी के पास से लाए थे... इस साल भी बिहार से आया, पर बोलता था-दिल नईं लगता, तीन महीने पहले कपूरथले लौट गया।'

सरपंच सरूप ने रामदेव की ओर देखा। उसे लगा कि अब रामदेव रो देगा।

'देख मनजीत कौर!' सरपंच सरूप ने आजिजी से कहा, 'लड़का बिहार से आया है, परेशान है... इसके पास तेरा ही पता है।'

'सरदार जी के आने पर बात कर लेणा जी, ज्यादा वही बतलाएँगे!' कहकर मनजीत कौर मुड़ गई।

'चल मुंड्या! मेरे यहाँ ही रोटी-पानी कर लेना। स्वेरे देखेंगे!' बांसुरी क्या बोलती है?

रात धमक आई थी। दालान में किरपाल सिंह और सरपंच सरूप बातें कर रहे थे। घूम-फिरकर बात पंजाब के हालात पर ही चलती। अखबार, रेडियो के हवाले अफवाहों का विश्लेषण चल रहा था।

दालान के किनारे वाले तख्त पर चादर से मुँह ढंके लेटा, रामदेव के सामने विशुनदेव का चेहरा बार-बार कौंध रहा था। उसे रह-रहकर रुलाई आ रही थी। सरदारनी पहले तो अच्छे से बोली पर विशुनदेव का जिक्र आते ही साफ मुकर गई-सरदार जी से बात कर लेना। अगर विशुनदेव तीन महीने पहले कपूरथले चला गया तो वहाँ से चिट्ठी जरूर लिखता। जेल में भी होता तो वहीं से लिखता। दो सौ रुपए में वह अपने भाई को कहाँ-कहाँ खोज पाएगा? कहीं भैया...आखिर रुलाई फूट पड़ी। हिचकियाँ, नाक से बहते पानी और खाँसी ने भेद खोल दिया।

किरपाल सिंह लपका और रामदेव को झकझोरकर पूछने लगा, 'ए मुंड्या, ए मुंड्या... सरपंच जी देखो!'

सरपंच सरूप भाँप गया। वह उठकर रामदेव के पास आया और दिलासा देने लगा, 'देख भाई, कल इंदर सिंह से साफ-साफ तेरे भाई का पता पूछ लेंगे। रुपए-पैसे की जरूरत हुई तो दे देंगे! तू कपूरथले जाकर भाई से मिल लेना। क्यों किरपाल सिंह?'

'हंजी, मुंडे नू मदद जरूर करनी चाहिए। जे ग्रीब लोग हैं...'

कब रात गुजर गई, सोचते-सोचते रामदेव को पता ही नहीं चला।

सरपंच सरूप को देखते ही इंदर सिंह चिल्लाया, 'आओ महाराज! मनजीत कौर कह रही थी उस बिहारी मुंडे के बारे में। मैं अंबरसर चला गया था। दोनों पुत्तरों पर दिल लगा रहता है। रात जाकर टेलीफोन से बात हुई। जी को चैन आया। स्वेरे वहाँ से चला। बस समझो अभी आ ही रहा हूँ... मैं भी मूरख! चलो अंदर बैठते हैं... कुछ चाय-साय भिजवाना, कहकर इंदर सिंह शुरू हो गया, 'हंजी, लड़का बड़ा भला था। पिछले साल भी मेरे पास था। इस साल आया तो उखड़ा-उखड़ा रहता था। दिल नहीं लगता था। टिक नहीं पाया। चल दिया। कपूरथले मनजीत के मामा के यहाँ गया होगा। ऐसा ही बोल रहा था। दो महीने हो गए... अब आप कहो तो इस मुंडे को खर्चा-पानी दे दूँ।'

इंदर सिंह की वाचालता से सरपंच सरूप शक में पड़ गया। कल मनजीत कौर कह रही थी, लड़के को गए तीन महीने हुए। यह कहता है दो महीने हुए। और यह खर्चा-पानी क्यों देना चाहता है?

'इंदर सिंह, लड़का जिंदा है या नहीं?' सरपंच ने सधी आवाज में पूछा।

इंदर सिंह के चेहरे पर जैसे स्याही पुत गई। रामदेव का जी धक्क! इंदर सिंह जबरन अपने चेहरे पर कांइयाँ मुस्कराहट लाता बोला, 'मरने की बात कहाँ से आ गई?' ...लड़का जरूर जिंदा होगा जी। कपूरथले होगा या और कहीं चला गया होगा! भैया लोगों का क्या ठिकाना? आज यहाँ काम किया, कल वहाँ...'

सरपंच सरूप के पीछे खड़ा रामदेव सिसकियाँ लेने लगा। मनजीत कौर चाय की

ट्रे लेकर कमरे में घुसी। रामदेव को रोता देखकर, पल-भर के लिए ठिठक गई। मनजीत कौर ने गहरी नजरों से पति को देखा और उसकें होंठ भिंच गए। यंत्रवत ट्रे को सेंटर टेबल पर रख, तेजी से मुड़कर अंदर चली गई।

सरपंच को साफ लगा कि इंदर सिंह झूठ बोल रहा है। मनजीत कौर भी छिपा रही थी। ऐसे झूठ बोलने की जरूरत क्या है? विशुनदेव जिंदा नहीं है। सरपंच की आत्मा पर ठक से हथौड़े जैसी चोट लगी, वह गुस्से से तिलमिला उठा।

'साफ बता इंदर सिंह, विशुनदेव जिंदा है या नहीं? जिंदा है तो उसका पता दे!'

'कह तो दिया, वह यहाँ से चला गया। जिंदा ही होगा।'

'इस लड़के पर रहम कर। इतनी दूर से आया है। झूठ बोलने से क्या फायदा?'

'ओय सरूपे, तू मुझे झूठा कहेगा?' इंदर सिंह भड़क उठा, 'सरपंच से हार गया तब भी अकड़ नहीं गई। तू होता कौन है जो मुझसे पूछने चला आया? मैं तुझे कुछ नहीं बताऊँगा! बड़ा आया है लड़के की तरफदारी करने वाला!'

सरूप अवाक! रामदेव बुक्का मारकर रो पड़ा। अचानक रामदेव उठा और इंदर सिंह के पाँव पर गिर पड़ा!

'मालिक!' रोता रामदेव चीखने लगा, 'बता दीजिए मालिक, मेरा भैया कहाँ हैं?... बहुत उपकार होगा मालिक! बता दीजिए मालिक... मालिक...'

'तू पत्थर है...इंदर सिंह!' सरपंच सरूप घृणा से उफन उठा, 'लंबा-चौड़ा फारम, इतना पैसा, पर इंसानियत जरा भी नहीं... परदेशी की तू मदद नहीं कर सकता... खैर चल मुंडे!'

सरपंच सरूप उठ खड़ा हुआ। आगे बढ़कर रामदेव को झकझोरकर उठाया।

'भाई साहब, रुकना!'

अंदर से मनजीत कौर की तेज आवाज आई। दरवाजे से ही मनजीत कौर ने एक झोला सपरंच के पाँव के पास फेंका! उफनती मनजीत कौर पर जैसे दौरा पड़ गया हो!

'ये विशुनदेव का सामान है... वह दुनिया में नहीं है!' कहते-कहते मनजीत कौर फूट-फूटकर रोने लगी। हिचकियों के बीच उसने कहा, 'मुझसे बोलकर गया था कि अंबरसर से घरवालों के लिए कपड़े लेने जा रहा हूँ, देस जाना है। अंबरसर से लौटकर आता तो यहाँ से पैसे लेकर जाता... तीन बजे दिन में गया। बस बिगड़ने से शाम हो गई। छेड़हट्टा के पास रोककर मार-काट हुई... उसी में...'

गूँगे रामदेव की आँखों से आँसू लुढ़क रहे थे। सरपंच सरूप मनजीत कौर की बात सुनकर स्तब्ध था और अपराधी की तरह इंदर सिंह की आँखें फर्श में गड़ी हुई थीं।

'मैं तीन दिनों तक रोती रही... मेरे भी बेटे हैं... ये फँस जाने के डर से बात छिपा रहे थे। कल रात-भर हम दोनों झगड़ते रहे-छिपाना क्या, वह भी किसी का बेटा है, भाई है... कल मैं भी झूठ बोली...हमें माफ करो सरपंच जी!' मनजीत कौर के अंदर बैठी माँ ने उफान मारा। उसने आगे बढ़कर रामदेव को छाती से लगा लिया। अपनी ओढ़नी से उसके आँसू पोंछने लगी।

बीच में पड़े विशुनदेव के झोले से उसकी बाँसुरी झांक रही थी। सब चुप थे। आँसू की तरह बांसुरी भी जैसे कुछ बोल रही थी। बाँसुरी क्या बोल रही थी, कोई समझ नहीं पाया...

तू यहाँ कब तक भुगतता रहेगा?

देर तक उस दिन नहर के किनारे बैठा रहा। नहर का कलकल पानी, आजाद हवा... सब बेकार! सरपंच के घर की तरफ चल पड़ा। कल उसे रुपए मिल जाएँगे-दो हजार। सरपंच साहब उसे अमृतसर में दिल्ली वाली बस में बिठा देंगे। अमृतसर के लिए आज उनको याद दिला देनी चाहिए। वह सोचता आगे बढ़ा जा रहा था कि फौज की तीन जीपें गुजरीं। लाउड स्पीकर से पंजाबी में कुछ घोषणा की जा रही थी। थोड़ी दूर और गया कि और तीन जीपें गुजरीं। रामदेव घबरा गया। जल्दी-जल्दी सरपंच के घर की ओर बढ़ने लगा।

सरपंच के घर के पास पहुँचकर वह हाँफ रहा था।

'सरपंच साहब, पाकिस्तानी फौज घुस आई क्या?'

'नहीं, काका,' सरपंच सरूप ने लंबी साँस ली, 'अपनी फौज है... यह बहुत बुरा हुआ!'

'क्यों?' रामदेव ने हौले से पूछा।

'तुम क्या समझो? हम बॉर्डर के लोग समझते हैं! फौज आती है, जाती है... पर जो खलिश छोड़ जाती है, उसका कोई इलाज नहीं,...चल इंदर सिंह के पास चलते हैं!'

फँसे रामदेव के लिए कोई उपाय नहीं था। टी.वी. पर जालंधर, लाहौर की खबरें सुनते-देखते रहो। कुछ मालूम नहीं, कहाँ क्या हो रहा है। पूरे पंजाब को जैसे सुनबहरी हो गया हो। वाघा, अटारी जैसे फौजी छावनी बनी थीं। घरों में चीख डर से दुबकी पड़ी

थी। हवा की भी तलाशी चल रही थी। घृणा के अंधड़ में मौन ही पत्तियों की भाषा थी। परिंदे की तरह अफवाहें उड़तीं। मौत की खबर चीख भी नहीं बन सकती थी। लोग कबूतरों की तरह दुबके रहते। रात भी जगी रहती। हरी वर्दी में लोग सन्नाटे को कुचलते रहते।

तलाशियों ने मालकिन को तोड़ दिया था। इंदर सिंह टी.वी. के पास बैठे रहते। बीच-बीच में रेडियो पर भी खबरें सुनते। रामदेव रसोई में जाकर मालकिन की मदद कर देता। रोना एक सिलसिला बन गया था। सरपंच जी ढांढ़स देने आए।

'किरपाल का भाई अंबरसर में सेवादार था... किरपाल सब्र कर सकता है! दिल्ली में सब ठीक-ठाक है, आखिर राजधानी है। तू नाहक परेशान है, मनजीत कौर! हिम्मत रख!'

'कैसे चुप हो जाऊँ! एक फूल टूटता है तो हर पत्ता रोएगा... उस पार के गोले दगते थे तो हमारे में जोश होता था। अब तो इधर से ही...कोई इस बार उन्हें बेटों की तरह कलेजे में क्यों नहीं लगाता?... जिनको देख हिम्मत होती थी, वही हमें डराते हैं। बस अब तो वाहे गुरु का आसरा है!' रामदेव को रोती-कलपती मनजीत कौर माई की तरह लगी। दिल्ली में बसे उनके दोनों बेटों क्या हुआ होगा?

तूफान की तरह गुजरे वे दिन। बारह दिन बाद कर्फ्यू खुला तो आशंका की तेज बयार थी। किसका, कौन मरा, कहाँ चला गया? आखिर इंदर सिंह ने कहा, 'अंबरसर जाना है, तू यहाँ कब तक भुगतता रहेगा?'

सफर तमाम नहीं

मलवे के शहर अमृतसर में आतंक का तना हुआ छाता था। आँखों के दिए बुझे-बुझे थे। मरघट-सा सन्नाटा। बस की आरामदेह सीट पर बैठा रामदेव खिड़की से चेहरा सटाए देख रहा था। इंदर सिंह और सरपंच सरूप नीचे खड़े थे। हचके के साथ बस आगे बढ़ी। रामदेव ने झट हाथ जोड़ दिए।

उनके ओझल होते ही उसने लंबी साँस ली। आँखें बंद करते ही जैसे माई सामने खड़ी हो गई। वह झूठ बोलना चाहता है-भैया का पता नहीं चला। पर दो हजार का रुपए क्या करेगा! गोद में पड़ा विशुनदेव का झोला भारी लगने लगा। बाँसुरी झोले से बाहर झाँक रही थी। विशुनदेव का चेहरा उसके सामने घूम गया। अचानक उसका माथा घूमने लगा-आँसुओं में तब मनजीत कौर का चेहरा, किरपाल सिंह, इंदर सिंह का झुर्रियों की तरह लटकता चेहरा सामने आता और ओझल हो जाता...फिर दहाड़

मारकर रोती माई...बिस्तर पर मुँह देकर रोती भौजी...

उसे जोर से कंपकंपी आई। रोम-रोम खरखरा उठा। 'नहीं!' वह धीरे से बुदबुदाया। आगे की सीट का हैंडिल उसने मजबूती से पकड़ लिया। गुर्राती बस आगे बढ़ती गई। आगे बढ़ना ही था, भैया एक्सप्रेस का सफर तमाम नहीं हुआ था।

अरुण प्रकाश

जन्म : 22 फरवरी, 1948, बेगूसराय, बिहार

प्रकाशन : भैया एक्सप्रेस, जलप्रांतर, मंझधार किनारे, लाखों के बोल सहे, विषम राज, स्वप्न द्वार (कहानी संग्रह) कोंपल कथा (उपन्यास)

सम्मान : साहित्यकार सम्मान (हिन्दी अकादमी), रेणु पुरस्कार, दिनकर सम्मान, सुभाष चंद्र बोस कथा सम्मान, कृष्ण प्रताप स्मृति कथा सम्मान।

होज वाज पापा

–असगर वज़ाहत

अस्पताल की यह ऊँची छत, सफेद दीवारों और लंबी खिड़कियों वाला कमरा कभी–कभी 'किचन' बन जाता है। 'आधे मरीज' यानी पीटर 'चीफ कुक' बन जाते हैं और विस्तार से यह दिखाया और बताया जाता है कि प्रसिद्ध हंगेरियन खाना 'पलाचिंता' कैसे पकाया जाता है। पीटर अंग्रेजी के चंद शब्द जानते हैं। मैं हंगेरियन के चंद शब्द जानता हूँ। लेकिन हम दोनों के हाथ, पैर, आँखें, नाक, कान हैं जिनसे इशारों की एक भाषा 'ईजाद' होती है और संवाद स्थापित ही नहीं होता दौड़ने लगता है। पीटर मुझे यह बताते हैं कि अंडे लिए, तोड़े, फेंटे, उसमें शकर मिलाई, मैदा मिलाया, एक घोल तैयार किया। 'फ्राईपैन' लिया, आग पर रखा, उसमें तेल डाला। तेल के गर्म हो जाने के बाद उसमें एक चमचे से घोल डाला। उसे फैलाया और पराठे जैसा कुछ तैयार किया। फिर उसे बिना चमचे की सहायता के 'फ्राईपैन' पर उछाया, पलटा, दूसरी तरफ से तला और निकाल लिया। पीटर ने मजाक में यह भी बताया था कि उनकी पत्नी जब 'पलाचिंता' बनाने के लिए मैदे का 'पराठा' 'फ्राईपैन' को उछालकर पलटती हैं तो 'पराठा' अक्सर छत में जाकर चिपक जाता है। लेकिन पीटर 'एक्सपर्ट' हैं, उनसे ऐसी गलती नहीं होती।

पीटर का पूरा नाम पीटर मतोक है। उनकी उम्र करीब छियालीस–सैंतालीस साल है। लेकिन देखने में कम ही लगते हैं। वे बुदापैश्त में नहीं रहते। हंगेरी के एक अन्य शहर पॉपा में रहते हैं और वहाँ के डाक्टरों ने इन्हें पेट की किसी बीमारी के कारण राजधानी के अस्पताल में भेजा है। यहाँ के डॉक्टर यह तय नहीं कर पाए हैं कि पीटर का वास्तव में ऑपरेशन किया जाना चाहिए या वे दवाओं से ही ठीक हो सकते हैं।

यानी पीटर के टेस्ट चल रहे हैं। कभी–कभी डॉक्टर उनके चेहरे और शरीर पर तारों का ऐसा जंगल उगा देते हैं कि पीटर बीमार लगने लगते हैं। लेकिन कभी–कभी तार हटा दिए जाते हैं तो पीटर मरीज ही नहीं लगते। यही वजह है कि मैं उन्हें आधे मरीज के नाम से याद रखता हूँ। पीटर 'सर्वे' करने वाले किसी विभाग में काम करते हैं। उनकी एक लड़की है जिसकी शादी होने वाली है। एक लड़का है जो बारहवीं क्लास पास करने वाला है। पीटर की पत्नी एक दफ्तर में काम करती हैं। पीटर कुछ साल पहले किसी अरब देश में काम करते थे। ये सब जानकारियाँ पीटर ने मुझे खुद ही दी थीं। यानी अस्पताल में दाखिल होते ही उनकी मुझसे दोस्ती हो गई थी। पीटर मुझे सीधे–सीधे, दिलचस्प, बातूनी और 'प्रेमी' किस्म के जीव लगे थे। पीटर का नर्सों से अच्छा संवाद था। मेरे ख्याल से कम उम्र नर्सों को वे अच्छी तरह प्रभावित कर दिया करते थे। उन्हें मालूम था कि नर्सों के पास कब थोड़ा–बहुत समय होता है जैसे ग्यारह बजे के बाद और खाने से पहले या दो बजे के बाद और फिर शाम सात बजे के बाद वे किसी–न–किसी बहाने से किसी सुंदर नर्स को कमरे में बुला लाते थे और गप्पशप्प होने लगती थी। जाहिर है वे हंगेरियन में बातचीत करते थे। मैं इस बातचीत में अजीब विचित्र ढंग से भाग लेता था। यानी बात को समझे बिना पीटर और नर्सों की भाव–भंगिमाएँ देखकर मुझे यह तय करना पड़ता था कि अब मैं हँसूँ या मुस्कराऊँ या अफसोस जाहिर करूँ या 'हद हो गई साहब' जैसा भाव चेहरे पर लाऊँ या 'ये तो कमाल हो गया' वाली शक्ल बनाऊँ? इस कोशिश में कभी–कभी नहीं अक्सर मुझसे गलती हो जाया करती थी और में खिसिया जाया करता था। लेकिन ऑपरेशन, तकलीफ, उदासी और एकांत के उस माहौल में नर्सों से बातचीत अच्छी लगती थी या उसकी मौजूदगी ही मजा देती थी। पीटर ने मेरे पास भारतीय संगीत के कैसेट देख लिए थे। अब वे कभी–कभी शाम सात–आठ बजे के बाद किसी नर्स को सितार, शहनाई या सरोद सुनाने बुला लाते थे। बाहर हल्की–हल्की बर्फ गिरती होती थी। कमरे के अंदर संगीत गूँजता था और कुछ समय के लिए पूरी दुनिया सुन्दर हो जाया करती थी।

पीटर के अलावा कमरे में एक मरीज और थे। जो स्वयं डॉक्टर थे और 'एपेण्डिसाइटिस' का ऑपरेशन कराने आये थे। पीटर को जितना बोलने का शौक था इन्हें उतना ही खामोश रहने का शौक था। वे यानी इम्रै अंग्रेजी अधिक जानते थे। मेरे और पीटर के बीच जब कभी संवाद फँस या अड़ जाता था तो वे खींचकर गाड़ी बाहर निकालते थे। लेकिन आमतौर पर वे खामोश रहना पसंद करते थे।

मैं कोई दस दिन पहले अस्पताल में भर्ती हुआ था। मेरा ऑपरेशन होना था।

लेकिन एक जगह पर, एक ही किस्म का ऑपरेशन अगर बार-बार किया जाए तो ऑपरेशन पर से विश्वास उठ जाता है। मेरी यही स्थिति थी। मैं सोचता था, दुनिया के सभी 'डॉक्टर ऑपरेशन' प्रेमी होते हैं और खासतौर पर मुझे देखते ही उनके हाथ 'मचलने' लगते हैं। लेकिन बहुत-से काम 'आस्थाहीनता' की स्थिति में भी किए जाते हैं। कोई दूसरा रास्ता नहीं बचता। तो मैं भर्ती हुआ था। तीसरे दिन ऑपरेशन हुआ था। पर सच बताऊँ ऑपरेशन में उम्मीद के खिलाफ काफी मजा आया था। ये डॉक्टरों, 'टेक्नोलॉजी' का कमाल था या इसका कारण पिछले अनुभव थे, कुछ कह नहीं सकता। लेकिन पूरा ऑपरेशन ख्वाब और हकीकत का एक दिलचस्प टकराव जैसा लगा था। पूरे ऑपरेशन के दौरान मैं होश में था। लेकिन वह होश कभी-कभी बेहोशी या गहरी नींद में बदल जाता था। ऊपर लगी रोशनियाँ कभी-कभी तारों जैसी लगने लगती थीं। डॉक्टर परछाइयों जैसे लगते थे। आवाजें बहुत दूर से आती सरगोशियों जैसी लगती थीं। औजारों की आवाजें कभी 'खट' के साथ कानों से टकराती थीं। और कभी संगीत की लय जैसी तैरती हुई आती थीं। कभी लगता था कि ऑपरेशन बहुत लंबे समय से हो रहा है और फिर लगता कि नहीं, अभी शुरू ही नहीं हुआ है। कुछ सेकेण्ड के लिए पूरी चेतना एक गोता लगा लेती थी और फिर आवाजें और चेहरे धुँधले होकर सामने आते थे। जैसे पानी पर तेज हवा ने लहरें पैदा कर दी हों। एक बहुत सुन्दर महिला डॉक्टर मेरे सिरहाने खड़ी थी। उसका चेहरा कभी-कभी लगता था पूरे दृश्य में 'डिजाल्व' हो रहा है और सिर्फ उसका चेहरा-ही-चेहरा है चारों तरफ बाकी कुछ नहीं है। इसी तरह उसकी आँखें भी विराट रूप धारण कर लेती थीं। कभी यह भी लगता था कि यहाँ जो कुछ हो रहा है उसका मैं एक दर्शक मात्र हूँ।

जिस तरह तूफान गुजर जाने के बाद ही पता चलता है कि कितने मकान ढहे, कितने पेड़ गिरे, उसी तरह ऑपरेशन के बाद मैंने शरीर को 'टटोला' तो पाया कि इतना दर्द है कि बस दर्द-ही-दर्द है। यह हालत धीरे-धीरे कम होती गयी लेकिन ऑपरेशन के बाद मैंने 'रोटी सुगंध' का जो मजा लिया वह जीवन में पहले कभी न लिया था। चार दिन तक मेरा खाना बंद था। गैलरी में जब खाना लाया जाता था तो 'जिम्ले' (एक तरह की पाव रोटी) की खुशबू मेरी नाक में इस तरह बस जाती थी कि निकाले न निकलती थी। चार दिन के बाद वही रोटी जब खाने को मिली तब कहीं जाकर उस सुगंध से पीछा छूटा।

जैसा कि मैं पहले कह चुका हूँ, एक ही जगह पर एक ही ऑपरेशन बार-बार किए जाने के क्रम में यह दूसरा ऑपरेशन था। डॉक्टरों ने कहा था कि इसकी प्रगति

देखकर वे अगला ऑपरेशन करेंगे। फिर अगला और फिर अगला फिर तंग आकर मैंने उसके बारे में सोचना तक छोड़ दिया था।

पीटर मेरे ऑपरेशन के बाद दाखिल हुए थे या कहना चाहिए जब मैं दूसरे ऑपरेशन की प्रतीक्षा कर रहा था तब पीटर आये थे और उनके टेस्ट वगैरा हो रहे थे। आखिरकार उनसे कह दिया गया कि वे दवाओं से ठीक हो सकते हैं। पीटर बहुत खुश हो गए थे। उन्होंने जल्दी-जल्दी सामान बाँधा था और बाकायदा मुझसे गले-वले मिल गए थे। इम्रै तो उससे पहले ही जा चुके थे। इन दोनों के चले जाने के बाद मैं कमरे में अकेला हो गया था, लेकिन अकेले होने का सुख बड़े भयंकर ढंग से टूटा। यानी मुझे सरकारी अस्पताल के कमरे में दो दिन तक अकेले रहने की सजा मिली। यानी तीसरे दिन मेरे कमरे में एक बूढ़ा मरीज आ गया था। देखने से वह करीब सत्तर के आसपास का लगता था। लकिन हो सकता है ज्यादा उम्र रही हो। वह दोहरे बदन का था। उसके बाल बर्फ जैसे सफेद थे। चेहरे का रंग कुछ सुर्ख था। आँखें धुँधली और अंदर को धँसी हुई थीं। जाहिर है कि वह अंग्रेजी नहीं जानता था। वह देखने में खाता-पिता या सम्पन्न भी नहीं लग रहा था। लेकिन सबसे बड़ी मुसीबत यह थी कि उसके आते ही एक अजीब किस्म की तेज बदबू ने कमरे में मुस्तकिल डेरा जैसा जमा लिया था। मैं बूढ़े के आने से परेशान हो गया था। लगा कि शायद मैं नापसंद करता हूँ, यह नहीं चाहता कि वह इस कमरे में रहे। लेकिन जाहिर है कि मैं इस बारे में कुछ न कर सकता था। सिर्फ उसे नापसंद कर सकता था और दिल-ही-दिल में उससे नफरत कर सकता था। उसकी उपेक्षा कर सकता था या उसके वहाँ रहने से लगातार बोर होता रह सकता था। फिर वह भी तय था कि अभी मुझे अस्पताल में कम-से-कम बीस दिन और रहना है। यह बूढ़ा भी ऑपरेशन के लिए ही आया होगा और उसे भी लंबे समय तक रहना होगा। मतलब उसके साथ मुझे बीस दिन गुजारने थे। अगर मैं उससे घृणा करने लगता तो बीस दिन तक घृणित व्यक्ति के साथ रहना बहुत ज्यादा हो जाता। इसलिए मैंने सोचा कम-से-कम उससे घृणा तो नहीं करनी चाहिए। आदमी है, बूढ़ा है, बीमार है, गरीब है, उसे ऐसी बीमारी है कि उसके पास से बदबू आती है तो इसमें उस बेचारे की क्या गलती? तो बहुत सोच-समझकर मैंने तय किया कि बूढ़े के बारे में मेरे विचार खराब नहीं होने चाहिए। जहाँ तक बदबू का सवाल है उसकी आदत पड़ जाएगी या खिड़की खोली जा सकती है, हालाँकि बाहर का तापमान शून्य से चार-पाँच डिग्री नीचे ही रहता था।

उसी दिन शाम को मुझसे मिलने डॉ. मारिया आईं। वे भी बूढ़े को देखकर बहुत खुश नहीं हुईं। लेकिन जाहिर है वे भी कुछ नहीं कर सकती थीं। उन्होंने इतना जरूर

किया कि एक खिड़की थोड़ी-सी खोल दी।

''ये कब आए?'' उन्होंने पूछा।

''आज ही।'' मैंने बताया।

''क्या तकलीफ है इन्हें?'' उन्होंने कहा

''मैं नहीं जानता। आप पूछिए। मेरे ख्याल से ये अंग्रेजी नहीं जानते हैं।''

डॉ. मारिया ने बूढ़े सज्जन से हंगेरियन में बातचीत शुरू कर दी। मारिया बुदापैश्त में हिंदी पढ़ती है और हम दोनों 'कुलीग' है। एक ही विभाग में पढ़ाते हैं।

कुछ देर बूढ़े से बातचीत करने के बाद उन्होंने मुझे बताया कि बूढ़े को टट्टी करने की जगह पर कैंसर है और ऑपरेशन के लिए आया है। काफी बड़ा ऑपरेशन होगा। बूढ़ा काफी डरा हुआ है क्योंकि वह चौरासी साल का है और इस उम्र में इतना बड़ा ऑपरेशन खतरनाक हो सकता है। यह सुनकर मुझे बूढ़े से हमदर्दी पैदा हो गई। बेचारा! पता नहीं क्या होगा।

अचानक कमरे में एक पचास साल की औरत आयी। वह कुछ अजीब घबराई और डरी-डरी-सी लग रही थी। उसके कपड़े और रखरखाव वगैरा देख कर यह अनुमान लगाना कठिन नहीं था कि वह बहुत साधारण परिवार की है। वह दरअसल इस बूढ़े की बेटी थी। उससे भी मारिया ने बातचीत की। वह अपने पिता के बारे में बहुत चिंतित लग रही थी। बूढ़े की लड़की से बातचीत करने के बाद मारिया ने मुझे फिर सब-कुछ विस्तार से बताया। हम बातें कर ही रहे थे कि कमरे में हॉयनिका आ गयी। यहाँ की नर्सों में वह एक खुशमिजाज नर्स है। खूबसूरत तो नहीं बस अच्छी है, और युवा है। उसके हाथों में दवाओं की ट्रे थी। आते ही उसने हंगोरियन में एक हाँक लगायी। मैं दस-बारह दिन अस्पताल में रहने के कारण यह समझ गया हूँ कि यह हाँक क्या होती है। सात बजे के करीब रात की ड्यूटी वाली नर्स हर कमरे में जाती है और मरीजों से पूछती है कि क्या उन्हें 'स्लीपिंग पिल' या 'पेन किलर' चाहिए? आज उसने जब यह हाँक लगाई तो मैं समझ गया। लेकिन मारिया ने उसका अनुवाद करना जरूरी समझा और कहा-''पूछ रही हैं पेन किलर या सोने के लिए नींद की गोली चाहिए हो तो बताइये।'' मैंने कहा-''हाँ दो 'पेन किलर' और एक 'स्लीपिंग पिल'।

मारिया अच्छी बेतकल्लुफ दोस्त हैं। वे मजाक करने का कोई मौका नहीं चूकतीं। पता नहीं उनके मन में क्या आयी कि मुस्कराकर बोलीं-''क्या मैं नर्स से यह भी कहूँ कि इन दवाओं के अलावा, रात में ठीक सोने के लिए आपको एक 'पप्पी' भी दे?''

मैं बहुत खुश हो गया-''क्या ये कहा जा सकता है?'' बुरा तो नहीं मानेगी? अपने महान देश में यह कहने का प्रयास वही करेगा जो लात-जूते से अपना इलाज कराना चाहता हो।''

''नहीं, यहाँ कहा जा सकता है।'' वे हँसकर बोलीं।

''तो कहिए।''

उन्होंने नर्स से कहा। वह हँसी, कुछ बोली और इठलाती हुई चली गयी।

''कह रही है मैं पत्नियों के सामने पति को 'पप्पी' नहीं देती। जब मैंने उससे बताया कि मैं पत्नी नहीं हूँ तो बोली कि ठीक है, वह लौटकर आयेगी।''

मैंने मारिया से कहा-''उर्दू के एक प्रसिद्ध हास्य-व्यंग्य कवि इलाहाबादी का शेर है -

''तहज़ीबे ग़रीबी में बोसे तलक है माफ
आगे अगर बढ़े तो शरारत की बात है।''

शेर सुनकर वे दिल खोलकर हँसी और बोलीं-''हाँ, ये सच है कि भारत और यूरोप की नैतिकता में बड़ा फर्क है। लेकिन उसी के साथ-साथ यह भी तय है कि भारतीय इस संबंध में प्रायः बहुत कम जानते हैं। जैसे अकबर इलाहाबादी शायद यह न जानते होंगे कि यूरोप में कुछ 'बोसे' बिल्कुल औपचारिक होते हैं। जिन्हें हम हाथ मिलाने जैसा मानते हैं।''

अब मेरी बारी थी। मैंने कहा-''लेकिन हमारे यहाँ तो औरत से हाथ मिलाना तक एक 'छोटा-मोटा' 'बोसा' समझा जाता है।'' इस पर वे खूब हँसीं।

कमरे के दूसरी तरफ बूढ़े के पास उसकी लड़की बैठी थी। दोनों बातें कर रहे थे। हल्की-हल्की आवाजें हम लोगों तक आ रही थी। मैंने मारिया से पूछा-''वे उधर क्या बातें कर रहे हैं?''

''वह अपनी लड़की से कह रहा है कि मेरी प्यारी बेटी, तुम सिगरेट पीना छोड़ दो। पिछली बीमारी के बाद तुम्हें डॉक्टर ने मना किया था कि सिगरेट न पिया करो लड़की कह रही है कि उसने कम कर दी है अब कुत्ते के बारे में बात हो रही है। बूढ़ा कह रहा है कि उसके अस्पताल में रहते कुत्ते का पूरा ख्याल रखना। अगर कुत्ते का ध्यान नहीं रखा गया तो वह नाराज हो जाएगा अब वह कह रहा है कि दोपहर के खाने में और सुबह के नाश्ते में भी गोश्त था। कम था, लेकिन था अब बाजार में गोश्त की

बढ़ती कीमतों पर बात हो रही है बूढ़ा बहुत नाराज है अब कुछ सुनाई नहीं दे रहा है'' मारिया कुर्सी की पीठ से टिक गयीं।

''बेचारे गरीब लोग मालूम होते हैं।''

''गरीब?''

''हाँ, हमारे यहाँ की गरीबी रेखा के नीचे के लोग।''

कुछ देर बाद 'विजिटर्स' के जाने का वक्त हो गया। बूढ़े की लड़की चली गयी। मारिया भी उठ गयी। गर्म कपड़ों और लोमड़ी के बालों वाली टोपी से अपने को लादकर बोलीं–

''आपकी नर्स तो नहीं आयी?''

''अच्छा ही है जो नहीं आयी।''

''क्यों?''

''इसलिए कि औपचारिक बोसे से काम नहीं चलेगा और अनौपचारिक बोसे के बाद नींद नहीं आयेगी।''

उन्होंने कहा–''कोई-न-कोई समस्या तो रहनी ही चाहिए।''

अस्पताल की रातें बड़ी उबाऊ, नीरस, उकताहट-भरी और बेचैनी करने वाली होती हैं। नींद क्यों आये जब जनाब दिन-भर बिस्तर पर पड़े रहे हों। नींद की गोली खा लें तो उसकी आदत-सी पड़ने लगती है। पढ़ने लगें तो कहाँ तक पढ़ें? सोचने लगें तो कहाँ तक सोचें? लगता है अगर अनंत समय हो तो कोई काम ही नहीं हो सकता। रात में सो पाने, सोचने, पढ़ने आदि-आदि की कोशिश करने के बाद मैं अपने कमरे में आये नये बूढ़े मरीज की तरफ देखने लगा। वह अखबार पढ़ते-पढ़ते सो गया था। जागते हुए भी उसका चेहरा काफी भोला और मासूम लगता है लेकिन सोते में तो बिल्कुल बच्चा लग रहा था। उसके बड़े-बड़े कान हाथी के कान जैसे लग रहे थे। धँसे हुए गालों के ऊपर हड्डियाँ उभर आई थीं। शायद उसने अपने नकली दाँतों का चौखटा निकाल दिया था। उसकी ओर देखकर मेरे मन में तरह-तरह के विचार आने लगे। सबसे प्रबल था कैंसर का बढ़ा हुआ मर्ज, चौरासी साल की उम्र और जिन्दगी का एक ऐसा मोड़ जो अँधेरी गली में जाकर गायब हो जाता है। लगता था बचेगा नहीं जो कुछ मुझे बताया गया था उससे यही लगता था कि ऑपरेशन के बाद बूढ़ा सीधा 'इन्टेन्सिव केयर यूनिट' में ही जाएगा। और फिर पता नहीं कहाँ? मुझे लगने लगा कि उसकी मृत्यु बिल्कुल तय

है। उसी तरह जैसे सूरज निकलना तय है। लगा कहीं ऑपरेशन टेबुल पर ही न चल बसे बेचारा पता नहीं, क्यों अचानक वह मुझे हंगेरी के अतीत-सा लगा।

रात ही थी पता नहीं दिन हो गया था। अचानक कमरे की सभी बत्तियाँ जल गयीं और हॉयनिका के अंदर आने की आवाज से मैं उठ गया। उसने मुस्कराहट 'थरमामीटर' हाथ में दिया। इसका मतलब है सुबह का छः बजा है। उसकी मुस्कराहट बड़ी कातिल थी। शायद कल वाली बात उसे याद होगी। मैंने दिल-ही-दिल में कहा, इस तरह मुस्कराने से क्या होगा, वायदा निभाओ तो जानें। उसने बूढ़े आदमी को 'पापा' कहकर जगाया और उन्हें भी 'थरमामीटर' कपड़ा दिया।

संसार के सभी अस्पतालों की तरह इस अस्पताल में भी आप समय का अंदाजा नर्सों के विजिट, डॉक्टरों के आने, नाश्ता दिए जाने, गैलरी की बत्तियाँ बंद किए जाने वगैरा से लगा सकते हैं।

सुबह के काम धीरे-धीरे होने लगे। 'पापा' उठे। उन्होंने अपनी छड़ी उठाई। छड़ी बहुत पुरानी लगती है। उतनी तो नहीं जितने पापा हैं लेकिन फिर भी पुरानी है। छड़ी के हत्थे पर प्लास्टिक की डोरी का एक छल्ला-सा बँधा हुआ था। उन्होंने छल्ले में हाथ डालकर छड़ी पकड़ ली और बाहर निकल गये। शायद बाथरूम गये होंगे। छड़ी के हत्थे से प्लास्टिक की डोरी का छल्ला बाँधने वाला आइडिया मुझे अच्छा लगा। इसका मतलब यह है कि पापा के हाथ से छड़ी कभी गिरी होगी। बस में कभी चढ़ते हुए या ट्राम से उतरते या मैट्रो से निकलते हुए। छड़ी गिरी होगी तो पापा भी गिरे होंगे। पापा गिरे होगें तो उनके पास जो सामान रहा होगा वह भी गिरा होगा। लोगों ने फौरन उनकी मदद की होगी। समान समेटकर उन्हें दिया होगा। उनकी छड़ी उन्हें पकड़ाई होगी। इस तरह से बूढ़ों को मैंने अक्सर बसों, ट्रामों में उतरते-चढ़ते समय गिरते देखा है। पूरा दृश्य आँखों के सामने कौंध गया। इसी तरह की किसी घटना के बाद पापा ने प्लास्टिक की डोरी का छल्ला छड़ी के मुट्ठे से बाँध लिया होगा।

इस शहर में मैंने अक्सर इतने बूढ़े लोगों को आते-जाते देखा है जो ठीक से चल भी नहीं पाते। फिर भी वे थैले लिए हुये बाजारों, बसों में नजर आ जाते हैं। शुरू-शुरू में मैं यह समझ नहीं पाता था कि यदि ये लोग इतने बूढ़े हैं कि चल भी नहीं सकते तो घरों से बाहर ही क्यों निकलते हैं। बाद में मेरी इस जिज्ञासा का समाधान हो गया था। मुझे बताया गया था कि प्रायः बूढ़े अकेले रहते हैं। पेट की आग इन्हें कम-से-कम हफ्ते में एक बार घर से निकलने पर मजबूर कर देती है।

यह आदमी, बूढ़ा आदमी, जिससे मैं नफरत करते-करते बचा, दरअसल बहुत अच्छा है। जैसे-जैसे दिन गुजर रहे हैं, मुझे उसके बारे में अधिक बातें पता चल रही हैं। भाषा के सभी बंधनों के होते हमारे जो रिश्ते बन रहे हैं उनके आधार पर उसे पसंद करने लगा हूँ। हालाँकि हम दोनों आमतौर पर चुप रहते हैं सिवाय इसके कि हर सुबह एक-दूसरे को 'यो रैग्गैल्त' मतलब 'गुड मार्निंग' कहते हैं। दिन में 'यो नापोत किवानोक' यानी 'विश यू गुड डे' कहते हैं। छोटी-मोटी मदद के बाद 'कोसोनोम' धन्यवाद कहते हैं। या धन्यवाद कहे जाने का जवाब 'सीवैशैन' कहकर देते हैं।

मुझे याद है दो दिन पहले जब मैं अपने दूसरे ऑपरेशन के बाद कमरे में लाया गया था और दर्द-निवारक दवाओं का असर खत्म हो गया था तो दर्द इतना हो रहा था कि बकौल फैज अहमद 'फैज' हरे रगे जाँ से उलझ रहा था। डॉक्टर कह रहे थे जितनी स्ट्रांग दर्द-निवारक दवाएँ वे दे चुके हैं उससे अधिक और कुछ नहीं दे सकते। अब तो बस झेलना ही है। मैं झेल रहा था। बिस्तर पर तड़प रहा था। कराह रहा था। आँखें कभी बंद करता था, कभी खोलता था। उसी वक्त एक बार आँखें खुलीं तो मैंने देखा कि पापा हाथ में छड़ी लिए मेरे बेड के पास खड़े हैं। मुझे यह उम्मीद न थी। वे कह कुछ न रहे थे। क्योंकि भाषा की रुकावट थी। लेकिन जाहिर था कि क्यों खड़े हैं। दर्द की वजह से उनका चेहरा धुँधला लग रहा था। उनकी धँसी हुई आँखें बिल्कुल ओझल थीं। लंबे-लंबे कान लटके हुए थे। गर्दन झुकी हुई थी। सिर पर सफेद बाल बेतरतीबी से फैले थे। वे चुपचाप खड़े थे पर मुझे लगा जैसे कह रहे हों, देखो दर्द भी क्या चीज है कोई बाँट नहीं सकता। उसे सब अकेला ही झेलते हैं। पापा को देखते ही मैं अपने दर्द से उनके दर्द की तुलना करने लगा। लगा इस विचार ने ही दर्द-निवारक गोली का काम कर दिया। मैंने सोचा, पापा तुम्हारे ऑपरेशन के बाद मैं शायद तुम्हें इस तरह देख भी न पाऊँगा जिस तरह तुम मुझे देख रहे हो क्योंकि तुम शायद आई०सी०यू० में होंगे या किसी ऐसी जगह जहाँ मैं पहुँच न सकूँगा तुम्हारे इस तरह मुझे देखने का एहसान मेरे ऊपर हमेशा के लिए बाकी रह जाएगा।

ऑपरेशन के एक दिन बाद मैं ठीक होने लगा। दूसरे दिन टहलने लगा। इस दौरान पापा के टेस्ट वगैरा चल रहे थे। हंगेरियन अस्पतालों में कोई हबड़-तबड़ नहीं होती क्योंकि नफा-नुकसान, लेन-देन आदि का कोई चक्कर नहीं है। इसलिए पापा के 'टेस्ट' काफी विस्तार से हो रहे थे। मैं दिन में घबराकर कमरे के चक्कर लगता था और उकताहट दूर करने के लिए या पता नहीं किसलिए दिन में दसियों बार पापा से पूछता था, होज वाज पापा? यानी कैसे हो पापा? पापा मेरे सवाल का हर बार एक ही जवाब

देते थे, 'कोसोनोम योल' यानी 'धन्यवाद, ठीक हूँ।' मैं समझता था कि शायद वे जानते थे कि मैं पता नहीं उनसे क्या-क्या कहना चाहता हूँ लेकिन नहीं कह पाता।

पापा लगभग पूरे दिन बड़े ध्यान से अखबार पढ़ा करते थे। वे हंगेरी का वह अखबार पढ़ते थे जो कम्युनिस्टों का था और अब समाजवादियों का अखबार है। पापा की अखबार में गहरी रुचि मुझे चमत्कृत कर देती थी। ऐसी उम्र में, इतनी खतरनाक बीमारी से जूझते हुए दुनिया में कितने लोगों की रुचि बचती है ! या तो लोग चुप हो जाते हैं या रोते रहते हैं। लेकिन पापा के साथ ऐसा न था। एक रात अखबार पढ़ने के बाद वे हाथ बढ़ाकर मेज पर चश्मा रखने लगे तो चश्मा फर्श पर गिर पड़ा। तब मैंने पापा के मुँह से ऐसी आवाज सुनी जो दुःख व्यक्त करने वाली आवाज थी। मैं तत्काल उठा और पापा का चश्मा उठाया। मैंने देखा, न केवल चश्मा बेहद गंदा था बल्कि उसे धागों से इस तरह बाँधा गया था कि कई जगहों से टूटा लगता था। जैसा भी रहा हो, उसका पापा के लिए बहुत ज्यादा महत्त्व था मैंने चश्मा उनकी तरफ बढ़ाया। उनकी आँखों में कृतज्ञता का स्पष्ट भाव था। चश्मा टूटा नहीं था। अगर टूट जाता तो? बहुत बुरा होता, बहुत ही बुरा।

दो-चार दिन बाद मेरी हालत ये हो गई थी, अपने बेड पर लेटा-लेटा मैं यह इंतजार किया करता था कि पापा की मदद करने का अवसर मिले। वे रात में सोने से पहले लैंप बंद करने के लिए उठते थे। उठने के लिए बड़ी मेहनत करनी पड़ती थी। पहले छड़ी टटोलते थे। फिर छल्ले में हाथ डालते थे। तब खड़े होते थे। बेड का पूरा चक्कर लगाकर दूसरी तरफ आते थे और तब लैम्प का 'स्विच' 'आफ' करते थे। मैं इंतजार करता रहता था। जैसे ही लैम्प बंद करने की जरूरत होती थी मैं जल्दी से उठकर लैम्प 'आफ' कर देता था। पापा 'कोसोनोय' कहते थे। इसी तरह दोपहर के खाने के बाद जैसे ही उनके बर्तन खाली होते थे मैं उठाकर बाहर रख आता था। पढ़ते-पढ़ते कभी उनका अखबार नीचे गिर जाता था तो झपटकर उठा देता था। कभी-कभी ये भी सोचता था कि यार मैं इस अजनबी बूढ़े के लिए यह सब क्यों करता हूँ? मुझे इस सवाल का जवाब नहीं मिलता था।

तीन दिन बाद आज हॉयनिका फिर रात की ड्यूटी पर है। पिछली बार जब वह रात की ड्यूटी पर थी तो उसके केबिन में जाकर मैंने उसे अमजद अली खाँ का सरोद सुनाया था। उसे पसंद आया था। उसने मुझे कॉफी पिलायी थी। इशारों, दो-चार शब्दों, हंगेरियन-अंग्रेजी शब्दकोश की मदद से कुछ बातचीत हुई थी। पता चला था वह विवाहित है। लेकिन उसके विवाहित होने ने मुझे हतोत्साहित नहीं किया था। क्या

विवाह कर लेना किसी लड़की की इतनी बड़ी गलती करार दी जा सकती है कि उससे प्रेम न किया जाए? नहीं, नहीं, कदापि नहीं। शादी कर लेने का मतलब है कि उससे गलती हो गई है। और हर तरह की गलती, भूल को माफ किया जाना चाहिए।

आज मुझे पता चला कि उसकी ड्यूटी है तो रात के दस बज जाने का इंतजार करने लगा। क्योंकि उसके बाद ही उसे कुछ फुर्सत होती थी। इस दौरान मुझसे मिलने एक-दो लोग आये। उनसे बातें होती रहीं। पापा की लड़की आई तो मैं अपने 'विजिटर्स' को लेकर बाहर आ गया। दरअसल अब मैं पापा और उनकी लड़की को बातचीत करने के लिए एकांत देने के पक्ष में हो गया था। कारण यह है कि एक दिन मैंने कनखियों से देखा था कि पापा अपनी लड़की को चुपचाप अस्पताल का खाना दे रहे हैं। लड़की इधर-उधर देखकर खाना अपने बैग में रख रही है। अस्पताल में रोटी, 'चीज' और दीगर चीजें खूब मिलती थीं। उन्हीं में से पापा कुछ बचाकर रख लेते थे और शाम को अपनी लड़की को दे देते थे। इसलिए अब जब उनकी लड़की आती थी तो मैं कमरे से बाहर आ जाता था।

आठ बजे के करीब सब चले गए। मैं कमरे में आकर लेटा रहा। हॉयनिका के बारे में सोचने लगा। मेरे और उसके संबंध मधुर होते जा रहे थे। न केवल उसकी मुस्कराहट में दोस्ती और अपनापन बढ़ रहा था बल्कि कभी-कभी बहुत प्यार से मेरा कंधा भी दबा देती थी। मैं भी अपनी तरफ से यही दिखाता था कि उसे पसंद करता हूँ। एक बार उसे छोटा-मोटा भारतीय उपहार भी दिया था। बहरहाल प्रगति थी और अच्छी प्रगति थी। चूँकि अस्पताल में कोरी कल्पनाएँ करने के लिए काफी समय रहता था इसलिए मैं हॉयनिका के बारे में मधुर, कोमल, छायावादी किस्म की कल्पनाएँ सभी करने लगा था। वह वैसे बहुत सुंदर तो न थी। क्योंकि हंगेरी में महिलाओं की सुन्दरता के मानदंड बहुत ऊँचे हैं। अक्सर सड़क पर टहलते हुए ऐसी लड़कियाँ दिख जाती हैं कि लगता है कि आप स्वर्ग की किसी सड़क पर टहल रहे हैं। पर वह सुन्दर न होते हुए भी अच्छी है। या शायद मुझे लगती हो। शायद इसलिए लगती हो कि मुझे थोड़ी-बहुत घास डाल देती है। बहरहाल कारण चाहे जो भी हो मैं ठीक दस बजे कमरे से बाहर आया। गैलरी की बत्तियाँ बंद हो चुकी थीं। चारों तरफ सन्नाटा था। डॉक्टर अपने कमरों में थके-मारे सो रहे होंगे। हॉयनिका अपने केबिन में बैठी कोई पत्रिका पढ़ रही थी। मुझे देखते ही उसने पत्रिका रख दी। मुझे बैठने के लिए कहा। वह कॉफी पी रही थी। छोटे-से कप में काली कॉफी। मुझे भी दी। मैं अमृत समझकर पीने लगा। इधर-उधर की टूटी-फूटी बातों के बाद मैंने उसे 'वाक्मैन' पर सितार सुनाया। मैं खुद हंगेरियन महिलाओं की

पत्रिका के पन्ने पलटता रहा। कॉफी ने मुँह का मजा चौपट कर दिया था लेकिन क्या कर सकता था। सितार सुनने के बाद उसने 'वाक्मैन' मुझे वापस कर दिया। मैंने मुस्कराकर उसकी तरफ देखा। वह सुन्दर लग रही थी। वहीं नींद में डूबी आँखें, बिखरे हुए बाल, लाल और कुछ मोटे होंठ, शरारत से भरी आँखें। मैंने धीरे से एक हाथ उसके कंधे पर रखा और कुछ आगे बढ़ा। उसकी आँखों में मुस्कराहट नाच उठी। वह कुछ नहीं बोली। बल्कि शायद मौन स्वीकृति। गैलरी का अँधेरा, बाहर लैम्प पोस्टों से आती पीली रोशनी, पेड़ों पर चमकती सफेद बर्फ, दूर से आती अस्पष्ट आवाजें। मैंने अपना चेहरा और आगे बढ़ाया। इतना आगे कि उसका चेहरा 'आउट आफ फोकस' हो गया। उसकी साँसें मुझसे टकराने लगीं। होंठों पर कॉफी, सिगरेट और 'लिपस्टिक' का मिला-जुला स्वाद था। होंठों के अंदर एक-दूसरा स्वाद था जिसमें न तो मिठास थी और कड़वाहट। उसका चेहरा एक ओर झुकता चला गया। मेरे हाथ कंधे से हटकर उसकी पीठ पर आ गए थे। उसके हाथ भी निश्चल नहीं थे। जब मैं उसे देख पाया तो उसके चेहरे पर बड़ा दोस्ताना भाव था। उसने मेरा हाथ पकड़ रखा था। उसकी प्याली में कॉफी बच गई थी। वह उसने मुँह में उड़ेल ली। मैं उठ गया। 'विसोन्तलात आशरा' का एक्सचेंज हुआ। कल मैंने उसे कुछ और नया संगीत सुनाने का वायदा किया। उसने हँसकर स्वीकार किया।

ये कुछ औपचारिक और अनौपचारिक के बीच वाली बात हो गई थी। मैं कमरे में आया तो इतना खुश था कि यह सोचा ही नहीं कि वहाँ पापा लेटे होंगे। पापा बिल्कुल सीधे लेटे थे। उनके सफेद बाल बिखरे हुए थे। उन पर खिड़की से आती चाँदनी पड़ रही थी। पापा का चेहरा फरिश्तों जैसा शांत लग रहा था। बिल्कुल काम, क्रोध, माया, मोह से अछूता। एक अजीब तरह की आध्यात्मिकता छायी हुई थी। ऐसा लगता था जैसे वे अस्पताल के बेड पर नहीं अपने ताबूत में कब्र के अंदर लेटे हों। उनके चेहरे से दैवी ज्योति फूट रही थी। मैं एकटक उन्हें देख रहा था। इससे पहले के दृश्य और इस दृश्य के बीच मैं कोई तारतम्य स्थापित करने की कोशिश कर रहा था। पर मुझे सफलता नहीं मिल रही थी। मुझे लगने लगा कि कमरे में नहीं ठहरा जा सकता। मैं बाहर आ गया। हॉयनिका अपने केबिन में थी पर मैं उधर नहीं गया। दूसरी तरफ मुड़ गया और एक लंबी, विशाल खिड़की से बाहर देखने लगा। पत्तीविहीन लंबे-लंबे पेड़ों की हवा में हिलती शाखाएँ, जमीन पर चमकती बर्फ, लोहे की रेलिंग के आगे फुटपाथ पर दूधिया रोशनी और उसके भी आगे मुख्य सड़क पर ऊँचे-ऊँचे पीली रोशनी फैलाते लैम्प पोस्ट खड़े थे। नीचे से कारों की हेडलाइटें गुजर रही थीं। खिड़की के बाहर का पूरा दृश्य

प्रकाश, अंधकार, गति और स्थिरता का एक कलात्मक कंपोजीशन-सा लग रहा था। तेजी से गुजरती कारें देखकर यह अजीब बेवकूफी का ख्याल आया कि इनमें कौन बैठा होगा? आदमी या औरत? व्यापारी, अपराधी, कर्मचारी, किसान, नेता, अध्यापक, पत्रकार, छात्र, प्रेमी युगल? कौन होगा? क्या सोच रहा होगा? उबाऊ और नीरस जीवन के बारे में या चुटकियों में उड़ा देने वाली जिंदगी के बारे में? फिर अपने पर हँसी आई। सोचा कोई भी हो सकता है, कुछ भी सोच रहा होगा, तुमसे क्या मतलब, जाओ सो जाओ। लेकिन फिर पापा की याद आ गई अंदर जाने में एक अजीब तरह की झिझक पैदा हो गयी।

मुझे अस्पताल में इतने दिन हो गए थे और मैं उस जीवन में इतना रम गया था कि लगा अब घर वापस गया तो अस्पताल 'मिस' करूँगा या शाम घर वापस लौटने के बजाय अस्पताल आ जाया करूँगा। क्योंकि अब मैं वार्ड में शायद सबसे सीनियर मरीज था इसलिए झिझक मिट गयी थी। मैं वार्ड के 'किचन' तक मैं चला जाता था। अपने लिए चाय बना लेता था। गैलरी में खूब टहलता था। नये मरीज़ों से बात करने की कोशिश करता था। पुराने मरीजों को जान-पहचान वाली 'हेलो' करता था। यह देखना भी मजेदार लगता था कि मरीज आते हैं तो उनके चेहरों पर क्या भाव होते हैं। ऑपरेशन के बाद कैसे लगते हैं और ठीक होकर वापस जाते समय उनके चेहरों पर क्या भाव होते हैं। और कुछ नहीं तो सुन्दर नर्सों और लेडी डॉक्टरों की चाल देखता था। उससे भी उकता जाता था तो बाहर गिरती बर्फ में लदे पेड़ देखता था। देखने वाली चीजों में पापा की मेज पर रखा जूस का डिब्बा भी था जिसे मैं कई दिन से उसी तरह रखा देख रहा था जैसा वह था। पापा ने उसे नहीं खोला था। वह जैसे का तैसा कई दिन से वैसा ही रखा था।

हंगेरियन मैं नहीं जानता लेकिन इतना मालूम है कि संसार की किसी भाषा के समाचारपत्र में कई दिन तक 'प्रमुख शीर्षक' एक नहीं हो सकता। पापा जो अखबार तीन दिन से पढ़ रहे थे उसमें मुझे ऐसा लगा। यानी वे तीन दिन से पुराना अखबार पढ़ रहे थे। मुझे अखबार पर गुस्सा आया। यह ताजा अखबार की बदनसीबी थी कि वह पापा तक नहीं पहुँचता। दोपहर जब अखबार बेचने वाला आया और पापा सो रहे थे तो मैंने उससे नया अखबार लेकर पापा की मेज पर रख दिया और पुराना बाहर रख आया। पापा जब उठे तो उन्हें नया अखबार मिला। वे समझ नहीं पाये कि यह कैसे हो गया। मैं बताना भी नहीं चाहता था।

हॉयनिका दो-तीन दिन के 'गैप' के बाद रात की ड्यूटी में ही आती थी। मैं बराबर

उससे मिलता था। लेकिन एक-आध बार भाषा की बाधा के कारण काफी खीज गया और सोचा किसी हंगेरियन मित्र के माध्यम से कभी हॉयनिका से लंबी बातचीत करूँगा। हमारी मित्रता में शब्दों का अभाव अब बुरी तरह खटकने लगा था। और लगता था इस सीमा को तोड़ना जरूरी है। एक दिन शाम जब मारिया आयीं तो मैंने उनसे अपनी समस्या बताई। उन्होंने कहा-''ठीक है, आप द्विभाषिए के माध्यम से प्रेम करना चाहते हैं।''

मैंने कहा-''नहीं, ये बात नहीं है। लेकिन मुझे लगता है कि अब मुझे उसके बारे में कुछ अधिक जानना चाहिए। हो सकता है उसके मन में भी यह हो।'

खैर तय पाया कि शाम के जरूरी काम जब वह निपटा लेगी तो हम उसके केबिन में जाएँगे और मारियाजी के माध्यम से बातचीत होगी। मैं खुश हो गया कि मेरी अमूर्त कल्पनाओं को कुछ ठोस सहारा मिल सकेगा।

हम हॉयनिका के केबिन में गए तो वह पत्रिका पढ़ रही थी और कॉफी पी रही थी। मारिया ने उसे जब मेरे और अपने आने का कारण बताया तो उसके चेहरे पर एक मुस्कराहट फैलती चली गई।

मैंने मारिया से कहा, पहले तो इसे बताइए कि मुझे इस बात का कितना दुःख है कि मैं हंगेरियन नहीं बोल सकता और उससे बातचीत नहीं कर सकता। यही वजह है कि मैं न उससे वह सब पूछ सका या कह सका जो चाहता था। मेरी बातों पर वह लगातार मुस्कराये जा रही थी।

''ये कहाँ रहती है?''

''बुदापेश्त से दूर एक छोटा-सा शहर है वहाँ रहती है।''

''वहाँ से आने में कितना समय लगता है?''

''तीन घंटे।''

''तीन घंटे आने में और तीन ही जाने में?''

''जी हाँ''

''यहाँ क्यों नहीं रहती है?''

''यहाँ फ्लैटों के किराये इतने ज्यादा हैं कि वह 'एफोर्ड' नहीं कर सकती००० और वहाँ इसने किश्तों पर एक मकान खीरद लिया है।''

''कितनी किश्त देनी पड़ती है?''

''पंद्रह हजार फोरेन्त महीना।''

''और इसे तनख्वाह कितनी मिलती है?''

''सत्रह हजार फोरेन्त...''

''तो कहाँ से खाती-पीती है?''

''इसका पति भी काम करता है।''

''क्या काम करता है?''

''चौकीदार है...किसी फैक्ट्री में!'' सुनकर मुझे लगा कि यह नितांत अन्याय है। सुन्दर महिलाओं के पतियों को उनकी पत्नियों की सुंदरता के आधार पर नौकरी मिलनी चाहिए।

''इसकी एक दो साल की बच्ची भी है।''

''उसे कौन देखता-भालता है?''

''दिन में ये देखती है...कभी-कभी इसकी माँ और रात में इसका पति...यह कह रही है कि उसकी जिन्दगी काफी मुश्किल है। लेकिन घर-परिवार की या निजी-समस्याएँ यह अपने साथ अस्पताल नहीं लाती। यहाँ तो हर मरीज के साथ हँसकर बात करनी पड़ती है।''

यह सुनकर मैं चौंक गया। 'हर मरीज' में तो मैं भी आ गया और 'करनी पड़ती है' का मतलब विवशता है। कुछ क्षण में खामोश रहा।

पता नहीं क्यों मैंने मारिया से कहा-''इससे पूछिए कि इसकी सबसे बड़ी इच्छा क्या है? यह क्या चाहती है कि क्या हो? बड़ी ख्वाहिश, अभिलाषा?''

''ये कह रही है कि इसकी सबसे बड़ी कामना यही है कि हर महीने मकान की किश्तें अदा होती रहें और मकान उसका अपना हो जाए...और यह भी चाहती है कि उसे एक बेटा भी हो। यानी एक बेटी, एक बेटा और अपना मकान।''

''ठीक है, ठीक है...बहुत अच्छा...अब चलें।'' मैं थोड़ा घबराकर बोला। मारिया मुस्कराने लगीं-बहुत अर्थपूर्ण और कुछ-कुछ व्यंग्यात्मक।

कल पापा का ऑपरेशन है। आज वे अच्छी तरह नहाये हैं। अच्छी तरह कंघी की है। मैं आज उनसे आँख मिलाने की हिम्मत नहीं कर सकता। उनकी धुँधली आँखों में देखना आज मुश्किल काम है।

शाम के वक्त कुछ जल्दी ही उनकी लड़की आ गई। आज वह बहुत ज्यादा उदास

लग रही है। दोनों धीमे-धीमे बातें करने लगे। पापा की आवाज में सपाटपन है। वे बोलते-बोलते रुक जाते हैं। कुछ अंतराल पर थोड़ी बातचीत होती है। फिर दोनों सिर्फ एक-दूसरे को देखते हैं। पापा की आँखें गहरी सोच में डूबी हुई हैं। वे छत की तरफ देख रहे हैं। लड़की खिड़की के बाहर देख रही है। बाहर से आवाजें आ रही हैं। पापा ने कुछ कहना शुरू किया। लड़की शायद सुन नहीं पा रही थी। वह और अधिक पास खिसक आयी। उसी वक्त मारिया कमरे में आयी। उनका आना दैवी कृपा जैसा लगा। अभी वे अपना ओवरकोट, भारी-भरकम टोपी उतारकर बैठने भी न पाई थीं कि मैंने फरमाइश कर दी-

''जरा बताइए...क्या बातचीत हो रही है?''

''आप भी कुछ अजीब आदमी है।'' वे हँसकर बोलीं।

''कैसे?''

''पूरे अस्पताल में आपको दो ही लोग पसंद आए हैं। एक पापा दूसरे हॉयनिका। है ना?''

''हाँ, है।''

''और दोनों में अद्‌भुत साम्य है।'' वे हँसी।

''देखिए, बात मत टालिए...पापा कुछ कह रहे हैं जरा सुनिए क्या कह रहे हैं।'' कुछ सुनने के बाद मारिया बोलीं-''पापा कह रहे हैं अब मैं किसी से नहीं डरता। अब मेरा कोई क्या बिगाड़ सकता है। मैं सच बोलूँगा...'' मारिया जी चुप हो गयी। पापा भी चुप हो गये थे। बातचीत का चूँकि कोई ओर-छोर न था इसलिए मैं सोचने लगा ये पापा क्या कह रहे हैं? अब किसी से नहीं डरते...मतलब पहले किसी से डरते थे। किससे डरते थे? बूढ़ा आदमी, जो हर तरह से अच्छा नागरिक मालूम होता है, किसी से क्यों डरेगा? और अब वह डर नहीं रहा। ये कैसा डर है जो पहले था अब खत्म हो गया? इस पहेली को सुलझाना मेरे बस की बात न थी। मैं पूछ भी नहीं सकता था। किसी के डरने का कारण पूछना वैसे भी असभ्यता है और निश्चित रूप से अगर डर किसी बूढ़े आदमी का हो तो और भी। पापा की दूसरी बात समझ में आती है, अब उनका कोई क्या बिगाड़ सकता है? ये तय है, कि चौरासी वर्षीय कैंसर के मरीज का कोई कुछ नहीं बिगाड़ सकता, क्योंकि यह स्पष्ट है कि अब उसका सामना सीधे मृत्यु से है। और जो कब्र में पैर लटकाये बैठा हो उसे क्या सजा दी जा सकती है? सबसे बड़ी सजा तो मृत्युदण्ड ही है न। सबसे बड़ी इच्छा जीवित रहने की ही है ना? तो जो इनसे ऊपर उठ

गया हो उसका कोई कानून, कोई समाज, कोई व्यवस्था क्या बिगाड़ सकती है? और जब उनका कोई बिगाड़ नहीं सकता तो वे 'सब कुछ' कह सकते हैं। जो महसूस करते हैं बता सकते हैं। हद यह है कि 'सच' तक बोल सकते हैं। सच-एक ऐसा शब्द जो घिसते-पिटते बिल्कुल विपरीत अर्थ देने लगा है। लेकिन चौरासी वर्षीय कैंसर-पीड़ित पापा, आठ घंटे का ऑपरेशन होने से पहले अगर 'सच' शब्द का प्रयोग कर रहे हैं तो वास्तव में उसका वही मतलब है जो है। पर वह सच है क्या जो पापा बोलना चाहते है? और इससे पहले उन्होंने 'सच' क्यों नहीं कह दिया? फैज की पंक्तियाँ आद आ गयी-'हर्फ़े हक दिल से खटकता है जो काँटे की तरह। आज इजहार करें और खलिश मिट जाये।' तो पापा आज वह सत्य कहना चाहते हैं जो उनके दिल के बोझ को हल्का कर देगा। ठीक है पापा, कहो, जरूर कहो। कभी, कहीं, कोई किसी तरह यह कहे तो कि 'हक' क्या है?

अगले दिन लंबे इंतजार के बाद शाम होते-होते पापा ऑपरेशन थियेटर से वापस लाए गए तो लगा जैसे तारों, नलकियों, बोतलों, बैगों, का एक तिलिस्म है जो उनके चारों ओर लिपट गया है। पता नहीं कितनी तरह की दवाएँ, कितनी जगहों से पापा के शरीर के अंदर जा रही थीं और शरीर से क्या-क्या निकल रहा था जो बेड के नीचे लटकते बैगों में जमा हो रहा था। इन सबमें जगड़े पापा को देखने की हिम्मत नहीं थी। वे बिल्कुल शांत थे, आँखें बंद थीं। शायद बहोश थे। वे सब बातें, वे सब डर, जो मेरे अंदर छिपे बैठे थे, सामने आ गए। पापा०००बेचारे पापा०००नर्सें थोड़ी-थोड़ी देर के बाद आ रही थीं और आवश्यक कार्यवाही कर हरी थीं। कुछ देर बाद उनकी लड़की आई। नर्स से बातचीत करके चली गयी। रात में मैं कई बार उठा लेकिन पापा की हालत में कोई बदलाव नहीं देखा। न हिल रहे थे, न डुल रहे थे, न खर्राटे ले रहे थे। बस ग्लूकोस की टपकती बूँदें ही बताती थीं कि सब कुछ ठीक है। रात में कई बार नर्स आयी, उसने बोतलें बदली, थैलियाँ बदलीं और पापा का टेम्प्रेचर वगैरा लिया और चली गयी।

रात में मुझे तरह-तरह के ख्याल आते रहे। कुछ बड़े भयानक ख्याल थे। जैसे अचानक नर्स घबराकर खट-खट करती हुई बाहर जायेगी। दूसरी ही क्षण कई डॉक्टर आ जायेंगे। पापा को बाहर निकाला जायेगा और फिर कुछ देर बाद दो-तीन लोगों के साथ पापा की लड़की आयेगी। वह सिसक रही होगी। उसकी आँखें लाल होंगी। वह धीरे-धीरे पापा का सामान समेटेगी। पापा का चश्मा, उनकी डायरी, उनका कलम, उनके कपड़े, जूते, तौलिया, साबुन और वह छोटी-सी गठरी जिसमें से सख्त बदबू आती है। मेज पर रखा जूस का वह डिब्बा उठायेगी जो अब तक बंद है। दराज खोलेगी

तो उसमें से कुछ खाने का सामान, छुरी-काँटा और चम्मच निकलेगा। इस सबके दौरान वह रोती रहेगी। साथ वाले लोग सान्त्वना के एक-आध शब्द कहेंगे। फिर सब सामान समेटकर वह पापा के बेड पर एक नजर डालेगी और चीखकर रो पड़ेगी। उसी समय बड़ी नर्स आयेगी और उसे कंध से पकड़कर बहुत-धीरे-धीरे कुछ समझाती हुई बाहर ले जायेगी। कमरे से पापा के वहाँ रहने के सारे सबूत मिट जायेंगे। थोड़ी देर के लिए खिड़की खोली जायेगी तो ताजी हवा अंदर आयेगी। छोटी नर्सें खटाखट बड़े कवर, तकिये, गिलाफ और चादरें बदल देंगी। लोहे के सफेद बेड को साफ कर देगी और बाहर निकल जायेंगी। अब वहाँ सिर्फ मैं बचूँगा। और अगर मैं किसी को बताना भी चाहूँगा कि बेड पर पापा ने जिन्दगी के सबसे सच्चे क्षण गुजारे हैं तो किसी को यकीन नहीं आएगा।

दो दिन तक पापा की हालत बिल्कुल एक-सी रही। उसके बाद मेरा अपना छोटा वाला ऑपरेशन हुआ और मैं पड़ गया। एक-आध दिन के बाद करीब शाम के वक्त जब मेरे पास मारिया और पापा के पास उनकी लड़की बैठे थे तो सीनियर नर्स आयी और बोली कि पापा को बैठाया जायेगा। उसने पापा का बेड ऊँचा किया। पापा दर्द से चिल्लाने लगे। फिर बेड नीचा कर दिया गया। लेकिन नर्स ने कहा कि इस तरह काम नहीं चलेगा। आखिर दोनों के बीच फैसला हुआ कि जितना ऊँचा पहले किया गया था उसका आधा ऊँचा कर दिया जाये। उस दिन मारिया ने बताया कि पापा कह रहे हैं कि "भगवान की कृपा से अब मैं डेढ़-दो साल और जी जाऊँगा।" मारियाजी को इस वाक्य पर बड़ी हँसी आयी थी। उन्होंने कहा था कि भगवान पर ऐसा विश्वास हो तो फिर क्या समस्या है। पापा अपनी लड़की को यह भी बता रहे थे, उनका खाना बंद है और वे सूखकर काँटा हो गये हैं। पापा सिर्फ 'लिक्विड डाइट' पर थे। जूस का सौभाग्यशाली डिब्बा खुल गया था। उसके अलावा पापा को कॉफी और सूप मिलता था।

एक-आध दिन बाद मैं बाथरूम से कमरे में आया तो एक अद्‌भुत दृश्य देखा। बेड का सहारा लिए पापा खड़े थे। उनके सफेद बाल बिखरे थे। सफेद लम्बा-सा अस्पताल का चोगा लटक रहा था। हाथ और पैर बिल्कुल काले हो गए थे। शरीर के चारों ओर कुछ नलकियाँ और बैग झूल रहे थे। उनके चेहरे पर कोई भाव न थे। अपने खड़े रहने पर वे इतना ध्यान दे रहे थे कि कुछ व्यक्त करने का उनके पास समय ही न था। मैंने सोचा कि उनके खड़ा होने पर बधाई दूँ या कम-से-कम हंगोरियन शब्द 'यो' 'यो' कहूँ जिसका मतलब 'अच्छा', 'सुन्दर' आदि है। लेकिन फिर लगा कि कहीं मैं

पापा को 'डिस्टर्ब' न कर दूँ। उसी तरह, जैसे बच्चे जब पहली-पहली बार खड़े होते हैं और उन्हें देखकर माता-पिता हँस देते हैं तो वे धप्प से बैठ जाते हैं। पापा खड़े रहे। उन्होंने एक बार गर्दन उठाकर सामने देखा। एक बार गर्दन झुकाकर नीचे देखा। बेड को पकड़े-पकड़े एक कदम आगे बढ़ाया, उसके बाद वे रुक गये। पापा को खड़े देखकर यह लगा कि केवल पापा ही नहीं खड़े हैं। उनके साथ न जाने क्या-क्या खड़ा हो गया है। मैं एकटक भी नहीं देख सकता था। डर था कहीं पापा मुझे देखता हुआ न देख लें।

मेरे अस्पताल से निकाल दिये जाने के दिन करीब आ रहे थे। मैं जानता था कि जितना यहाँ आराम है, उतना कहीं और न मिलेगा। जितनी यहाँ शांति है उतनी शायद शांतिनिकेतन में भी न होगी। यहाँ समय अपने वश में लगता है लेकिन बाहर मैं समय के वश में रहता हूँ। बहरहाल अस्पताल से बाहर जाने का विचार इस माने में तो अच्छा था कि ठीक हो गया हूँ लेकिन इस अर्थ में अच्छा नहीं था कि बाहर अधिक खुश रहूँगा। अस्पताल के जीवन का मैं इतना अभ्यस्त हो गया था या वह मुझे इतना पसंद आया था कि बाहर निकाल दिये जाने का विचार एक साथ खुशी और अफसोस की भावनाओं का संचार कर रहा था। हॉयनिका ने भी एक बार मजाक में कहा था कि मेरे अस्पताल से चले जाने के बाद मैं उसे बहुत याद आऊँगा। मैंने कहा था कि अस्पताल के बाहर भी कहीं मिला जा सकता है। लेकिन फिर खुद अपने प्रस्ताव पर शर्मिन्दा हो गया था-दो-तीन घंटे की यात्रा और पूरी रात अस्पताल की ड्यूटी के बाद सुबह सात बजे तीन घंटे की यात्रा करने के लिए निकलने वाले से 'कहीं बाहर' मिलने की बात करना अपराध लगा।

पापा को खाना दिया जाने लगा था। अब वे अपनी लड़की से यह शिकायत करते थे कि खाना कम दिया जाता है। कई दिन भूखे रहने के बाद उनकी खुराक शायद बढ़ गई थी। लेकिन इस संबंध में कुछ नहीं किया जा सकता था। अस्पताल वाले नियमित मात्रा में ही खाना देते थे। पापा अब चूँकि थैलियाँ लटकाए चलने-फिरने लगे थे इसलिए भी भूख खुल गयी होगी। ऑपरेशन के बाद पापा के पास से वह दुर्गंध आना बंद हो गयी थी, लेकिन कभी-कभी वह 'ट्यूब' या थैली खुल जाती थी जिसमें टट्टी आती थी। उसके खुलते ही भयानक दुर्गंध कमरे में भर जाती थी और बाहर निकलने के अलावा कोई रास्ता न बचता था। एक दिन यह हुआ कि पापा की टट्टी वाली थैली खुल गयी। उन्होंने उसे स्वयं बंद करने की कोशिश की तो वह और ज्यादा खुल गयी। मैं कमरे से बाहर चला गया। कुछ देर बाद कमरे में आया तो देखा पापा खड़े हुए थैलियों से जूझ रहे हैं। टट्टी की थैली से गंदगी निकलकर बिस्तर और फर्श पर फैल

गयी है। पापा का चोगा उतर गया है। व बिल्कुल नंगे खड़े हैं। सफेद बाल बिखरे हुए हैं। पापा थैलियों को लगाने की कोशिश कर रहे थे। नर्स को नहीं बुला रहे। यह देखकर अच्छा लगा। पापा अब ये काम अपने आप कर सकते हैं। लेकिन मैंने नर्सों से जाकर कहा। वे आयी। पापा और कमरे की पूरी सफाई हो गयी। पापा नए चोगे में लेट गये। चश्मा लगाकर अखबार ले लिया। खिड़की खोल दी गयी। मैं भी लेट गया, अमजद अली खाँ को सुनने लगा।

पापा कुर्सी पर भी अक्सर बैठ जाते थे। एक दिन मैंने देखा कि पापा चश्मा लगाये, गंभीर मुद्रा में, हाथ में कलम लिए कुर्सी पर बैठे हैं। सामने मेज पर कुछ कागज रखे थे। मैं समझा शायद कुछ हिसाब लिख रहे हैं, लेकिन कलम चलने की रफ्तार से कुछ समझ में नहीं आया। न तो वे पत्र लिख रहे थे, न डायरी लिख रहे थे, न हिसाब कर रहे थे। वे कलम को हाथ में पकड़े गंभीरता से कागज की तरफ देखकर देर तक कुछ सोचते थे और फिर झिझकते हुए कलम उठाते थे। एक-आध शब्द लिखते थे और फिर कलम रुक जाता था। एकाग्रता बहुत गहरी थी। माथे पर लकीरें पड़ी हुई थीं। चिंता में डूबे थे जैसे कोई ऐसा काम कर रहे हों जो उनके लिए जरूरी से भी ज्यादा जरूरी हो। यह जानने के लिए ऐसा क्या हो सकता है, मैं उठा और टहलने के बहाने पापा के पीछे पहुँच गया। अब मैं देख सकता था कि वे क्या कर रहे हैं। मैंने देखा पापा यूरोप की सबसे बड़ी लाटरी 'लोटोटोटो' के नम्बर भर रहे हैं वाह पापा वाह! तो ये ठाठ है। इसका मतलब है अब तुम बिल्कुल 'चंगे' हो गए हो। लाटरी वह भी यूरोप की सबसे बड़ी लाटरी...सौ मिलियन फोरेंत। भई वाह...क्या करोगे इतना पैसा पापा? चर्च बनवाओगे? उस भगवान का घर जिसकी कृपा से तुम साल-डेढ़ साल और जीओगे या अपने लिए शानदार कोठी बनवाओगे? या हर साल जाड़ों में फ्रांस के समुद्र-तट पर जाया करोगे? समुद्र में नहाओगे? खूबसूरत फ्रांसीसी लड़कियों के साथ 'बीच' पर लेटकर अपना रंग सुनहरा करोगे? या ये सौ मिलियन डालर तुम अपनी लड़की को दे दोगे? या महँगी-महँगी गाड़ियाँ खरीदोगे। जायदाद बनाओगे या कोई सरकारी फैक्टरी खरीद लोगे जो आजकल धड़ाधड़ बिक रही हैं? क्या करोगे पापा? या उनके लिए कुछ करोगे जो रोज गोश्त नहीं खा पाते? क्या करोगे सौ मिलियन फोरेंत? ये बताओ कि अगर ये लाटरी तुम्हारे नाम निकल आयी तो तुम्हें यह सूचना देने का जोखिम कौन उठाएगा? यह सुनकर तुम्हें क्या लगेगा कि मरने से डेढ़-दो साल पहले तुम करोड़पति हो गए हो? फिर तुम्हारे लिए एक मिनट एक महीने जैसा कीमती होगा। तब तुम अपना एक मिनट कितनी होशियारी, चतुराई, सतर्कता, समझदारी से गुजारोगे? कुछ भी कहो

पापा, सौ मिलियन मिलने के बाद तुम्हारी परेशानियाँ बढ़ ही जायेंगी। लेकिन यह बड़ी बात है कि तुम्हारे मन में अब भी यह इच्छा बची हुई है। कितने ऐसे लोग मिलेंगे जो तुम्हारी उम्र तक पहुँचते-पहुँचते इच्छाओं से खाली हो जाते हैं। तुम्हारे पास सौ मिलियन फोरेन्त खर्च करने की योजना भी होगी। क्योंकि हर लाटरी खेलने वाले के पास इस प्रकार की योजना होती है। तुम्हारे पास योजना है तो तुम सोचते हो अपने बारे में, परिवार के बारे में, लोगों के बारे में। यह बहुत है पापा, बहुत है। अच्छा पापा, एक बात पूछूँ? कान में ताकि कोई और सुन न लें। ये बताओ कि यह इच्छा-मतलब लाटरी निकल आने की इच्छा कब से है तुम्हारे मन में? क्या मंदी के दिनों से है जब तुम जवान और बेरोजगार थे? या उस समय से है जब जर्मन और रूसी गोलियों से बचने तुम किसी अँधेरे तहखाने में छिपे हुए थे? क्या यह इच्छा उस समय भी थी तुम्हारे मन में जब तुम विजयी लाल सेना का स्वागत कर रहे थे? बाद के दिनों में क्रांति के गीत गाते हुए या सहकारी आंदोलन में रात-दिन भिड़े रहने के बाद भी तुम यह सपना देखने के लिए थोड़ा-सा समय निकाल लेते थे? माफ करना पापा, मैं ये सब इसलिए पूछ रहा हूँ कि ऐसे सपने देखना कोई बुढ़ापे में शुरू नहीं करता है न?

असगर वज़ाहत

जन्म	:	5 जुलाई, 1946, फतेहपुर (उत्तर प्रदेश)
प्रकाशन	:	मैं हिन्दू हूँ, दिल्ली पहुँचना है, स्वीमिंग पुल, सब कहा कुछ (कहानी संग्रह)सात आसमान, कैसी आगी लगाई, रात में जागने वाले, पहर-दोपहर, मन माटी, चहारदर, फिरंगी लौट आए, जिन्ना की आवाज, वीरगति, समिधा (उपन्यास) जिन लाहौर नहीं देख्या (नाटक)
सम्मान	:	साहित्यकार सम्मान (हिन्दी अकादमी), इंदुशर्मा कथा सम्मान, कथाक्रम सम्मान

अपराध

–संजीव

रात के खौफनाक अँधेरे को चीरते हुए मेरी ट्रेन भागती जा रही है। एक अँधेरी सुरंग है कि मेरे समूचे अस्तित्व को निगलती जा रही है। यूँ मैंने सारी खिड़कियाँ बंद कर ली हैं, फिर भी एक शोर है कि जिस्म के पुर्जे-पुर्जे धमक रहे हैं, यादों का एक काफिला है कि मेरे मरु-मन का जर्रा-जर्रा कुनमुनाकर ताकने लगता है।

जेहन में धीरे-धीरे आकार ले रही है एक हवेली...कस्बे में व्यवस्था और सत्ता की प्रतीक मेरी हवेली-'कंचनजंघा'। धीरे-धीरे कई चेहरे उभर रहे हैं, प्रभुसत्ता रोबीले सेशन जज-पापा, एस.पी. - बड़े भैया, जिलाधीश-छोटे भैया, गृह विभाग के सचिव-जीजा, उनके प्रभाव का एहसास कराती हुई गवीली बहन, सबके अपने-अपने पोस्टेड जिलों में चले जाने पर उदास राजमाता की तरह मम्मी, न जाने कितने मंत्रियों, अफसरों और ऊँचे ओहदे वालों के गड्डमड्ड चेहरे! एक अजीब-सा खिंचाव, एक अजीब-सा खौफ समाया रहता है यहाँ के लोगों में कंचनजंघा के प्रति। मैंने बचपन से ही इस खिंचाव का अनुभव किया है। कपड़े की बॉल और पीढ़े का बल्ला बनाकर खेले जा रहे क्रिकेट या कॉच की गोलियों जैसे खेल, गवर्नेस, खानसामा, दाइयाँ, ट्यूटर्स, सेंट-विसेंट और सेंट पैट्रिक्स स्कूलों में पलते मेरे वजूद को देखकर थम जाते और वे मुझे टुकुर-टुकुर ताकने लगते। ऐसा लगता, मुझे मेरी इच्छा के विरुद्ध कुछ इतर, कुछ विशिष्ट बनाने का षड्यंत्र चल रहा है और एक अस्वीकार समाता रहा अवचेतन में। पापा कहते, 'जाने किस धातु का बना है!' पूरे परिवार में 'सिद्धार्थ' की उपाधि से मैं आभूषित था।

'खैर, एक लड़का ऐसा ही सही!' और माँ सबकी चिंताओं पर स्टॉप लगा

दिया करतीं।

प्रेसिडेंसी कॉलेज में दाखिले के बाद पहली बार परिवार की तमाम बंदिशों से मिली आजादी, जगह-जगह दीवारों पर लिखे-पॉलिटिकल पावर फ्लोज फ्रॉम द बैरेल ऑफ द गन!...नक्सलबाड़ीर पोथ आमादेर पोथ! ...जैसे नारे। माओ की लाल किताब, कॉलेज स्ट्रीट के फुटपाथों तथा कॉलेज स्क्वायर पार्क के 'गोलदीघी' के होने वाले हेतमपुर, विद्यासागर, यादवपुर, शिवपुर इंजीनियङ्करग कॉलेज के छात्रों के बीच के घुमन्तू चर्चे! ...ऐसे गर्म-परिवेश में पकने लगा था मेरा झिझक-भरा शांत व्यक्तित्व। कुछ ही दिनों में मन के अवचेतन में दबा अस्वीकार सर उठाने लगा। क्लास तो हम नाममात्र को करते। हाँ, इस बीच बहुत-सा बाहरी साहित्य पढ़ने को मिला। मार्क्स, ऐंगेल्स, हेगेल, लेनिन और माओ पर विस्तृत चर्चाओं में शामिल होने का मौका मिला और बुर्जुआ, पेटी बुर्जुआ, रिवीजनिस्ट, प्रतिक्रियावादी, होमोसेपियंस, लाल सलाम आदि नए-नए शब्द आ जुड़े मेरे शब्दकोश में और इन्हीं के साथ-साथ परिचय के फैलते दायरे में आ जुड़ा सचिन-संघमित्रा का परिवार, जहाँ अकसर ही मेरी शामें गुजरने लगीं। उनके पिता 'कल्याणी सेनिटोरियम' में क्षय का उपचार करा रहे थे और उनकी अनुपस्थिति हमारे लिए वरदान साबित हो रही थी। कभी-कभी हमारे वाद-विवाद अतिरेक में इतने तीव्र हो उठते कि बगल के कक्ष में पढ़ती हुई संघमित्रा गुस्से से उफनती हुई, भड़भड़ाकर किवाड़ खोलकर, धम-धम पाँव पटकती हुई हमारे बीच आ खड़ी होती, 'आई से स्टॉप दिस नॉनसेंस! अपने कैरियर के साथ-साथ मेरा कैरियर भी ले डूबेगा। बुलबुल!' सचिन को वह उसके बुलाने वाले नाम 'बुलबुल' से ही बुलाया करती थी... और हम सन्नाटा खींच लिया करते। वार्तालाप की चिंन्दियाँ बिखर जातीं।

वह मेडिकल की ओर मेधावी छात्र थी, सचिन से एक साल बड़ी होने का लाभ उठाकर गार्जियन की तरह डाँटा करती। इम्तिहान वगैरह के चक्कर न होते तो वह दरवाजे पर खड़ी-खड़ी हमारी बातें सुनती और मूड में आने पर हमारी पूरी बटालियन पर अकेले ही तिलमिला देने वाला सधा वार करती, 'जो अपना कैरियर नहीं बना सका, वह सोसाइटी और देश का क्या बनाएगा?'

'दीदी, तूमी बूझबेना। एइजे पूँजीवादी, सोमोन्तोवादी शिक्षा-व्योवस्था...!'

'चुप कोर! प्रोतिभा थाकले जे कोने जाएगा थेके स्कोप कोरे नेवा जाए आर ना थाकले...'

'थाक! थाक!'

और दोनों भाई-बहन मुँह फुला लिया करते।

उन दिनों संघमित्रा को मैं कनखियों से देख लिया करता और यदाकदा वह इसे मार्क कर लिया करती। मगर किसी बेतकल्लुफी के अभाव में उसका अस्तित्व मेरे मन में अँखुआ नहीं पाया था। आखिर वह झिझक भी टूट गई 'दीघा' की पिकनिक पर। वहाँ पहली बार मैं उसके व्यक्तित्व के सौंदर्य के घटक पर अभिभूत हुआ।

मैं पानी के अंदर जाने से डर रहा था और वह ताने दे बैठी थी, 'यह हिम्मत है और चले हो बगावत करने!' मैंने बताया, 'मेरी मम्मी को किसी साधु ने बताया था कि मेरी मौत पानी में होगी। इसीलिए वहाँ पास ही गंगा और यहाँ गोलदीघी के पास रहकर भी तैरना सीख नहीं सका आज तक।' वह हँसते-हँसते गिर पड़ी थी मेरे बदन पर, '...ओह! ...ओह!! ...डोण्ट माइंड!' फिर सचिन को इशारा करते हुए बोली, 'एई जे तुमार 'जोद्धारा' ...की बोलो तोमारा ...लाल सिपाई!' सचिन अपनी शिकस्त से उबरने के लिए बोला, 'दीदी कितनी बड़ी 'जोद्धा' है... जानते हो? पहली बार लैब में मुर्दे की चीर-फाड़ देखकर बेहोश हो गई थी।' - 'सच!' मैंने चिढ़ाया तो वह छिछले पानी में मुझे ढकेलती हुई मारने दौड़ पड़ी।

'सत्ता पा जाने पर तुम भी वैसे ही ढल जाओगे... जे जाय लोंका, सेइ होय रावोन!' आँचल निचोड़ते हुए वह कहने लगी, 'देखती हूँ, बड़े आए हो खूनी क्रांति करने वाले, समाज और व्यवस्था बदलने वाले, डिस्पैरिटी मिटाने वाले! अरे, मैं कहती हूँ, चूल्हे में डालो मार्क्स, लेनिन, माओ, चाओ को! आदमी अपनी प्रवृत्ति से ही हिंसक होता है, अपराधवृत्ति खत्म करनी है तो जींस बदल डालो... जींस!'

पूजा की छुट्टियों में घर आया तो पापा सारा-कुछ सूँघ बैठे थे। आते वक्त उन्होंने साफतौर पर मुझे बता दिया कि पढ़ना है तो ढंग से पढ़ो, वरना छोड़कर चले आओ। मम्मी ने तो मुझसे आश्वासन ही ले लिया कि मैं अपने पाँव डगमगाने नहीं दूँगा। लेकिन कलकत्ता आने पर 'फिर बेताल डाल पर' वाली बात हो जाया करती। मैं न भी जाता तो संघमित्रा मुझे हॉस्टल में ही बुलाने चली आती। मैं जब कहता, 'विरोक्तो कोरो न रानी!' (उसका पुकारने का नाम रानी था) तो वह ठिठोली कर बैठती, 'एसो आमार राजकुमार, एसो ना!' और मेरी मोर्चाबंदी भरभराकर गिर जाती।

मेरे साहित्यिक रुझान पर दोनों ही कुढ़ा करते। सचिन बिगड़कर बोलता, 'भावुकता, चेतना का अपव्यय है, डिस्ट्रैक्शन है। ये लफ्फाज, कामचोर, माटी के शेर, क्रांति का साहित्य लिखने वाले इन लोगों को फील्ड में ले जाया जाए तो पेशाब कर दें। इन सबों को खेतों और फैक्टरियों में लगा देना चाहिए!' फिर वह वियतनाम, कम्बोडिया,

लाओस, कोरिया, चिली, क्यूबा, रूस, चीन आदि की बातें ले बैठता। संघमित्रा तो अकसर इससे भी बुरी खिंचाई पर उतर आती, 'तुम्हारे जैसे नाइंटी परसेंट साहित्यकार घोर कामी, सुविधावादी और भ्रष्ट होते हैं। तुम तो विभीषण हो इस दल में... बन सकोगे मुकुंद दास... छेड़े दाउ बोंगो नारी, आर पोड़ो ना रेशमी चूड़ी... यू आर ए पेटी बुर्जुआ!'

'देखते जाओ... मेरा पहला वार होगा मेरी हवेली पर...!' मैं कॉलर हिला दिया करता और इस पर दोनों हँस पड़ते।

धीरे-धीरे सचिन की गतिविधियाँ बढ़ती गईं। इस बीच 'खत्म करो' अभियान भी चल निकला। दो-एक बार वह मुझे भी उत्तरी बंगाल के गरीब किसानों बीच व्यवस्था से मोहभंग कराने के उद्देश्य से ले गया। हड्डियों पर मढ़े हुए चाम। धँसी पनीली आँखें, मैले-चिथड़े, शोषण की जड़ तक देखती हुई मेरी दृष्टि पारदर्शी हो उठी। अगर मैं नक्सल नहीं हुआ तो संघमित्रा की वजह से, जो वहाँ से लौटने पर मेरी नजर उतारने के लिए नेशनल म्यूजियम, ट्रॉपिकल मेडिसिन, ऑल इंडिया इंस्टीट्यूट ऑफ फिजिकल हाइजिन एण्ड मेडिकल साइंसेज या और नहीं तो गंगा के किनारे पडे बैंचों पर बैठाकर मुझे जीवों और सभ्यता का विकास समझाया करती। बातों ही बातों में उसने एक दिन बताया था कि वह सचमुच खोज करना चाहती है जींस पर और एक उत्साही निरपेक्ष अध्यापक की तरह बिना लज्जा के जेनेटिक्स और मनुष्य के अंग-प्रत्यंग की बहुत-सारी बातें बता डाली थीं।

सचिन ने बाद में क्लासें करना छोड़ ही दिया था। मैंने संघमित्रा से शिकायत की तो उसके आते ही वह फट पड़ी, 'क्यों रुलाते हो बुलबुल! जानते हो, बाबा टी.बी. के पेशेंट हैं, मैं उन्हें यह सब बता नहीं सकती। इसीलिए न...!' लेकिन सचिन को न रानी के आँसू रोक पाए, न परिवार की जिम्मेदारी। थ्योरेटिकल परीक्षाओं में भी वह अनुपस्थित रहा तो आखिरी पर्चा देते ही पता करने उनके घर जा पहुँचा। शाम की मरकरी नियोन की शोख बत्तियाँ जल उठी थीं सड़कों पर। मगर उस मकान में मात्र धुँधली रोशनी मातम-सी बरस रही थी।

'दीदी तोमाके जेतेड़ होवे!' सचिन रानी से अनुनय कर रहा था, 'और हात-टा एक बारेकई उड़े गेछे। होय तो ब्लीडिंग होयेई मारा जाबे।'

'आर काउ के पाओ नी?' रानी बोली।

'काउ के नीये गेले सोबी फास होये जाबे जे...'

फिर मेरे कंधे पर हाथ रखकर, 'वेट टिल आई रिटर्न!' कहकर रानी जो गई तो

आज तक इंतजार कराती रही।

बाद के चंद साल संक्रमण के साल रहे। टेररिस्ट सचिन पर तरह-तरह के मुकदमों के फंदे लटक गए थे और संघमित्रा का नाम पार्टी के प्रवर संगठनकर्ताओं में गिना जाने लगा था। उसके विषय में तरह-तरह के मिथ प्रचलित हो चले थे... कि खून करने में उसे कैसी खुशी होती है!... अब फलाँ-फलाँ पूँजीपति, राजनेता, अफसर और पार्टी के विश्वासघातक उसकी सूची में है!... फलाँ-फलाँ घूसखोर अफसर और ऊँची फीस लेने वाले डॉक्टर और वकील को तो धमकी का खत भी आ चुका है!... एक मुर्दे को चीरते देखकर बेहोश हो जाने वाली संघमित्रा कहाँ से कहाँ पहुँच गई थी!

मेरी स्थिति कुछ विचित्र थी। पापा ने जबरदस्ती 'प्रेसिडेंसी' छुड़वा दिया था। साइंस छोड़कर, आर्ट्स लेकर सोशोलॉजी में मैं एम.ए. कर चुका था और कई तरह के संकर संस्कार मुझे आधा तीतर, आधा बटेर बनाकर छोड़ गए थे। घर की समृद्ध परंपरा छोड़कर मैं यूनियन लीडरी, समाज-सेवा और प्राध्यापकी-तीनों को ही अपने प्रयोग का क्षेत्र बनाए हुए था। संघमित्रा से मिलने के लिए मैंने टाटा के जादूगोड़ा के जंगल, आंध्र के जंगल और धान के खेत, मध्य प्रदेश के बीहड़... कहाँ के चक्कर नहीं लगाए। मगर तब तक शायद वह भावनाओं, आवेगों से ऊपर उठ चुकी थी। शायद मेरी यूनियन, सोशल सर्विस और लेक्चररशिप हताशा के जख्म को ढकने के साधन-मात्र थे। माँ ने साफतौर पर ऐलान कर दिया था कि मुझे हर हालत में उनके पास रहना है। इतनी बड़ी हवेली अकेले भाँय-भाँय करती है और मैं हर हालत में वहाँ बना हुआ था। पिताजी कूड़े से भी काम लायक चीजें निकाल लिया करते थे। यह उनकी बणिक-बुद्धि कहूँ या विलक्षण बुद्धिमत्ता, वह हर चीज को कैश कराना जानते थे। अपने स्वभाव के विपरीत मुझे उन्होंने आड़े-उलटे प्रोत्साहन देना शुरू किया। उनकी कृपा से प्रारम्भिक चरणों में ही सफलताएँ मिलती गईं और अब मैं कई यूनियनों का अध्यक्ष बन बैठा था। लेकिन पापा के लिए ये मात्र मील के पत्थर थे-मंजिल नहीं। उनका इरादा था कि आगामी चुनावों में मुझे कहीं से खड़ा करवा देंगे। शायद प्रान्तीय या केंद्रीय नेतृत्व के सामने की पंक्ति में आने की जो रिक्तता मेरे अक्षय-वट परिवार में में रह गई थी, वह मुझसे पूरी की जानी थी। लेकिन इन सबसे उदासीन रहकर जब मुझे अपनी लेक्चररशिप और यूनियन वगैरह में ज्यादा व्यस्त पाने लगे तो एक दिन ब्रेनवाश के लिए मेरे सोशोलॉजी विभाग के हेड के हाथों एक नए पर्चे के रूप में उनकी नई योजना सामने थी।

'इस पर साइन कर दो।' वो बोले।

'यह क्या है?'

'तुम्हें शोध करने की अनुमति देने के लिए दरख्वास्त...मेरे गाइडेंस में।'

'लेकिन...!' मैं उलझन में पड़ गया।

'बिला वजह माथापच्ची कर रहे हो। विषय तुम्हारे परिवार के लोग रोज ही मथा करते हैं। तुम्हें बस इतना करना है कि पुरानी थीसिसें देख-सुनकर कुछ नए नोट्स जोड़कर लिख डालना है।'

'कौन-सा विषय है?' मैं उत्सुक हुआ।

'क्राइम!'

न जाने क्यों अंग्रेजी का यह शब्द सुनते ही बहेलिए द्वारा मिथुन-युगल क्रोंच को मारने की दर्दनाक और दहशत-भरी आवाज कानों में घुल उठती है...जैसे परिन्दों के शोर से जंगल गूँज उठा हो और टप-टप ताजा रक्त टपक रहा हो।

मैंने अतिरेक में उनका हाथ पकड़ लिया, 'मैं करूँगा, जरूर करूँगा मगर एक शर्त... थीसिसें देख-सुनकर नहीं, स्वयं स्वतंत्र सर्वेक्षण और अध्ययन करके।'

'ठीक है।' इस बार सामने बैठे पापा स्वयं बोल उठे। सामयिक रूप से मेरा ध्यान हटा पाने में सफल होकर वे राहत की नि:श्वास फेंक बैठे थे।

अपराध और अपराधी की प्रकृति और प्रकार, व्यक्तिगत और परिवेशगत संस्कार और उद्दीपनाएँ, मनोवैज्ञानिक तथा समाजशास्त्रीय विवेचन और विश्लेषण करने हेतु मैं एक थाने से दूसरे थाने की फाइलों में बिखरी आँकड़ों की सांख्यिकी में भटक रहा था कि एक दिन एक थाने के बाहर सचिन के पिता राखाल बाबू ने पकड़ लिया। वे काफी बदहवास लग रहे थे। उन्होंने बताया कि... अभी-अभी सचिन को पकड़कर इसी थाने में ले आया गया है। बहुत मारा है, पुलिस ने... कहते हुए आँखों से आँसू गिरने लगे उनके। मैंने दारोगा को अपना परिचय देते हुए इस मामले में सहानुभूति बरतने का अनुरोध किया। दारोगा मुझे लिए-लिए अंदर आए। सचिन को उनके कमरे में ले आया गया। उन्होंने नीचे पाँव हिलाते हुए नेतानुमा आदर्शवादिता वाले अंदाजे-बयाँ में कहा, 'तुम लोग कल के भविष्य हो। मुझे युवा शक्ति का इस प्रकार अपव्यय होना बिल्कुल पसंद नहीं। ये बिलावजह का खून-खराबा और अपराधकर्म छोड़कर आदर्श नागरिक क्यों नहीं बनते?'

सचिन, जिसके चेहरे पर पीटे जाने की स्पष्ट छाप थी, चुपचाप सीलिंग फैन का नाचना देखता रहा। फिर नाक का खून बाँहों से पोंछकर तिरस्कार-भरे स्वर में बोल पड़ा, 'आपको यह बात समझ में नहीं आएगी दारोगाजी, आप अपने लड़के को भेज

दीजिए, उसे समझा दूँगा।'

दारोगाजी एकबारगी अप्रतिहत हो उठे। उन्होंने थूक निगला और कंधे उचकाकर झेंप झाड़ते-से बोले, 'दैन आ'म हेल्पलेस!'

वह थाना भैया के अधिकार-क्षेत्र में आता था। मैंने राखाल बाबू को यह आश्वासन देकर विदा किया कि भैया से कहकर सचिन के लिए कोई कोर-कसर उठा नहीं रखूँगा। भैया के पास पहुँचा तो उन्हें बात करने-भर की फुरसत नहीं थी। कोई पार्टी चल रही थी वहाँ, किसी मंत्री के दौरे के बाद। संभवत: आमंत्रित मेहमान पुलिस विभाग के ही लोग थे। मेरा परिचय और रिसर्च का उद्देश्य जानते ही चर्चा उतर पड़ी पुलिस पर... कि विदेशों में पुलिस को कितना वेतन, अत्याधुनिक उपकरण और सुविधाएँ तथा सम्मान प्राप्त हैं।

'मगर यहाँ की तरह वहाँ के पुलिस स्टेशन अपराध के ब्रीडिंग स्टेशन तो नहीं है!' मैंने हस्तक्षेप किया। मेरी बात को एक वरिष्ठ अधिकारी ने 'हो-हो-हो-हो' हँसकर उड़ाते हुए कहा, 'अमाँ यार, हमीं पर सारी तोहमतें क्यों? हम तो नाचने वाले हैं, नचाने वाला कोई और है।'

'कुछ इसी से मिलती-जुलती बात वे अपराधी भी कह रहे थे, जिनसे शोध के दौरान मैं मिला।'

'क्या?' मेरी बात पर तकरीबन सारे लोग मेरे आस-पास जमा हो गए थे।

'कहते थे....हम तो वेश्या है। सब छुप-छुपकर मिलते हैं और अपना उल्लू सीधा करते हैं। मगर बाहर शान दिखाने के लिए हमें गाली देते हैं।'

'राइट! अब हमारा ही देखा जाए। एक ओर तो हमारी अक्षमता के लिए हमें कोसा जाता है, दूसरी ओर हमारे काम में टाँग अड़ाई जाती है। एक उदाहरण लीजिए-हमने किसी गुण्डे को पकड़ा। अब हर गुण्डा किसी-न-किसी एम.एल.ए., एम.पी., सेक्रेटरी या मिनिस्टर वगैरह का आदमी, या आदमी का आदमी निकल आता है। फोन पर फोन! आखिर वह बेदाग छूट जाता है... फिर क्या रह गई हमारी इज्जत! कभी-कभी तो ईमानदारी की कीमत हमें सस्पेंशन में चुकानी पड़ जाती है।'

'एक तरफ कहेंगे, पुलिस को अपना आचरण बदलना चाहिए, दूसरी तरफ गंदे से गंदे काम के लिए इस्तेमाल करेंगे।' दूसरे कद्दावर अधिकारी ने कहा।

'यानी पुलिस अपने गलत कामों के लिए स्वयं दोषी नहीं है... यही न?'

इस पर एक सन्नाटा-सा खिंच गया। शराब के नशेमें एक इंस्पेक्टर बहकने लगा, 'अरे साब! सत्ता के इस थोड़े-से सुख में हमने अपना क्या-क्या नहीं गँवाया... जाति, धर्म, ईमान, सभ्यता, संस्कृति!... कहने को तो अपने थाने के सामने हमने भी लिखकर टँगवा दिया है-'हम आपके सेवक हैं, हमारे योग्य कोई सेवा?' मगर सेवक की विनम्रता से काम करें तो हो गई छुट्टी। हमें ऑड, र्‌यूड, क्रूड बनकर स्लैंग। लैंग्वेजेज इस्तेमाल करनी पड़ती हैं, जल्लाद की तरह पेश आना पड़ता है, इसलिए एक अलग ही डिक्शनरी होती है हमारी, एक अलग ही आचार-संहिता होती है और अलग ही चरित्र होता है हमारा। सब-कुछ अलिखित, पर व्यावहारिक!'

काफी रात गए भीड़ छँटी तो भाभी ने टोका, 'कब तक छुटुवा घूमते रहोगे सिद्धार्थ! तुम्हारी यधोधरा रानी कब आएँगी?'

'रानी!' जेहन में नाच उठी 'रानी' ऐसो आमार राजकुमार, ऐसो ना...! एक मदिरिल सपना अँगड़ाई लेता हुआ पानी में रूपहले बिम्ब-सा थरथराया। सोचा, सचिन की बात भैया से शुरू कर दूँ, मगर इस बीच फोन घनघना उठा और ऐसी बेवकूफी करने से बच गया। भैया फोन अटेण्ड करके आए तो कपड़े बदलने लगे, बोले, 'तुम आए, कोई बात भी न हो सकी और उधर बुलावा आ गया... कोई खून हो गया है... फौरन पहुँचना है... कहाँ यह सोने की रात... ढीले कपड़े पहने वे मंत्री लोग सो रहे होंगे, जिनकी सुरक्षा-व्यवस्था के लिए सात दिनों से मुझे तथा डी.एम. को चैन नहीं था... और कहाँ ये पम्प-शू नुमा भारी बूट, क्रीजदार चुभती पैण्ट और शर्ट, स्टार्स, बेल्ट, रिवॉल्वर वगैरह लेकर खूनी डाकुओं, खतरनाक नक्सलियों के पीछे मारा-मारा फिरूँ... तुम्हें कैसे बताऊँ!'

भाभी का मजाकिया मूड उखड़ चुका था। वे बोलीं, 'देखो, अपने को बचाना। बाहर तुलसी-चौरा पर मत्था टेकते जाना!' और भैया, भाभी की आज्ञा का पालन करते हुए चले गए। एक मातमी तनाव तन उठा। भाभी बड़ी देर तक रुआँसी, उनकी खैर मनाती हुई, जिस-तिस को कोसती रहीं... 'ये आठ-नौ सौ की तनखा पर रात-रात भर खतरनाक अपराधियों का पीछा करना... लानत है ऐसी नौकरी पर! ब्लैक करने वाले सेठ, महीने-भर में लखपति बनने वाले इनकम टैक्स, सेल्स टैक्स, व्हीकल्स लाइसेंस वाले आराम से सो रहे होंगे। वे नेता तक किसी खरीदी हुई कनीज को चिपटाए, नमर बिछौने पर सो रहे होंगे, जिनके लिए सारे प्रोग्राम साइडट्रैक करके उनकी सुरक्षा के लिए बैण्ड बजाने वालों की तरह गुलाम बनकर आगे-पीछे चलना पड़ा। और वे... ऐसे में कहीं कुछ हो गया तो...? देवरजी, तुम चाहे कुछ भी बनना, पुलिस अफसर कतई मत बनना।'

शुक्र था कि भैया सुबह तक सही-सलामत आ गए। थकावट के बावजूद मूड अच्छा देखकर जाते-जाते मैंने सचिन की बात छेड़ ही दी। मैंने उसके निर्दोष और ईमानदार होने की बात कहकर सचिन की रिहाई की बात की तो उनका मूड उखड़ गया।

'कल से ही देख रहा हूँ, मेरी नौकरी खाने पर तुले हो। इन चोर-डकैतों के लिए मैं हस्तक्षेप करूँ, तुम्हें हो क्या गया है?' वे घुड़क उठे।

मन में तो आया कि पूछूँ, अगर किसी मिनिस्टर ने किसी गुण्डे के लिए यही बात कही होती तो वे क्या करते! मगर चुप रह गया। बाद में सुना, एक पूरे के पूरे नक्सल गाँव को आग लगा देने के पुरस्कार स्वरूप उनकी तरक्की हो गई थी।

याद आते हैं न्यायालयों के आँकड़े बटोरते वे भटकते हुए दिन। ग्राम पंचायतों के बने-बनाए फार्मूलाबद्ध न्याय प्रहसन, दीवानी और फौजदारी की रबर से भी लचीली और खिंचती हुई कार्रवाइयाँ। ऊँची कुर्सी पर बैठे अपनी तमाम ताम-झाम के बावजूद श्रीहीन जज, सरकारी और मुद्दई पक्ष के वकीलों के बहसने और विहँसने की कलाएँ। न्याय-मंदिरों के कितने ही मंजर किसी डॉक्यूमेंटरी फिल्म की तरह यादों के परदे पर उभरने लगते हैं... न्याय की प्रत्याशा में आगत... ऊबती, मुरझाती भीड़, मिठाइयों की दुकानों पर डकारती और ललकारती हुई नकली गवाहों की टोलियाँ, पुराने परचे और कागजातों के बंडल सँभाले अहलमद और मुनीम, रण्डियों के दलालों की तरह आसामी फँसाते हुए वकीलों के दलाल, काले कोट पहने हुए वकीलों की चहलकदमी, बीच-बीच में 'आसामी हाजिर हो' की आवाज लगाता कोर्ट अर्दली, ड्रायर खोलकर दो-दो रुपयों पर फर्जी मुकदमों की तारीख बढ़ाते पेशकार।

वे सर्दियों के दिन थे। कटखनी शीतलहर चल रही थी। मैं कचहरी के बाहर धूप में पापा के एक मित्र से बात कर रहा था कि एक रिक्शा रुका आकर मेरे पास। देखा तो जर्जर-क्लाण्त राखाल बाबू उतर रहे थे। काँपते हुए उन्होंने एक नजर चारों तरफ का मुआयना किया, फिर एक कोने में मुझे ले आए।

'बड़ी मुश्किल से मिले... कहाँ-कहाँ नहीं पता लगाया मैंने!'

'कोई नई बात...?'

'हाँ, सचिन का मुकदमा तुम्हारे बाबा (पापा) के पास आए, ऐसी व्यवस्था मैंने कर ली है।'

'अच्छा!'

'बाकी तुम्हें देखना है। मैं मरने के पहले उसे निर्दोष देखना चाहता हूँ। मेरा बेटा, मेरी बेटी निर्दोष हैं।'

'आपको सेनिटोरियम छोड़कर इस तरह नहीं आना चाहिए था, उनके लिए भी आपको जिन्दा रहना है।' उन्हें रिक्शे पर बैठाकर मैं उसी दिन पापा के पास चला आया।

पापा मुझे आया देखकर खुश हुए। शोध के विषय में मेरी प्रगति पर सण्तोष जाहिर करते हुए, 'न्याय' के प्रति मेरे दृष्टिकोण का समर्थन करते हुए बोले, 'देश-भर में जाने कितना अन्याय होता है और उसमें से जाने कितने आ पाते हैं हमारे पास और जाने कितनों का सही फैसला कर पाते हैं हम! अब देखो, वकील न्याय के देवदूत हैं और इनका चरित्र...! जो जितने भयंकर अपराधी को, जितनी जल्दी निरपराध सिद्ध कर दे, वह उतना ही सफल वकील है। फिर जज का दिल और दिमाग, न्याय की व्यवस्था भी कम करामाती नहीं है। एक कोर्ट से जो हार जाए, दूसरी कोर्ट से जीत जाता है। पेनलकोड में कई धाराएँ तक त्रुटिपूर्ण हैं।'

'यानी न्याय वह तरल पदार्थ है जिसे जिस पात्र में ढाल दें, वैसा ही ढल जाएगा।'

'साहित्य में तुम्हें जोर आजमाना चाहिए।' पापा हँस पड़े थे।

'और सोने और चाँदी के पात्रों में यह ज्यादा शोभता है।' पापा की हँसी मुरझाने लगी। वे चौकन्ने हो गए, 'कुछ कहना चाहते हो?'

'पच्चीस तारीख को जिसका मुकदमा आपकी आदलत में पेश होने वाला है, वह अपराधी नहीं है। मानवता के प्रति पूरी तरह निष्ठावान युवक है।'

'यू मीन दैट नक्सलाइट?'

'जी, चूँकि आप एक पिता है, अत: पिता के दिल का दर्द समझते हैं। टी.बी. से मरणासन्न पिता की एक ही ख्वाहिश है कि वह अपने निर्दोष बेटे को निर्दोष बरी देखकर मरे।'

पापा ने सिगार जला लिया। कुछ देर तक खाली-खाली आँखों से दीवारों पर देखते रहे, फिर एक सधी हुई आवाज में बोले, 'बेटे, हम जिसे न्याय कहते हैं, वह तथ्य-सापेक्ष है, सत्य सापेक्ष नहीं है। तथ्य का प्रमाण स्वयं में सामर्थ्य-सापेक्ष है, अत: निर्णय लचीला होता है। हमारा तो यूँ जान लो, बस एक दायरा होता है... पुलिस एफ.आई.आर. प्रस्तुत करती है, चार्जशीट पेश करती है, गवाह होते हैं, अपराध के सबूत, अभियुक्त की सफाई का दौर आता है, वकील होते हैं, कानून की किताबें होती हैं। इन सबमें से परत-दर-परत जो निष्कर्ष छन-छनकर आता है, हम वही निर्णय तो दे सकते हैं... और फिर तुम जिसकी सिफारिश करने आए हो, उसका तो मुकाबला ही सत्ता से है, जो हमेशा न्यायपालिका पर हावी रहती है!'

'यानी आपके सिद्धांत बाँझ है?'

पापा गंभीर हो गए। बोले, 'देखो, खून मेरी रगों में भी बहता है, पर मैं तुम्हारी तरह मूर्ख और भावनाजीवी नहीं। तुम्हें मालूम नहीं होगा, सी.बी.आई. वाले कब के तुम्हारे विरुद्ध कदम उठा चुके होते... बचते आए हो तो अपने जीजाजी के चलते। लेकिन यही रवैया रहा तो...आई फाइनली वार्न यू टु मेंड योरसेल्फ!' बुझा सिगार फेंककर वह उठकर बेचैनी में चलने लगे और मैं सर पकड़कर बैठ गया।

मुकदमे का निर्णायक दिन भी आ गया। वकील के लाख समझाने के बावजूद सचिन ने एक शब्द तक न कहा अपनी सफाई में, सिवाय उस बयान के, जो जब भी यादों को कुरेदता है तो हर्फ-दर-हर्फ विस्फोट करता शोलों के अम्बार भर देता है जेहन में, 'मुझे इस पूँजीवादी, प्रतिक्रियावादी, न्याय-व्यवस्था में विश्वास नहीं है। आम जनता भी जिसे न्याय का मंदिर कहती है, वह लुटेरों, पण्डों और जूता-चोरों से भरा पड़ा है। यहाँ आते ही चपरासी, अहलमद, नाजिर, पेशकार, कानूनगो से लेकर काला लबादा ओढ़े वकील और गीता तथा गंगाजल की कसमें खाकर झूठी गवाहियाँ देने वाले गवाह, ये तमाम कुत्ते नोचने-खसोटने लगते हैं उसे। ये लाल थाने, लाल जेलखाने और लाल कचहरियाँ... इन पर कितने बेकसूरों का खून पुता है। वकीलों और जजों का काला गाउन न जाने कितने खून के धब्बों को छुपाए हुए है! परिवर्तन के महान रास्ते में एक मुकाम ऐसा भी आएगा, जिस दिन इन्हें अपना चरित्र बदलना होगा, वरना इनकी रोबीली बुलंदियाँ धूल चाटती नजर आएँगी!'

वकील जोरों से चीख पड़ा, 'योर ऑनर, दिस इज क्लियरली द कॅण्टेम्प्ट ऑफ कोर्ट!'

बाहर शोर मच गया। जज की कुर्सी पर बैठे पापा चीख पड़े, 'ऑर्डर! ऑर्डर!!' और मुद्दई पक्ष का वकील सचिन को पागल साबित करने में लग गया, ताकि उसे बचा सके।

सचिन को अपराधी करार देते हुए सजा हो गई। फैसला सुनते ही मेरे पास ही बैठे राखाल बाबू फफक-फफक कर रो पड़े। मुझे याद है, मैंने उन्हें सहारा देकर रिक्शे पर

बैठाया था। बाद में हमने सुना कि जेल से जाते समय, रास्ते में ही पेशाब करने के बहाने, जंगलों में सचिन ऐसा गायब हुआ कि पुलिस ढूँढ़ती रह गई। रोग और चिन्ता से जर्जर राखाल बाबू यह सदमा बरदाश्त न कर पाए और 'रानी' और 'बुलबुल' को निर्दोष देखने का सपना लिए हुए ही दुनिया से चले गए। पुलिस उनकी मृत्यु के दो दिन बाद तक सेनिटोरियम के चारों ओर सादे लिबास में घूमती रही, मगर न रानी आई, ना बुलबुल! लाश जब सड़ने लगी तो पुलिस की मदद से सेनिटोरियम वालों ने ही उसकी अन्त्येष्टि की।

और अब नारी-निकेतन, बाल अपराध सुधार-गृह, रिफॉर्मेटरीज होते हुए कारागृह! ऊँची-ऊँची दीवारें, सलाखोंदार मजबूत फाटक, अपराधी-कैदियों का समुद्र! कोने-कोने पर ऊँचे मचानों पर बन्दूक साधे ऊँघते सिपाही! विभिन्न सूत्रों से पता लगा था कि सचिन नाम का एक बंगाली युवक और संघमित्रा नाम की एक औरत, कुछ दिन हुए ट्रांसफर होकर, सेंट्रल जेल में आए हैं। जल्द ही मैंने शोध के निमित्त सेंट्रल जेल जाने की अनुमति प्राप्त कर ली।

विशाल रकबे में बिखरी दुर्भेद्य बदसूरत दीवारों से घिरी केन्द्रीय कारा! कारा अधीक्षक, जो मेरे मजिस्ट्रेट भैया के मित्र थे, मुझे बताते चल रहे थे, 'यह जेल भारत की सबसे बड़ी जेलों से एक सेल्यूलर जेल है। साइकिल स्पोक्स की आकृति में फैले हुए सेल धुरी पर केन्द्रीभूत हो उठते हैं, जहाँ से कण्ट्रोल टावर इन सब पर निगरानी रख सकता है। ये रहे कारखाने... कपड़े, दरियाँ, काठ और लोहे के छिटपुट सामान बनाते हुए, ये रही लायब्रेरी, वह रहा मेडिकल, यह रहा पागलों का दड़बा, यह विशाल भीड़, जो देख रहे हो... ये रहे हाजती। उधर उन अलग-अलग कतारों में रहते हैं स्टेट प्रिजनर्स... बड़े-बड़े नेता, विद्वान्, लेखक रह चुके हैं यहाँ!' एक नजर मेरे ऊपर पड़े प्रभाव का मुआयना करके वे फिर शुरू हो गए, 'ये पार्टीशन जनाना सेल के लिए है। कोई पसंद आए तो बोलना।' अपने ही मजाक पर वे 'खीं-खीं' करते हुए हँस पड़े और दीवार के पास मेरी कल्पना में संघमित्रा उभरने लगी... मगर तत्क्षण ही स्वराघात से टूट गई।

'यह रहा 'टी-सेल'... सबसे खतरनाक अपराधी यहाँ रखे जाते हैं। किस प्रकार के कितने कैदी हैं, उनकी संख्या तुम्हें इस सूची से मिल जाएगी।' उन्होंने दीवार पर टँगी सूची की ओर इशारा किया, 'ये जगह-जगह टँगी हुई हैं। मुझे, अफसोस है, तुम्हें हम फाँसी के किसी कैदी से नहीं मिलवा सकेंगे।' हँसते हुए उन्होंने सूची में मृत्युदण्ड दण्डित कैदियों के आगे इशारा किया, वहाँ क्रॉस लगा हुआ है। कण्ट्रोलिंग टावर पर से

उन्होंने मुझे दूर स्थित फाँसी के मंच और वीरान कंडेम्ड सेल भी दिखाए।

'कहाँ-कहाँ जाना है, क्या-क्या सवाल कर सकते हो, इसकी शर्तें तुम्हें दी जा चुकी है, फिर भी एहतियात के तौर पर बता दूँ, सेल नंबर 15, 16, 17 में मत जाना... नक्सली सेल है।'

कुछ ही दिनों में उन सबसे ऊब गया। सफेद धोती, हाफ कमीज, टखनों कि का पाजामा...मेरी पारदर्शिनी नजर इनमें अपराध के चह्नि ढूँढ़ने में असफल रही। यह सवाल बराबर कोंचता रहा कि आखिर कौन-सी मजबूरी है कि लोग अपराध में प्रवृत्त हो जाते हैं... और वह कौन-सी विभाजन-रेखा है, जिसके तहत ये शिनाख्त किए जा सकते हैं। सारा मामला सरसों में भूत जैसा विरोधाभासों से ग्रस्त था। नारी निकेतन, बाल अपराध सुधार-गृह और रिफॉर्मेटरीज के सिद्धांतों और आचरणों में गहरी खाई थी। कैदियों के नाम पर मिलने वाला राशन खाते हुए जेल के कर्मचारी, के भेंट बन-बनकर राज करते हुए धाकड़ दादा कैदी, उसके तथा जेल के जरखरीद गुलाम बने रिसते और पिसते हुए पिद्दी कैदी, वही वर्ग-विभाजन, वही वर्ण-विभाजन, जेल की बदसूरत ऊँची प्राचीरों में घुटकर रह जाने वाली यातनाओं की चीखें और अलमारियों में करीने से सजी, पर जाले की जंजीरों में बँधी जेल मैनुअल्स की पोथयाँ! वह सेल्यूलर जेल मुझे मकड़ी के जाले जैसा लगा। रेशे-रेशे में आ बिंधे थे इंसान और बीच में मकड़ी के स्थान पर खड़ा था कंट्रोलिंग टावर!

जज्बातों की तरह जलते हुए दिन कैदियों के समुद्र में डूबते-उतराते, सन्तरण करते हुए बुझ रहे थे और दुःस्वप्नों जैसी नाउम्मीद लम्बी रातें पुलिस मैनुअल्स, जेल मैनुअल्स, सोशोलॉजी, साइकोलॉजी, आँकड़ों, ग्राफों में तिरोहित हो रही थीं। मेरी एक खोज पूरी हो रही थी और एक का कूल-किनारा भी नजर नहीं आ रहा था। डिस्पैरेट होकर एक दिन जेल सुपरिंटेंडेंट के दफ्तर में जा पहुँचा। वे उस समय एक नवागत नक्सली कैदी से जाने क्या उगलवाने के चक्कर में परेशान हो रहे थे। मेरे सामने एक ही जोरों का मुक्का उसके जड़ों पर पड़ा और उसका चश्मा दूर जा छिटका। वे फिर से बड़ी निर्दयतापूर्वक उसके बालों को पकड़कर नचाने लगे। मुझे देखा तो वापस ले जाने का हुक्म देकर बैठ गए। नक्सली युवक अपना खून पोंछने की बजाय अपना चश्मा टटोलने लगा। चश्मे के अभाव में उसकी स्थिति अंधे जैसी हो रही थी। मुझसे रहा न गया। मैंने स्वयं चश्मा उठाकर उसे दिया, तो पता चला, उसके काँच दरक चुके थे।

'साले ने मूड ऑफ कर दिया। हाँ, तुम कहो अपनी...' जेल अधीक्षक प्रकृतिस्थ होने की कोशिश में मुस्काए।

'मुझे संघमित्रा और सचिन से मिलना है... जरूरी तफतीश के लिए।'

'सचिन से तो नहीं मिल सकते, ऊपर से बिना अनुमति प्राप्त किए। हाँ, संघमित्रा को बुलवाए देता हूँ।' उनके हुक्म पर थोड़ी देर में एक मेट एक युवती को लेकर उपस्थित हुआ।

'लो, आ गई!' वे भद्दे अंदाज में मुस्कराए।

'इसे वापस पहुँचाने को कह दीजिए।' मैं झुँझला पड़ा, 'मुझे जिस संघमित्रा की तलाश थी, वह यह नहीं।'

'बड़ा संगीन अपराध किया है उसने तुम्हारे साथ... ऐसा लगता है। मगर तुम उसे जेल में क्यों ढूँढ़ते फिर रहे हो?'

'फिर बताऊँगा कभी।' निराशा में मेरे होंठ जड़ हो रहे थे। संघमित्रा मेरे लिए अब भी मरीचिका ही थी।

आखिर वे क्षण आ गए, जबकि प्रतिबंधित सेलों का तिलस्म सैलाब बनकर जेल की दीवारों के बाहर बहने लगा। दीवाली की रात थी वह। क्रेकर और आतिशबाजियाँ छूट रही थीं। मगर जेल के अंदर भला क्यों...? और वह दहशत-भरी पगली घंटी पर पगलाता हुआ पुलिस दस्ता! अंदर के कई फाटक तोड़कर नक्सली अब सदर फाटक पर बम बरसा रहे थे। पुलिस के सिपाहियों ने कई एक को जमीन पर सुला दिया, मगर वे सामूहिक रूप से पुलिस दस्ते से भिड़ गए और थोड़ी ही देर में बन्दूकें उनके हाथों में थीं। लगा कि फाटक अब टूटा कि तब। तभी हमने देखा, कैदियों की विशाल भीड़, जो बंदूकों और अन्य शस्त्रों से लैस थी, नक्सली कैदियों पर टूट पड़ी। सदर दरवाजे के ऊपर के दोमंजिलों की खिड़की से मैंने वह रोंगटे खड़े कर देने वाली कैदियों की लड़ाई देखी। थोड़े ही देर में फूलों और सब्जियों की क्यारियाँ, बजरी की सड़कें लाशों और घायलों से पट गईं। माइक से जब यह ऐलान किया गया कि बाकी कैदी नक्सल कैदियों को उनके सेलों में पहुँचाकर, अपने-अपने वार्डनों के पास गिनती के लिए चले जाएँ, तो घायल और बचे-खुचे नक्सली कैदियों को ढोर डंगरे की तरह मारते और हाँफते हुए कैदी लौट पड़े।

थोड़ी देर बाद अधीक्षक महोदय के दफ्तर में प्रतिबंधित नक्सली सेलों का एक वार्डन पूरी कहानी बताने लगा, 'गश्त का सिपाही जमुनालाल जब एक नक्सल कैदी नं. सात सौ पचहत्तर...' मैं चौंका, 'सचिन!' 'जो भी हो' उसने बात आगे बढ़ाई, 'उसके कमरे को संदिग्ध जान खोलकर देखना चाहा तो उसने जंजीर बँधे हाथों का फँदा

लगाकर उसके गले को कस दिया। फिर उसकी जेब से चाबी निकालकर सेल नं. सत्रह को आजाद कर दिया। इसी तरह शायद और सेल भी... दीवाली की रात होने के नाते थोड़ी गलतफहमी भी हुई। साब, अगर मेट ने चालाकी करके बिना पूछे ही तमाम खतरनाक अपराधियों को नहीं छोड़ दिया होता, उन्हें ठंडा करने को, तो नाक कट ही गई होती।'

'स्टील टर्निंग्स तो लेथ और ड्रिल मशीनों से उन्होंने बरामद किया होगा, मगर पिक्रिक एसिड, पोटाश वगैरह...??' बम के एक खोल को देखते हुए अधीक्षक गुस्से से पागल हो गए। डर के मारे लोग सन्नाटे में आ गए। वे दहाड़ने लगे, 'पुलिस की जात साली ठीक ही घूस के लिए बदनाम है। जरा-से पैसों के लिए साले बिक गए, वरना जहाँ परिंदा तक पर नहीं मार सकता, वहाँ बम आ जाए!' धीरे-धीरे लोग खिसक गए। मृत और धायलों को शहर भेज दिया गया और दीवाली की रात मातम की काली रात बनकर डसने लगी हमें। बचपन में यदा-कदा दूर से काली मन्दिर की पाठशालाओं को देखा करता था, जहाँ गुरुजी लड़कों से ही श्रेष्ठ हुआ करते थे। और यहाँ चोर, डाकू, व्यभिचारी, सजायाफ्ता कैदी, बुद्धिजीवी नक्सलियों को पीट रहे थे। मुझे अपराध और अपराधी का वृत्त फैलता-सा लगा। मन रुआँसा हो चला, न खाना गले से नीचे उतरा, न किसी से बात ही करने को जी चाहा। तन और मन की हरारत टायफायड में तब्दील हो गई और मैं एक लंबे अरसे तक बीमारी से निबटने और स्वास्थ्य-लाभ करने में लगा रहा। इस बीच मेरे गाइड 'हेड साहब', शोध को देखकर, 'यूनीक' करार दे गए थे। जेल अधीक्षक मेरे पापा के प्रभाव के कारण मुअत्तल होने से बच गए थे। उनकी कृपा से प्रांत की सारी जेलों की महिला कैदियों की सूची मैंने देख ली थी। संघमित्रा का पता नहीं चल सका था। शोध का काट समेटने की गरज से, जिस दिन पुनः केन्द्रीय कारा पहुँचा, तो पापा की जल्दी वापस आ जाने की हिदायती चिट्ठी और नक्सली सेलों में एक बार जाने की अनुमति-पत्र साथ ही मिला।

मेरे प्रतीक्षित दिवस का एक-एक दृश्य टँगा है आँखों के सामने। मेरे साथ-साथ पुलिस का एक सिपाही, सेल नं. सत्रह का वार्डन और मेट भी चल रहे थे। मेरे हाथों में शोध की फाइल थी। सारे के सारे कैदी जवान थे और निचुड़े चेहरों के बावजूद मस्त थे। वे हमें देखकर अजीब ढंग से सीटियाँ बजा रहे थे। कुछ पूछने पर कहते, 'कहाँ का पिल्ला टहल रहा है?' बहनोई खोजने चला है शायद!... यह चलेगा...?

मेट बताने लगा, 'एन्क्वायरी कमीशन के सामने भी इनकी यही गंदी हरकतें रही। आप सोच सकते हैं, उसमें क्या हुआ होगा' एक कमरे के सामने रुक गया वार्डन।

सलाखोंदार फाटक के अंदर से झाँकते सचिन को मैं सहसा पहचान न पाता, अगर वार्डन ने बताया न होता। उसके हाथ-पाँव जंजीरों से बँधे थे। बढ़े हुए रूखे बाल, बढ़ी हुई दाढ़ी, कोटरों में धँसी जलती आँखें और बढ़े हुए नाखून... कुल मिलाकर कोढ़ियों की शक्ल दे गए थे। आत्मीयता में डूबते-उतराते मैं बोल पड़ा, 'सचिन, मुझे पहचानते हो, मैं...!'

'हाँ-हाँ, पहचानूँगा क्यों नहीं... खूनी जज का बेटा, लुटेरे और मक्कार एस.पी. और मजिस्ट्रेट का भाई, बदलते भ्रष्ट मंत्रियों के शाश्वत गुलाम सेक्रेटरी का साला!'

मैं किंचित् अप्रतिभ हुआ, पर उसकी बात हँसकर उड़ा दी, 'बुलबुल, सच मानो, मेरा कोई बुरा इरादा नहीं है, क्राइम पर शोध कर रहा हूँ। तुम्हारा एक इंटरव्यू...!!'

'पूछो।'

फाइल खोल कलम निकालकर पूरी गंभीरता से मैंने सवाल किया, 'लोग व्यक्तिगत स्वार्थ के लिए या अत्याचार के खिलाफ अस्त्र उठाते हैं, तुम लोग सामूहिक स्वार्थ और एक्सप्लायटेशन के खिलाफ... मगर करते हो तुम भी अपराध ही। क्या हिंसा से हिंसा को और नफरत से नफरत को दबाया जा सकता है?' सवाल के शेष होते न होते उसने अभद्रता से पाद दिया। मैं भिन्ना उठा। मुझे नफासत सिखाने वाला सचिन क्या यही था! मैं बिफर पड़ा, 'मेरा अपमान करने से सवाल नहीं टल जाएगा बुलबुल, तुम लोग किसी पर तो विश्वास करोगे...! यह संशय का महाभारत कब तक?'

'माफ करना यार, इतना गरिष्ठ सवाल सुनकर पेट में जरा गैस हो गई थी। इतनी भारी बातें पच नहीं पातीं?' फिर उसने लहजा बदलते हुए पूछा, 'तो तुम पी.एच.डी. पाओगे न?'

'हाँ! मैं उसके तेवर को तौलने लगा।

'फिर कोई ऊँचा ओहदा...?'

'शायद!'

'जरा फाइल देख सकता हूँ?'

मैं पहले हिचका। मगर उसकी पुरानी अन्तरंगता का ख्याल करके फाइल उसे दे दी, फिर मन की लालसा ज़बान पर आई, 'बुलबुल, प्लीज बताओगे रानी कहाँ है?' मेरी बात जैसे उसने सुनी ही नहीं। फाइल के पन्ने पलटते हुए बोल पड़ा, 'तो तुमने इतने विभिन्न प्रकार के अपराधियों और कैदियों का अध्ययन किया है?... वाह!... और यह

दार्शनिक पक्ष... टैपेन, रेकबेस, मारिस, टैफ्ट, कोल्डराइन, प्लेटो... कमाल है! इत्ते-सारे आँकड़े, ग्राफ्स, काम्पेरेटिव एण्ड रिलेटिव एनलिसिस... सर्वे... जेल में मिले इन लोगों से?'

'हाँ!' मैं फूल गया अपनी प्रशंसा पर। मगर एकाएक उसे जैसे सन्निपात हो गया, 'तो तुमने इतने कैदियों का अपमान किया है!... और इस अपमान को भुनाकर तुम सम्मानित होना चाहते हो!... इसीलिए यह दलाली और सवालों के चोंचले! तुम्हारी नीयत अपराध मिटाने की नहीं, उस पर फलने-फूलने की है! मैं पूछता हूँ, किसने तुम्हें आने दिया अंदर? इसे चिड़ियाखाना समझ रखा है क्या? इजण्ट टोटली इन्ह्यूमेन टू एंज्वाय एण्ड कैश ए प्रिजनर्स ट्रेजडी? इजण्ट मोस्ट हीनियस क्राइम... आई आस्क! आई वोंट एलाउ यू!'... उसने फाइल उठा ली। हाथ की जंजीरें झनक उठीं... मेरे दिल की धड़कनें बढ़ गईं।

'रुको-रुको!' पीछे से कारा अधीक्षक आते हुए बोले, 'मुझे मालूम नहीं था कि तुम इनके दोस्त हो। देखो, डोंट बी इंपेशेंट। अफसोस है, इतने संगीन अपराध तुमने किए हैं कि कोर्ट से कभी भी फाँसी का परवाना आ सकता है। तुम्हारे सामने तुम्हारे मित्र एक आदर्श हैं। तुम अपराध में प्रवृत्त हो और वह उससे निवृत्ति के उपायों पर शोध कर रहा है। अगर तुम अभी से भी रिपेंट करते हुए अपने आप को सुधारो तो राष्ट्रपति के पास मर्सी पेटीशन के तहत तुम्हें बचा लेने में हम कुछ उठा नहीं रखेंगे।' उनका इतना कहना था कि सचिन के मुँह का बलगम उनके मुख पर ताले-सा जा चिपका और फाइल मेरे मुँह पर। पन्ने-पन्ने छितरा गए और मैं पागलों की तरह जल्दी-जल्दी बटोरने लगा, अपनी अमूल्य निधि को।

वार्डन दौड़कर पानी लाने चला गया और मेट और सिपाही, कहीं से दो छड़ लाकर लगे कोंचने और पीटने बेरहमी से उसे... जैसे सर्कस के किसी खूँखार पशु के अचानक हिंसक हो उठने पर सर्कस के नौकर किया करते हैं। वह 'घों-घों' करके चीत्कार कर रहा था। कारा अधीक्षक ने ही न छुड़वाया होता तो शायद उसकी जान लेकर छोड़ते।

सामान जीप में रखा जा चुका था। बस, कारा अधीक्षक की राह देख रहा था। जेलर को कुछ हिदायतें देकर उन्हें लौट आना था। यूँ और दिन होता तो जेल के अंदर ही उनसे मिल आता, पर उस घटना के बाद से मन कैसा-कैसा हो गया था और बीच के तीन दिन, शोध के बिखरे कामों को तरतीब देने के उद्देश्य से, मैं अपने मँझले भैया

के यहाँ गुजारकर आया था। कारा अधीक्षक उदास-सा चेहरा लिए आकर रुके मेरे पास, 'जब तुम पहले-पहल आए थे तो मैंने मजाक किया था कि मुझे अफसोस है, फाँसी के कैदी से नहीं मिलवा सकूँगा तुम्हें... मगर तब नहीं जानता था कि जाते समय मजाक क्रूर सत्य बनकर सामने आएगा।

मैं चुपचाप ताकने लगा उन्हें।

'सचिन को कंडेम्ड में ले जाया गया है। फाँसी तक वहीं रहेगा वह। मिलोगे नहीं उससे जाते समय?' उनकी आवाज भीगी हुई थी।

मेरे होंठ थरथराए, पर आवाज नहीं फूटी। यन्त्रचलित-सा उनके पीछे-पीछे चल पड़ा। मैंने गौर किया, मुख्यद्वार से कंट्रोलिंग टावर तक की सभी सूचियों में परिवर्तन कर दिया गया था-मृत्युदंड दंडित कैदी, कुल संख्या-एक।

सचिन मुझे देखते ही सींखचों के पास आ गया, 'आज शायद जा रहे हो?' पहल उसी ने की।

'...'

'मेरी फाँसी तक नहीं रुकोगे? व्यवस्था की पीठिका पर टँगे मेरे वजूद के सवालिया निशान से कतराने लगा है तुम्हारा शोध!' उसकी व्यंग्य-भरी हँसी निरुत्तर कर गई मुझे। मैं निर्वाक्-निर्निमेष ताकता रहा उसे।

'रानी को पूछ रहे थे न उस दिन?'

'हाँ!' मेरी सारी चेतना मिसट आई उसके सवाल पर।

'शी हैड बीन ब्रूटली बूचर्ड लाँग एगो।'

'कैसे?' मैं चीख पड़ा।

'उसके गुप्तांग में रूल घुसाकर... मथकर मारा गया।'

'ओह! ओह!!' करहाते हुए आवेग में मैंने सींखचों को पकड़कर झकझोर देना चाहा, मगर वे सर्द और सख्त थे। आँखों के आगे अँधेरा छा गया। मेडिकल की मेधावी छात्रा, जेनेटिक्स पर रिसर्च करने का दम भरने वाली रानी, एक सामान्य पुलिस के हाथों...क्राइम! लगा, अभी-अभी क्रोंचवध हुआ है। फिजा में दूर-दूर तक दहशत-भरी दर्दनाक चीखें भर उठी है।

इसके बाद न कुछ वह बोल पाया, न मैं। उसने मेरा कंधा थपथपाया... और पथराई आँखों से हम जुदा हो गए।

जेल से अपनी एक पूरी दुनिया गँवाकर लौट रहा हूँ। पता नहीं पापा मेरे शोधकार्य को कैसे भुनाएँगे! मगर शोध अभी हुआ कहाँ पूरा! हाइड्रोजन बम के न्यूक्लियर फीजन की शृंखला की तरह अपराध का रक्तबीज फैलता ही जा रहा है... ठहराव? ट्रेन चली जा रही है और शोध के पन्ने फड़फड़ा रहे हैं मेरे दिमाग में... अनाक्सिमेण्डर काल्डरान के अनुसार क्या यही मान लेना होगा कि मनुष्य का सबसे बड़ा अपराध यही है कि जन्मा होने मात्र से वह दूसरे के अस्तित्व में बाधक है? प्लेटो ने यहाँ तक कहा है कि अपराध भी प्रतिभासम्पन्न व्यक्ति ही कर सकते हैं। डारविन की 'थ्योरी ऑफ इवोल्यूशन में जिन्दा रहने के लिए सबलों, समर्थों का निर्बलों, असमर्थों पर यही अपराध-भरा संघर्ष नहीं है? हेगेल ने भी क्या संक्रमण और संघात के इसी नायकत्व को नहीं स्वीकारा? मार्क्स की वस्तु और क्रियाओं के घात-प्रतिघात की बात में इसी संघर्ष का दूसरा रूप नहीं है? आगे बढ़ने की अंधी दौड़ में कौन देखने जाता है कि कौन कुचला गया? शायद रानी ही ठीक कहती थी, अपराध खत्म करना है तो नस्ल ही बदल डालो।

दिमाग नाना प्रकार के गड्डमड्ड विचारों से बजबजा उठा है। नाना प्रकार के दृश्यों के बुलबुले उठ-उठकर फूट रहे हैं। आँखों में पूरा का पूरा गाँव धू-धू करके जल रहा है, कंकालनुमा चेहरे किन्हीं अज्ञात पंजों से बचने के लिए बेतहाशा भागे जा रहे हैं, सहमी हुई, कोसती और मनौतियाँ करती भाभी, बड़े और बड़े होते हुए भैया तथा पापा के चेहरे, ढेंठते हुए पुलिस और गुंडे, डकारते हुए नकली गवाह, बाल पकड़ झटके जा रहे... पेट पकड़े नक्सलाइट युवक का दरका चश्मा! ठीक आँखों के सामने रानी तड़प-तड़पकर... ऐंठ-ढेंठकर मर रही है, सचिन को कोंच-कोंचकर मारा जा रहा है। शर्मिंदगी और सन्त्रास और मातम! इनके ऊपर धीरे-धीरे एक सवालिया निशान की तरह झूल रही है... फाँसी के फंदे में सचिन की लाश!

मैं पसीना-पसीना हो उठता हूँ। स्वस्थ होने के लिए खिड़की खोलकर बाहर झाँकता हूँ तो लगता है, अँधेरे की सुरंग किसी रक्तस्नान प्रान्तर में आकर विलीन हो चली है। गाड़ी धीमे-धीमे गंगा के पुल पर रेंग रही है। यानी चंद मिनटों में मेरे स्टेशन में दाखिल हो जाएगी। सुबह की लाली से लाल हुई गंगा देखकर लगता है, आदिम पाषाण युग से खून ही बहता रहा है इसमें! क्या है मेरी और मेरे शोध की सामर्थ्य और सीमा? अपराध की लप-लपाती बर्बर लपटों में...उन्हीं लपटों में, जिनमें आहुति बनकर लाखों करोड़ों निरपराध, निष्ठावान तेजस्वी आत्माएँ, मेरा मित्र, मेरी रानी तक समा चुके हैं, अपने हाथ सेंकने के सिवा यह है क्या? इससे बढ़कर गर्हित अपराध और क्या हो सकता है? कर सकूँगा मैं सत्ता, व्यवस्था और समाज के तमाम अपराधी पुर्जों

को जेल में? शायद नहीं, क्योंकि मैं पैरासाइट हूँ उनका, क्योंकि वे मेरे अपने पिता, भाई स्वजन, मित्र और औजार हैं। फिर यह शोध...? कितना गंदा मजाक है यह शोध! मेरे हाथ लहराते हैं और शोध की पूरी फाइल छपाक से गंगा में जा गिरती है। लगता है, सीने पर पड़ा हुआ अपराध का पहाड़ फिसलकर जा गिरा है गंगा में।

स्टेशन पर उतरते ही अगवानी के लिए आए विभागाध्यक्ष के साथ माँ को देखकर याद आता है...साधु ने शायद ठीक ही कहा था... कि मेरी मौत पानी में होगी!... पूरा भविष्य डुबा दिया है मैंने पानी में और विद्रूप में मेरे होंठ टेढ़े हो उठे हैं।

संजीव

जन्म	:	6 जुलाई, 1947, सुल्तानपुर, (उत्तर-प्रदेश)
प्रकाशन	:	तीस साल का एक सफरनामा, आप यहाँ है, भूमिका और अन्य कहानियाँ, दुनिया की सबसे हसीन औरत, प्रेत मुक्ति, प्रेरणाश्रोत और अन्य कहानियाँ, ब्लैक होल, खोज, डायन और अन्य कहानियाँ (कहानी संग्रह) किशनगढ़ के अहेरी, सर्कस, सावधान नीचे आग है, धार, पाँव तले ही दूब, जंगल जहाँ शुरू होता है, सूत्रधार, आकाश चम्पा (उपन्यास)
सम्मान	:	इंदु शर्मा कथा सम्मान, कथाक्रम सम्मान

पार्टीशन

—स्वयं प्रकाश

आप कुर्बान भाई को नहीं जानते? कुर्बान भाई इस कस्बे के सबसे शानदार शख्स हैं। कस्बे का दिल है आजाद चौक और ऐन आजाद चौक पर कुर्बान भाई की छोटी सी किराने की दुकान है। यहाँ हर समय सफेद कमीज-पजामा पहने दो-दो, चार-चार आने का सौदा-सुलफ माँगती बच्चों-बड़ों की भीड़ में घिरे कुर्बान भाई आपको नजर आ जाएँगे। भीड़ नहीं होगी तो उकड़ूँ बैठे कुछ लिखते होंगे। बार-बार मोटे फ्रेम के चश्मे को उंगली से ऊपर चढ़ाते और माथे पर बिखरे आवारा, अधकचरे बालों को दाएँ या बाएँ हाथ की उँगलियों में फँसा पीछे सहेजते। यदि आप यहाँ से सौदा लेना चाहें तो आपका स्वागत है। सबसे वाजिब दाम और सबसे ज्यादा सही तौल और शुद्ध चीज। जिस चीज से उन्हें खुद तसल्ली नहीं होगी, कभी नहीं बेचेंगे। कभी धोखे से दुकान में आ भी गई तो चाहे पड़ी-पड़ी सड़ जाए, आपको साफ मना कर देंगे। मिर्च? आपके लायक नहीं है। रंग मिली हुई आ गई है। तेल! मजेदार नहीं है। रेपसीड मिला है। दीया-बत्ती के लिए चाहें तो ले जाएँ।

यही वजह है कि एक बार जो यहाँ से सामान ले जाता है, दूसरी बार और कहीं नहीं जाता। यों चारों तरफ बड़ी-बड़ी दुकानें हैं-सिंधियों की, मारवाड़ियों की, पर कुर्बान भाई का मतलब है, ईमानदारी। कुर्बान भाई का मतलब है, उधार की सुविधा और भरोसा।

लेकिन एक बात का ध्यान रखिएगा जो सामान आप ले जा रहे हैं, उसका लिफाफा या थैली बगैर देखे मत फेंकिएगा। मुमकिन है उस पर कोई खुद्दार या खूंखार शेर लिखा हो। न जाने कितने लोग उनसे कह-कहकर हार गए कि गल्ले में एक कॉपी

रख लें, शेर होते ही फौरन उसमें दर्ज कर लें। कुर्बान भाई सुनते हैं, सहमत भी हो जाते हैं, जो चीजें खो गई उन पर दुखी भी होते हैं, पर करते वहीं हैं।

मेरा भी इस शानदार आदमी से इसी तरह परिचय हुआ। दफ्तर से लौटते हुए कुर्बान भाई की दुकान में कोई चीज लेकर घर आया... लिफाफे पर लिखा था–

फ़कत पासे-वफादारी है, वरना कुछ नहीं मुश्किल।
बुझा सकता हूँ अंगारे, अभी आँखों में पानी है॥

और यह आदमी आज भी चार-चार आने के सौदे तौल रहा है! और क्यों तौल रहा है, इसकी भी एक कहानी है।

कुर्बान भाई के पिता का अजमेर में रंग का लंबा-चौड़ा कारोबार था। दो बड़े-बड़े मकान थे। हवेलियाँ कहना चाहिए। नया बाजार में खूब बड़ी दुकान थी। बारह नौकर थे। घर में बग्घी तो थी ही, एक 'बेबी ऑस्टिन' भी थी जो 'सैर' पर जाने के काम आती थी। संयुक्त परिवार था। पिता मौलाना आजाद के शैदाइयों में से थे। बड़े-बड़े लीडर और शायर घर आकर ठहरते थे। कुर्बान भाई उस वक्त अलीगढ़ यूनिवर्सिटी में पढ़ रहे थे। न भविष्य की चिंता थी न बुढ़ापे का डर! मजे से जिंदगी गुजर रही थी। इश्क, शायरी, होस्टल, ख्वाब!

तभी पार्टीशन हो गया। दंगे हो गए। दुकान जला दी गई। रिश्तेदार पाकिस्तान भाग गए, दो भाई कत्ल कर दिए गए। पिता ने सदमे से खटिया पकड़ ली और मर गए। नौकर घर की पूँजी लेकर भाग गए। बचे-खुचों को लेकर अपनी जान लिए-लिए कुर्बान भाई नागौर चले गए। वहाँ से मेड़ता, मेड़ता से टौंक। कहाँ जाएँ? कहाँ सिर छिपाएँ? क्या पाकिस्तान चले जाएँ? नहीं गए। क्योंकि जोश नहीं गए, क्योंकि सुरैया नहीं गई, क्योंकि कुर्बान भाई को अच्छे लगने वाले बहुत से लोग नहीं गए। तो कुर्बान भाई क्यों जाते?

धीरे-धीरे घर की बिकने लायक चीजें सब बिक गई और कहीं कोई काम, कोई नौकरी नहीं मिली, जो उस दौर में मुसलमानों को मिलना बेहद मुश्किल थी। तिस पर हुनर कोई जानते नहीं थे, तालीम अधूरी थी। आखिर एक सेठ के यहां हिसाब लिखने का काम करने लगे, लेकिन अपनी आदर्शवादिता, ईमानदारी, दयानतदारी, शराफत आदि दुर्गुणों के कारण जल्द ही निकाल दिए गए...। लेकिन मालिक होने का ठसका एक बार टूटा तो टूटता चला गया। स्थिति यह थी कि हिंदुओं में निभने की कोशिश करते तो शक-शुबहे की बर्छियों से छेद-छेद दिए जाते और मुसलमानों में खपने की कोशिश करते तो लीगियों के धार्मिक उन्माद का जवाब देते-देते टूक-टूक हो जाते। ...उतरते गए ...मजदूरी तक, हम्माली तक छुटपुट कारीगरी तक ...इंसानियत तक। नए-नए काम सीखे। मजबूरी सिखा ही देती है। साइकिल के पंक्चर जोड़े, पीपों-कनस्तरों की झालन लगाई, ताले-छतरियाँ, लालटेनें ठीक कहीं... चूनरी-बंधेज की रंगाई में काम किया... हाथी दाँत की चूड़िया काटीं... शहर दर शहर... अब हमला सांप्रदायिक उन्माद का नहीं, मशीन का हो रहा था... जो चीज पकड़ते... धीरे-धीरे हाथ से फिसलने लगती। धक्के खाते-खाते पता नहीं कब कैसे यहाँ इस कस्बे में आ गए और एक बुजुर्ग नमाजी मुसलमान से पचास रुपए उधार लेकर एक दिन यह दुकान खोल बैठे। ...कुछ पुड़ियों में दाल-चावल...माचिस...बीड़ी-सिगरेट-गोभी-चाकलेट...क्या बताऊँ? किस तरह बताऊँ? एक आदमी के दर्द और संघर्ष की तवील दास्तान का सिर्फ अपनी सुविधा के लिए चंद अल्फाज में निबटा देना... न सिर्फ ज्यादती है, बल्कि उस संघर्ष का अपमान, ...उसका मजाक उड़ाने जैसा भी है। पर क्या करूँ, कहानी जो कहने जा रहा हूँ–दूसरी है।

दुकान के जरा जमते ही कुर्बान भाई ने अखबार मँगाना शुरू कर दिया। ठीया हो गया, पहनने को दो जोड़ी कपड़े हो गए, रोटेशन चल गया, गिराकी जम गई तो आगे ख्वाहिश कौन सी थी? बच्चे कोई जिए नहीं थें, शौक-मौज, सैर-सपाटा भूल ही चुके थे, मियाँ-बीवी दो जनों के लिए अल्लाह का दिया बहुत था... पत्रिकाएँ क्यों न मँगाते? और उस समय कोई पत्रिका आती तो बुकपोस्ट हो या वी.पी., उसे लेने कुर्बान भाई खुद पोस्ट ऑफिस पहुँच जाते। पत्रिका को बड़े जतन से सँभालकर रखते और उसका पन्ना-पन्ना, हर्फ-हर्फ चाट जाते। कई-कई बार, जैसे किसी भूखे-प्यासे को छप्पन भोग मिल गए हों। अदब से अब भी इसी तरह मोहब्बत करते हैं। पत्रिकाएँ मँगाकर, खरीदकर पढ़ते हैं और उनकी फाइल हिफाजत से रखते हैं।

इसी सिलसिले में... उनके संस्कार बोलने लगे। लोगों ने देखा, यह शख्स कभी झूठ नहीं बोलता... ठगी-चार सौ बीसी नहीं करता... कम नहीं तौलता... अबे-तबे नहीं करता... गंदे मजाक नहीं करता... अदब से बोलता है और आड़े वक्त पर हरेक के काम आता है... हर काम में इसके एक नफासत... संस्कारिता छलकती है... इसलिए धीरे-धीरे कस्बे में प्रतिष्ठित लोग दुआ-सलाम करने लगे... व्यापारियों के यहाँ शादी-ब्याह कुछ होता... उनके कार्ड आने लगे। आकर्षित होकर खग के पास खग भी आने लगे। अब कुर्बान भाई उन्हें चाय पिला रहे हैं और ग्राहकी छोड़कर गालिब पर बहस कर रहे हैं।

आहिस्ता-आहिस्ता कुर्बान भाई की दुकान पढ़े-लिखों का अड्डा बन गई। लेक्चरर, अध्यापक, पत्रकार, पढ़ने-खिलने वाले। शाम होते ही कुर्बान भाई की दुकान ठहाकों और बहसों से गुलजार हो जाती। कुर्बान भाई आदाब अर्ज करते... चाय वाले को चाय के लिए आवाज लगाते हैं और टाट की कोई बोरी निकालकर चबूतरे पर बिछा देते। ग्राहकी भी चलती रहती, बहसें भी, ठहाके भी, और बीच-बीच में इसमें भी संकोच नहीं करते कि किसी को छाबड़ी पकड़ाकर दूर रखे थैले से किलो-भर साबुत मिर्च भरने में पिसे नामक की थैली निकाल देने या दस चीजों का टोटल मिला देने जैसा काम पकड़ा दें। बड़ा मजेदार दृश्य होता कि अंग्रेजी साहित्य का व्याख्याता सड़क पर खड़ा फटक-फटककर लहसुन के छिलके उड़ा रहा है या प्रांतीय अखबार का संवाददाता उकड़ूँ बैठकर चबूतरे के नीचे रखी बोरी से मुलतानी मिट्टी निकाल रहा है या इतिहास के वरिष्ठ अध्यापक...

हम लोगों के संपर्क से कुर्बान भाई बदलने लगे। उन्हें पहली बार महसूस हुआ कि उनकी एक अदबी शख्सियत भी है। हमने उनसे उर्दू सीखी, उनकी लाइब्रेरी (जो काफी समृद्ध हो गई थी) को तरतीब दी, रिसालों की जिल्दें बनवाईं और उस लाइब्रेरी का खूब लाभ उठाया। हम लोग कुर्बान भाई को पकड़-पकड़कर मुशायरों-नशिस्तों में ले जाने लगे। हमने उन्हें ऐसी पत्रिकाएँ दिखाईं, जैसी उन्होंने पहले कभी देखी थीं... ऐसे लेखकों-कवियों के बारे में बताया जो सिर्फ उनकी कल्पना में ही थे... ऐसे शायरों की रचनाएँ सुनाई जो साकी-शराब वगैरह को कब का अलविदा कह चुके थे और ऐसी राजनीति से उनका परिचय कराया, जिसके बारे में उन्होंने अब तक सिर्फ उड़ती-उड़ती बातें ही सुनी थीं। उनके दिमाग में भी काफी मजहबी कबाड़ भरा हुआ था, शुरू से प्रबुद्ध होने के बावजूद, हम झाड़ू लेकर पिल पड़े... हमने उन्हें अखबार और विचार का चस्का लगा दिया, जैसा पहले किसी ने करना जरूरी नहीं समझा था।

नतीजा यह निकला कि वे हफ्ते में एक रोज छुट्टी रखने लगे, रात को खाने के बाद हमारे साथ घूमने जाने लगे... अपने अतीत के बारे में सोच-सोचकर गुस्से में भरे रहने की बजाय भविष्य की तरफ देखकर कभी-कभी चहकने भी लगे और हमारे नजदीक से नजदीकतर होने लगे। एक नए किस्म का लौंडापन उन पर चढ़ने लगा। उन्हें हमारी लत पड़ने लगी। वे हमारा हर शाम इंतजार करते और हम नहीं पहुँच पाते तो वे खुद हमारे घर आ जाते।

अब हुआ यह भी कि कस्बे के शरीफ और प्रतिष्ठित व्यक्ति होने की कुर्बान भाई की ख्याति से हमें लाभ न हुआ हो, हमारी बदनामी की लपेट में वे भी आने लगे। जिस

परिमाण में कुर्बान भाई का जो समय हमें मिलता, उसी परिमाण में वह उनके पुराने दोस्तों-लतीफ साहब, हाजी साहब, इमाम साहब वगैरह के हिस्से से कम हो जाता। नमाज पढ़ने वे सिर्फ शुक्रवार को जाते थे, अब वह भी बंद कर दिया। वाज वगैरह में चलने को कोई पहले भी उनसे नहीं कहता था, अब भी नहीं कहता। मदरसे को पहले भी चंदा देते थे, अब भी देते। हाँ, कभी-कभी होने वाली राजनीतिक सभाओं में जाने को और कस्बे की राजनीति में दिलचस्पी लेने को उनके लिए खतरनाक समझकर बिरादरी वाले उन्हें टोकने जरूर लगे। पॉलिटिक्स अपने लोगों के लिए नहीं है, समझे? चुपचाप सालन-रोटी खाओ और अल्लाह का नाम लो। चैन से जीना है तो इन लफड़ों में मत पड़ो। बेकार कभी धर लिए जाओगे... हमें भी फँसवाओगे। अब यहाँ रहना ही है तो... पानी में रहकर मगरमच्छों को मुँह चिढ़ाने से क्या फायदा?

लेकिन अपनी मस्ती में मस्त थे हम लोग। न हमें पता चला न खुद कुर्बान भाई को कि उन्हें इमामबाड़े वाले ही नहीं, शाखा वाले भी घूरते हुए निकलने लगे हैं। शाम को उनकी दुकान पर आने वाले कुछ देशप्रेमी किस्म के लोगों की सतत अनुपस्थिति का गूढार्थ भी हमने नहीं समझा। इसलिए आखिर वह घटना हो गई जिसने इस कहानी को एक ऐसे अप्रिय मुकाम तक पहुँचा दिया जो मन को कड़वाहट से भर देता है।

एक दिन दोपहर की बात है। एक बैलगाड़ी वाले ने ठीक उनकी दुकान के सामने गाड़ी रोकी। बैल खोले और गाड़ी का अगला हिस्सा कुर्बान भाई के चबूतरे पर टिका दिया। गाँव से आने वाले इसी चौक में गाड़ियाँ खड़ी करते हैं, बैल खोलते हैं और उन्हें चारा डालकर अपना काम-काज निपटाने चले जाते हैं। शाम को लौटते हैं और जोतकर चले जाते हैं। लेकिन वे गाड़ी किसी की दुकान के ऐन सामने खड़ी नहीं करते और किसी के चबूतरे पर रखने का तो सवाल ही नहीं उठता। इस शख्स ने तो इस तरह गाड़ी खड़ी की थी कि अब कोई ग्राहक कुर्बान भाई की दुकान तक पहुँच ही नहीं सकता था, बल्कि वे खुद भी पड़ोसी के चबूतरे पर से हुए बिना नीचे नहीं उतर सकते थे। गाड़ी वाला वकील ऊखचंद का हाली था और कुर्बान भाई को मालूम था कि अभी वह गाड़ी खड़ी करके गया और शाम को ही लौटेगा। कुर्बान भाई ने उससे गाड़ी जरा बाजू में खड़ी करने और बैलों को किनारे बाँध देने को कहा। उसने अनसुनी कर दी। कुर्बान भाई ने फिर कहा तो एक नजर उन्हें देखकर अपने रास्ते चल पड़ा। कुर्बान भाई ने खुद उठकर चबूतरे पर टिके उसकी गाड़ी के अगले छोर को उठाया और गाड़ी को धकाकर... लेकिन तभी उस आदमी ने कुर्बान भाई का गरेबान पकड़ लिया और गालियाँ बकने लगा। और कुर्बान भाई का चश्मा नोच लिया और धक्का-मुक्की करने लगा। ठीक इसी

समय कोर्ट से लौटते वकील ऊखचंद उधर से गुजरे और उन्होंने आवाज मारकर पूछा, 'क्या हुआ रे गोम्या?' गोम्या बोला, 'म्हनै कूटै!' यानी मुझे मार रहा है। वकील ऊखचंद ने पूछा, 'कौन?' गोम्या बोला, 'ये मींयों!'

कुर्बान भाई सन्न रह गए। बात समझ में आते-आते भीतर हचमचा गए। आँखों के आगे तारे नाचने लगे। वहीं जमीन पर उकड़ूँ बैठ गए और सिर पकड़ लिया। अंधेरे का एक ठोस गोला कलेजे से उठा और हलक में आकर फँस गया। बरसों से जमी रुलाई एक साथ फूट पड़ने को जोर मारने लगी।

...यह क्या हुआ? ...कैसे हुआ? क्या गोम्या उन्हें जानता नहीं? एक ही मिनट में वह 'कुर्बान भाई' से 'मियां' कैसे बन गए? एक मिनट भी नहीं लगा! बरसों से तिल-तिल मरकर जो प्रतिष्ठा उन्होंने बनाई... हर दिन हर पल जैसे एक अग्नि-परीक्षा से गुजरकर, जो सम्मान, जो प्यार अर्जित किया... हर दिन खुद को समझाकर... कि पाकिस्तान जाकर भी कोई नवाबी नहीं मिल जाती... जैसे हैं यहीं मस्त हैं... अल्लाह सब देखता है... जाने दो जोश को, डूबने दो सुरैया का सितारा... भुला देने दो दोस्तों को... लुट जाने दो कारोबार को... झूठे बदमाशें के कब्जे में चली जाने दो हवेलियाँ... गुमनाम पड़ी रहने दो भाइयों की कब्रें... दफना दो भरे-पूरे घर का सपना...शायद कभी फिर अपना भी दिन आए... तब तक सब्र कर लो... क्या-क्या कीमत रोज चुकाकर कस्बे में थोड़ा सा अपनापन... थोड़ी सी सामाजिक सुरक्षा... थोड़ा सा आत्मविश्वास.... थोड़ी सी सहजता उन्होंने अर्जित की थी...और कितनी बड़ी दौलत समझ रहे थे इसको... और लो! तिल-तिल करके बना पहाड़ एक फूँक में उड़ गया! एक जाहिल आदमी... लेकिन जाहिल वो है या मैं? मैं एक मिनिट-भर में 'कुर्बान भाई' से 'मियां' हो जाऊँगा, यह कभी सोचा क्यों नहीं? अपनी मेहनत का खाते हैं। फिर भी ये लोग हमें अपनी छाती का बोझ ही समझते हैं। यह बात कभी नजर क्यों नहीं आई? पाकिस्तान चले जाते... तो लाख गुर्बत बर्दाश्त कर लेते... कम से कम ऐसी ओछी बात तो नहीं सुननी पड़ती। हैफ है! धिक्कार है! लानत है ऐसी जिंदगी पर!

अल्लाह! या अल्लाह!!

वकील ऊखाचंद गोम्या हाली को समझाते-बुझाते साथ ले गए। गाड़ी-बैल वहीं छोड़ गए। अड़ोसियों-पड़ोसियों ने कुर्बान भाई को सँभाला। उनकी बत्तीसी भिंच गई थी और होंठों के कोनों से झाग निकल रहे थे। लोगों ने गाड़ी-बैल हटाए। कुर्बान भाई को चबूतरे पर लिटाया! हवा की! मुँह पर ठंडे पानी के छींटे दिए। वकील ऊखाचंद को गालियाँ दीं। कुर्बान भाई को आश्वस्त करने का प्रयत्न किया। उन्हें क्या मालूम था,

कुर्बान भाई के भीतर क्या टूट गया? अभी-अभी। जिसे उन्होंने इतने बरस नहीं टूटने दिया था। अंदर की चोट दिखाई कहाँ देती है?

लोग इकट्ठे हो गए। सारे कस्बे में खबर फैल गई। जिस-जिस को पता चलता गया, आता गया। हम लोग भी पहुँच गए। अब बीसियों लोग थे और बीसियों बातें। काफी देर फन्नाने-फुफकारने के बाद तय हुआ कि यह बदतमीजी चुपचाप बर्दाश्त नहीं करनी चाहिए। थाने में रपट लिखानी चाहिए।

लिहाजा चला जुलूस थाने। ...पर रास्ते में किसी को पेशाब लग गया, किसी को हगास। थाने पहुँचते-पहुँचते सिर्फ हम लोग रह गए कुर्बान भाई के साथ!

थानेदार नहीं थे। अभी-अभी मोटर साइकिल लेकर कहीं निकल गए। मुंशी था। मुंशी ने रपट लिखने से साफ इंकार कर दिया। क्यों न करता? थानेदार के पास पहले ही वकील ऊखचंद का टेलीफोन आ चुका था। वकील ऊखचंद सत्ता पार्टी के जिला मंत्री थे। कुर्बान भाई कौन थे? हम लोग कौन थे?

आधे घंटे तक हुज्जत और डेढ़ घंटे तक थानेदार की प्रतीक्षा करने के बाद अपना सा मुँह लेकर लौट आए। शाम को फिर आएँगे। शाम को हम लोगों के सिवा दुकान पर कोई नहीं पहुँचा। और हम लोगों के साथ थाने चलने का जरा भी उत्साह कुर्बान भाई ने नहीं दिखाया। दुकानदारी ने उन्हें जैसे एकदम व्यस्त कर लिया, जैसे हमसे बात करने का भी समय नहीं।

एक अपराध-बोध के तहत हम भी कुर्बान भाई से कटे-कटे रहने लगे। हालाँकि घटना इतनी बड़ी नहीं थी, जिसे तूल दिया जाए। थानेदार तो क्या... कोई भी होता.... खुद पुलिस-उलिस के चक्कर में पड़ने के बजाय जो हो गया, उसे एक जाहिल आदमी की मूर्खता मानकर भूल जाने को तैयार हो जाता। पर हम... हमें लग रहा था... हमारे दोस्त पर हमला हुआ और हम कुछ नहीं कर सके, किसी काम नहीं आ सके। यह भी लग रहा था कि ज्यादा उत्साह दिखाया तो कुर्बान भाई के लिए और मुसीबतें खड़ी हो जाएँगी, हम कुछ नहीं कर पाएँगे। यह भी लग रहा था कि जो हुआ, उसमें पुलिस से हस्तक्षेप और सहायता की उम्मीद बेकार है। इसका मुकाबला राजनीतिक स्तर पर ही किया जा सकता है, जिसके लिए जल्दी से जल्दी अपनी शक्ति बढ़ानी चाहिए, पाँच से पचास हो जाना चाहिए।

लेकिन यह सब बहानेबाजी थी। सच यह है कि कुर्बान भाई को एकदम अकेला छोड़ दिया था। शायद हम उनकी तकलीफ को शेयर कर ही नहीं सकते थे, पर हमें

कोशिश जरूर करनी चाहिए थी।

कुर्बान भाई की दुकान पर कई दिन पहले का सा रंगतदार जमावड़ा नहीं हुआ। वह बुझे-बुझे से रहते थे, बहुत कम बोलते थे और हमें देखते ही दुकानदारी में व्यस्त हो जाते थे। वे घुट रहे थे और घुल रहे थे... पर खुल नहीं रहे थे। हम उन्हें नहीं खोल पाए। एक दिन जब मैं पहुँचा, मेरी तरफ उनकी पीठ थी, किसी से कह रहे थे–आप क्या खाक हिस्ट्री पढ़ाते हैं? कह रहे हैं पार्टीशन हुआ था! हुआ था नहीं, हो रहा है, जारी है... और मुझे देखते ही चुप होकर काम में लग गए।

इस कहानी का अंत अच्छा नहीं है। मैं चाहता हूँ कि आप उसे नहीं पढ़ें। और पढ़ें तो यह जरूर सोंचें कि क्या इसका कोई और अंत हो सकता था? अच्छा अंत? अगर हौ, तो कैसे?

बात बस यह बची है कि कई दिन बाद जब एक दोपहर मैं आजाद चौक से गुजर रहा था–जिसका नाम अब संजय चौक कर दिया गया था–और वह शुक्रवार का दिन था–मैंने देखा कि कुर्बान भाई की दुकान के सामने लतीफ भाई खड़े हैं...। और कुर्बान भाई दुकान में ताला लगा रहे हैं। ...और उन्होंने टोपी पहन रखी है... और फिर दोनों मस्जिद की तरफ चल दिए हैं।

स्वयं प्रकाश

जन्म	:	2 जनवरी, 1947
प्रकाशन	:	मात्रा और भार, सूरज कब निकलेगा, आसमां कैसे कैसे, अगली किताब, आएँगे अच्छे दिन भी, आदमी जात का आदमी, चर्चित कहानियाँ, अगले जनम, आधी सदी का सफरनामा, पार्टीशन (कहानी संग्रह) चलते जहाज पर, बीच में विनय, उत्तर जीवन कथा, ईंधन, ज्योति, रथ के सारथी (उपन्यास) स्वातः सुखाय, दूसरा पहलू, रंगशाला में एक दोपहर (निबंध संग्रह) फीनिक्स नाटक
सम्मान	:	राजस्थान साहित्य अकादमी पुरस्कार, वनमाली स्मृति पुरस्कार, सुभद्रा कुमारी चौहान पुरस्कार, पहल सम्मान

तिरिछ

–उदय प्रकाश

इस घटना का संबंध पिताजी से है। मेरे सपने से है और शहर से भी है। शहर के प्रति जो एक जन्म-जात भय होता है, उससे भी है।

पिताजी तब पचपन साल के हुए थे। दुबला शरीर। बाल बिल्कुल मक्के के भुए जैसे सफेद। सिर पर जैसे रुई रखी हो। वे सोचते ज्यादा थे–बोलते बहुत कम। जब बोलते तो हमें राहत मिलती, जैसे देर से रुकी हुई साँस निकल रही हो। साथ-साथ हमें डर भी लगता। हम बच्चों के लिए वे एक बहुत बड़ा रहस्य थे। हमें पता था कि संसार के सारे ज्ञान की तिजोरी उनके पास है। हम जानते थे कि संसार की सारी भाषाएँ वे बोल सकते हैं। दुनिया उनको जानती है और हमारी तरह ही उनसे डरती हुई उनका सम्मान करती है।

हमें उनकी संतान होने का गर्व था।

कभी-कभी, वैसे ऐसा सालों में एकाध बार ही होता, वे शाम को हमें अपने साथ टहलाने कहीं बाहर ले जाते। चलने से पहले वे मुँह में तंबाकू भर लेते। तंबाकू के कारण वे कुछ बोल नहीं पाते थे। वे चुप रहते। यह चुप्पी हमें बहुत गंभीर, गौरवशाली, आश्चर्यजनक और भारी-भरकम लगती। छोटी बहन कभी उनसे रास्ते में कुछ पूछना चाहती तो फौरन मैं उसका जवाब देने की कोशिश करता, जिससे पिताजी को न बोलना पड़े।

वैसे यह काम काफी मुश्किल और जोखिम भरा होता। क्योंकि मैं जानता था कि अगर मेरा जवाब गलत हुआ तो पिताजी को बोलना पड़ जाएगा। बोलने में उन्हें परेशानी

होती थी। एक तो उन्हें तंबाकू की पीक निकालनी पड़ती थी, फिर जिस दुनिया में वे रहते थे, वहाँ से निकलकर यहाँ तक आने में उन्हें एक कठिन दूरी तय करनी पड़ती थी। वैसे बहन के सवालों में कोई खास बात होती नहीं थी। जैसे वह यही पूछ लेती कि सामने छिउले की सूखी टहनी पर बैठी उस चिड़िया को क्या कहते हैं? मैं चूँकि सारी चिड़ियों को जानता था इसलिए बता सकता था कि वह नीलकंठ है और दशहरे के दिन से जरूर देखना चाहिए। मेरी पूरी कोशिश रहती कि पिताजी को आराम रहे और वे सोचते रहें।

मेरी और माँ की, दोनों की पूरी कोशिश रहती कि पिताजी अपनी दुनिया में सुख-चैन से रहें। वहाँ से उन्हें जबरन बाहर न निकाला जाए। वह दुनिया हमारे लिए बहुत रहस्यपूर्ण थी, लेकिन हमारे घर की और हमारे जीवन की बहुत-सी समस्याओं का अंत पिताजी वहीं रहते हुए करते थे। जैसे जब मेरी फीस की बात आई, उस समय हमारे पास का आखिरी गिलास भी गुम गया था और सब लोग लोटे में पानी पीते थे। पिताजी दो दिन तक बिल्कुल चुप रहे। माँ को भी शक हुआ था कि पिताजी फीस की बात बिल्कुल भूल गए हैं या फिर इसका हल उनके वश की बात नहीं है। लेकिन तीसरे दिन, सुबह-सुबह, पिताजी ने मुझे एक पत्र लिफाफे में रखकर दिया और शहर के डॉक्टर पंत के पास भेजा। मुझे बहुत आश्चर्य हुआ जब डॉक्टर ने मुझे शरबत पिलाई, घर के भीतर ले जाकर अपने बेटे से परिचय कराया और सौ-सौ के तीन नोट मुझे दिए।

हम पिताजी पर गर्व करते थे, प्यार करते थे, उनसे डरते थे और उनके होने का अहसास ऐसा था जैसे हम किसी किले में रह रहे हों। ऐसा किला, जिसके चारों ओर गहरी नहरें खुदी हुई हों, बुर्जें बहुत ऊँची हों, दीवारें सख्त लाल चट्टानों की बनी हुई हों और हर बाहरी हमले के सामने हमारा किला अभेद्य हो।

पिताजी एक खूब मजबूत किला थे। उनके परकोटे पर हम सब कुछ भूलकर खेलते थे, दौड़ते थे। और, रात में खूब गहरी नींद मुझे आती थी।

लेकिन उस दिन शाम को, जब पिताजी बाहर से टहलकर आए तो उनके टखने में पट्टी बँधी थी। थोड़ी देर में गाँव के कई लोग वहाँ आ गए। पता चला कि पिताजी को जंगल में तिरिछ (विषखापर, एक जहरीला लिजार्ड) ने काट लिया है।

हम सब जानते थे कि तिरिछ के काटने पर आदमी बच ही नहीं सकता। रात में, लालटेन की धुँधली-मटैली रोशनी में गाँव के बहुत से लोग हमारे आँगन में जमा हो गए थे। पिताजी उनके बीच थे, जमीन पर बैठे हुए। फिर पास के गाँव का चुटुआ नाई भी

आया। वह अरंड के पत्ते और कंडे की राख से जहर उतारता था।

तिरिछ एक बार मैंने देखा था।

तालाब के किनारे जो बड़ी-बड़ी चट्टानों के ढेर थे, और जो दोपहर में खूब गर्म हो जाते थे, उनमें से किसी चट्टान की दरार से निकलकर वह पानी पीने तालाब की ओर जा रहा था।

मेरे साथ थानू था। उसने बतलाया कि वह तिरिछ है, काले नाग से सौ गुना ज्यादा उसमें जहर होता है। उसी ने बताया कि साँप तो तब काटता है, जब उसके ऊपर पैर पड़ जाए या कोई जब जबरदस्ती उसे तंग करे। लेकिन तिरिछ तो नजर मिलते ही दौड़ता है। पीछे पड़ जाता है। उससे बचने के लिए कभी सीधे नहीं भागना चाहिए। टेढ़ा-मेढ़ा, चक्कर काटते हुए, गोल-मोल दौड़ना चाहिए।

दरअसल जब आदमी भागता है तो जमीन पर वह सिर्फ अपने पैरों के निशान ही नहीं छोड़ता, बल्कि हर निशान के साथ, वहाँ की धूल में, अपनी गंध भी छोड़ जाता है। तिरिछ इसी गंध के सहारे दौड़ता है। थानू ने बतलाया कि तिरिछ को चकमा देने के लिए आदमी को यह करना चाहिए कि पहले तो वह बिल्कुल पास-पास कदम रखकर, जल्दी-जल्दी कुछ दूर दौड़े फिर चार-पाँच बार खूब लंबी-लंबी छलाँग दे। तिरिछ सूँघता हुआ दौड़ता आएगा, जहाँ पास-पास पैर के निशान होंगे, वहाँ उसकी रफ्तार खूब तेज हो जाएगी-और जहाँ से आदमी ने छलाँग मारी होगी, वहाँ आकर वह उलझन में पड़ जाएगा। वह इधर-उधर तब तक भटकता रहेगा जब तक उसे अगले पैर का निशान और उसमें बसी गंध नहीं मिल जाती।

हमें तिरिछ के बारे में दो बातें और पता थीं। एक तो यह कि जैसे ही वह आदमी को काटता है, वैसे ही वह वहाँ से भागकर किसी जगह पेशाब करता है और उस पेशाब में लोट जाता है। अगर तिरिछ ने ऐसा कर लिया तो आदमी बच नहीं सकता। अगर उसे बचना है तो तिरिछ के पेशाब में लोटने के पहले ही, खुद किसी नदी, कुएँ या तालाब में डुबकी लगा लेनी चाहिए या फिर तिरिछ के ऐसा करने के पहले ही उसे मार देना चाहिए।

दूसरी बात यह कि तिरिछ काटने के लिए तभी दौड़ता है, जब उससे नजर टकरा जाए। अगर तिरिछ को देखो तो उससे कभी आँख मत मिलाओ। आँख मिलते ही वह आदमी की गंध पहचान लेता है और फिर पीछे लग जाता है। फिर तो आदमी चाहे पूरी पृथ्वी का चक्कर लगा ले, तिरिछ पीछे-पीछे आता है।

मैं भी तमाम बच्चों की तरह उस समय तिरिछ से बहुत डरता था। मेरे दु:स्वप्न के सबसे खतरनाक पात्र दो ही थे–एक हाथी और दूसरा तिरिछ। हाथी तो फिर भी दौड़ता-दौड़ता थक जाता था और मैं पेड़ पर चढ़कर बच जाता था, या फिर उड़ने लगता था, लेकिन तिरिछ–उसके सामने तो मैं किसी इंद्रजाल में बँध जाता था। मैं सपने में कहीं जा रहा होता तो अचानक ही किसी जगह वह मिल जाता, उसकी जगह तय नहीं होती थी। कोई जरूरी नहीं था कि वह चट्टानों की दरार में, पुरानी इमारतों के पिछवाड़े या किसी झाड़ी के पास दिखे–वह मुझे बाजार में, सिनेमा हाल में, किसी दुकान या मेरे कमरे में ही दिख सकता था।

मैं सपने में कोशिश करता कि उससे नजर न मिलने पाए, लेकिन वह इतनी परिचित आँखों से मुझे देखता कि मैं अपने-आपको रोक नहीं पाता था और बस, आँख मिलते ही उसकी नजर बदल जाती थी–वह दौड़ता था और मैं भागता था।

मैं गोल-गोल चक्कर लगाता, जल्दी-जल्दी पास-पास डग भरकर अचानक खूब लंबी-लंबी छलाँगें लगाने लगता, उड़ने की कोशिश करता, किसी ऊँची जगह पर चढ़ जाता, लेकिन मेरी हजार कोशिशों के बावजूद वह चकमा नहीं खाता था। वह मुझे बहुत घाघ, समझदार, चतुर और खतरनाक लगता। मुझे लगता कि वह मुझे खूब अच्छी तरह से जानता है। उसकी आँखों में मेरे लिए परिचय की जो चमक थी, उससे मुझे लगता कि वह मेरा ऐसा शत्रु है जिसे मेरे दिमाग में आनेवाले हर विचार के बारे में पता है।

मेरा सबसे खौफनाक, यातनादायक, भयाक्रांत और बेचैनी से भरा यही सपना था। भागते-भागते मेरा पूरा शरीर थक जाता, फेफड़े फूल जाते, मैं पसीने में लथ-पथ होकर बेदम होने लगता और एक बहुत ही डरावनी, सुन्न कर डालनेवाली मृत्यु मेरे बिल्कुल करीब आने लगती। मैं जोरों से चीखता, रोने लगता। पिताजी को, थानू को या माँ को पुकारता और फिर मैं जान जाता कि यह सपना है। लेकिन यह पता चल जाने के बावजूद मैं अच्छी तरह से जानता कि तब भी मैं अपनी इस मृत्यु से नहीं बच सकता। मृत्यु नहीं–तिरिछ द्वारा अपनी हत्या से–और ऐसे में मैं सपने में ही कोशिश करता कि किसी तरह मैं जाग जाऊँ। मैं पूरी ताकत लगाता, सपने के भीतर आँखें खोलकर फाड़ता, रोशनी को देखने की कोशिश करता और जोर से कुछ बोलता। कई बार बिल्कुल ऐन मौके पर मैं जागने में सफल भी हो जाता।

माँ बतलाती कि मुझे सपने में बोलने और चीखने की आदत है। कई बार उन्होंने मुझे नींद में रोते हुए भी देखा था। ऐसे में उन्हें मुझे जगा डालना चाहिए, लेकिन वे मेरे माथे को सहला कर मुझे रजाई से ढक देती थीं और मैं उसी खौफनाक दुनिया में अकेला

छोड़ दिया जाता था। अपनी मृत्यु–बल्कि अपनी हत्या से बचने की कमजोर कोशिश में भागता, दौड़ता चीखता।

वैसे, धीरे-धीरे मैंने अनुभवों से यह जान लिया था कि आवाज ही ऐसे मौके पर मेरा सबसे बड़ा अस्त्र है, जिससे मैं तिरिछ से बच सकता था। लेकिन दुर्भाग्य से, हर बार, इस अस्त्र की याद मुझे बिल्कुल अंतिम समय पर आती थी। तब, जब वह मुझे बिल्कुल पा लेनेवाला होता। अपनी हत्या की साँसें मुझे छूने लगतीं, मौत के नशे से भरे एक निर्जीव लेकिन डरावने अँधेरे में मैं घिर जाता, लगता मेरे नीचे कोई ठोस आधार नहीं है–मैं हवा में हूँ और वह पल आ जाता, जब मेरे जीवन का अंत होनेवाला होता। तभी, बिल्कुल इसी एक बहुत ही छोटे और नाजुक पल में मुझे अपने इस अस्त्र की याद आती और मैं जोर-जोर से बोलने लगता और इस आवाज के सहारे मैं सपने से बाहर निकल आता। मैं जाग जाता।

कई बार माँ मुझसे पूछतीं भी कि मुझे क्या हो गया था। तब मेरे पास इतनी भाषा नहीं थी कि मैं उन्हें सब कुछ, एक-एक चीज उसी तरह बता पाता। अपनी इस असमर्थता के बारे में मुझे खूब पता था और इसी वजह से मैं एक अजीब-से तनाव, बेचैनी और असहायता से भर जाता। अंत में हारकर इतना ही कह पाता कि "बहुत डरावना सपना था।"

जाने क्यों मुझे शक था कि पिताजी को उसी तिरिछ ने काटा था, जिसे मैं पहचानता था और जो मेरे सपने में आता था।

लेकिन एक अच्छी बात यह हुई थी कि जैसे ही वह तिरिछ पिताजी को काटकर भागा, पिताजी ने उसका पीछा करके उसे मार डाला था। तय था कि अगर वे फौरन उसे नहीं मार पाते तो वह पेशाब करके उसमें जरूर लोट जाता। फिर पिताजी किसी हाल में न बचते। यही वजह थी कि पिताजी को लेकर मुझे उतनी चिंता नहीं रह गई थी। बल्कि एक तरह की राहत और मुक्ति की खुशी मेरे भीतर धीरे-धीरे पैदा हो रही थी। कारण, एक तो यही कि पिताजी ने तिरिछ को तुरंत मार डाला था और दूसरा यह कि मेरा सबसे खतरनाक, पुराना परिचित शत्रु आखिरकार मर चुका था। उसका वध हो गया था और अब मैं अपने सपने के भीतर, कहीं भी, बिना किसी डर के, सीटी बजाता घूम सकता था।

उस रात देर तक हमारे आँगन में भीड़ रही आयी। पिताजी की झाड़फूँक चलती रही। काटे के जख्म को चीर कर खून भी बाहर निकाला गया और कुएँ में डालनेवाली लाल दवा (पोटेशियम परमैंगनेट) जख्म में भरा गया। मैं निश्चिंत था।

अगली सुबह पिताजी को शहर जाना था। अदालत में पेशी थी। उनके नाम सम्मन आया था। हमारे गाँव से लगभग दो किलोमीटर दूर से निकलनेवाली सड़क से शहर के लिए बसें गुजरती थीं। उनकी संख्या दिन भर में मुश्किल से दो या तीन थी। गनीमत थी कि पिताजी जैसे ही सड़क तक पहुँचे, शहर जानेवाला पास के गाँव का एक ट्रैक्टर उन्हें मिल गया। ट्रैक्टर में बैठे हुए लोग पहचान के थे। ट्रैक्टर दो-ढाई घंटे में शहर पहुँच जानेवाला था। यानी अदालत खुलने से काफी पहले।

रास्ते में तिरिछ वाली बात चली। पिताजी ने अपना टखना उन लोगों को दिखलाया। ट्रैक्टर में पंडित राम औतार भी थे। उन्होंने बतलाया कि तिरिछ के जहर की एक खासियत यह भी है कि कभी-कभी यह चौबीस घंटे बाद, ठीक उसी वक्त, जिस वक्त पिछले दिन तिरिछ काटता है, अपना असर दिखाता है। इसलिए अभी पिताजी को निश्चिंत नहीं होना चाहिए। ट्रैक्टर के लोगों ने पिताजी का ध्यान एक और बड़ी गलती की ओर खींचा। उनका कहना था कि यह तो पिताजी ने बहुत ठीक किया कि तिरिछ को फौरन मार डाला, लेकिन इसके बाद भी तिरिछ को यों ही नहीं छोड़ देना चाहिए था। उसे कम-से-कम जला जरूर देना चाहिए था।

उन लोगों का कहना था कि बहुत-से कीड़े-मकोड़े और जीव-जंतु रात में चंद्रमा की रोशनी में दुबारा जी उठते हैं। चाँदनी में जो ओस और शीत होती है उसमें अमृत होता है और कई बार ऐसा देखा गया है कि जिस साँप को मरा हुआ समझकर रात में यों ही फेंक दिया जाता है, उसका शरीर चाँद की शीत में भीग कर दुबारा जी उठता है और वह भाग जाता है। फिर वह हमेशा बदला लेने की ताक में रहता है।

ट्रैक्टर के लोगों को शक था कि कहीं ऐसा न हो कि रात में जी उठने के बाद तिरिछ पेशाब करके उसमें लोट जाए। ऐसा हुआ तो चौबीस घंटे बीतते-बीतते, ठीक उसी घड़ी के आने पर, तिरिछ का जानलेवा जहर पिताजी पर चढ़ना शुरू हो जाएगा। उन लोगों ने सलाह भी दी कि पिताजी को वहीं से वापस लौट जाना चाहिए और अगर संयोग से, उस तिरिछ की लाश उसी जगह पड़ी हुई हो, तो उसे अच्छी तरह जलाकर राख कर देना चाहिए। लेकिन पिताजी ने उन्हें बताया कि पेशी कितनी जरूरी थी। यह तीसरा सम्मन थी। और अगर इस बार भी वे अदालत में हाजिर न हुए तो गैर-जमानती वारंट निकलने का डर था। पेशी भी हमारे उसी मकान को लेकर थी, जिसमें हमारा परिवार रह रहा था। वकील को पिछले दो बार की पेशी में फीस भी नहीं दी जा सकी थी और कहीं अगर उसने लापरवाही दिखला दी और जज सनक गया तो वह हमारी कुड़की-डिक्री भी करवा सकता था।

विचित्र स्थिति थी कि अगर पिताजी उस तिरिछ की लाश को जलाने के लिए ट्रैक्टर से उतरकर, वहीं से, गाँव लौट आते तो गैरजमानती वारंट के तहत वे गिरफ्तार कर लिए जाते और हमारा घर हमसे छिन जाता। अदालत हमारे खिलाफ हो जाती।

लेकिन पंडित राम औतार एक वैद्य भी थे। ज्योतिष पंचांग के अलावा उन्हें जड़ी-बूटियों की भी बड़ी गहरी जानकारी थी। उन्होंने सुझाया कि एक तरीका ऐसा है, जिससे पिताजी पेशी में हाजिर भी हो सकते हैं और तिरिछ के जहर से चौबीस घंटे के बाद बच भी सकते हैं। उन्होंने बताया कि चरक का निचोड़ इस सूत्र में है कि विष ही विष की औषधि होता है। अगर धतूरे के बीज कहीं मिल जाएँ तो वह तिरिछ के जहर की काट तैयार कर सकते हैं।

अगले गाँव सामतपुर में ट्रैक्टर रोक दिया गया और एक तेली के खेत में धतूरे के पौधे आखिरकार खोज निकाले गए। धतूरे के बीजों को पीसकर उसे ताँबे के पुराने सिक्के के साथ उबालकर काढ़ा तैयार किया गया। काढ़ा बहुत कड़वा था इसलिए उसे चाय में मिलाया गया और पिताजी को वह चाय पिला दी गई। इसके बाद सभी निश्चिंत हो गए। एक बहुत बड़े खतरे से पिताजी को निकालने की कोशिश हो रही थी।

वैसे मुझे तिरिछ के बारे में तीसरी बात भी पता थी, जो पिताजी के जाने के कई घंटे बाद अचानक याद आ गई थी। यह बात साँप की उस बात से मिलती-जुलती थी, जिसके फलस्वरूप आगे चलकर कैमरे का अविष्कार हुआ था।

माना यह जाता था कि अगर कोई आदमी साँप को मार रहा हो तो अपने मरने से पहले वह साँप, अंतिम बार, अपने हत्यारे के चेहरे को पूरी तरह से, बहुत गौर से देखता है। आदमी उसकी हत्या कर रहा होता है और साँप टकटकी बाँधकर उस आदमी के चेहरे की एक-एक बारीकी को अपनी आँख के भीतरी पर्दे में दर्ज कर रहा होता है। साँप की मृत्यु के बाद साँप की आँख के भीतरी पर्दे पर उस आदमी का चित्र स्पष्ट दर्ज हो जाता है।

बाद में, आदमी के जाने के बाद, उस साँप कादूसरा जोड़ा जाकर उस मरे हुए साँप की आँख के भीतर झाँकता है और इस तरह वह हत्यारा पहचान लिया जाता है। सारे साँप उसे पहचानने लगते हैं। फिर वह कहीं भी चला जाए, उससे बदला लेने की फिराक में वे रहते हैं। हर साँप उसका शत्रु होता है।

मुझे शक था कि मरे हुए तिरिछ की आँख के भीतरी पर्दे पर पिताजी का चेहरा दर्ज होगा। कोई दूसरा तिरिछ आकर उस लाश की आँख में से झाँकेगा और पिताजी वहाँ

पहचान लिए जाएँगे। मेरे भीतर इस बात को लेकर बेचैनी पैदा हुई कि पिताजी ने यह सतर्कता क्यों नहीं बरती? उन्हें तिरिछ को मारने के साथ ही किसी पत्थर से उसकी दोनों आँखों को कुचलकर फोड़ देना चाहिए था। लेकिन अब क्या हो सकता था? पिताजी शहर जा चुके थे और मेरे सामने उलझन और चुनौती थी कि गाँव के पास फैले इतने बड़े जंगल में जिस जगह तिरिछ को मारकर उन्होंने छोड़ा था, वह जगह मैं खोज निकालूँ।

मैं थानू के साथ बोतल में मिट्टी का तेल, दियासलाई और डंडा लेकर जंगल में तिरिछ की खोज में भटकता रहा। मैं उसे अच्छी तरह से पहचानता था। बहुत अच्छी तरह। थानू निराश था।

फिर, मुझे अचानक ही लगने लगा कि इस जंगल को मैं अच्छी तरह से जानता हूँ। एक-एक पेड़ मेरा परिचित निकलने लगा। इसी जगह से कई बार सपने में मैं तिरिछ से बचने के लिए भागा था। मैंने गौर से हर तरफ देखा-बिल्कुल यही वह जगह थी। मैंने थानू को बताया कि एक सँकरा-सा नाला इस जगह से कितनी दूर दक्षिण की तरफ बहता है। नाले के ऊपर जहाँ बड़ी-बड़ी चट्टानें हैं, वहाँ कीकर का एक बहुत पुराना पेड़ है, जिस पर बड़े-बड़े शहद के छत्ते हैं। उन्हें देखकर लगता है कि वे कई शताब्दियों पुराने हैं। मैं उस भूरे रंग की चट्टान को जानता था, जो बरसात भर नाले के पानी में आधी डूबी रहती थी और बारिश के बीतने के बाद जब बाहर निकलती थी तो उसकी खोहों में कीचड़ भर जाती थी और अजीब-अजीब वनस्पतियाँ वहाँ से उग आती थीं। चट्टान के ऊपर हरी काई की एक पर्त-सी जम जाती थी। इसी चट्टान की सबसे ऊपरवाली दरार में तिरिछ रहता था। थानू इस बात को मेरी कल्पना मान रहा था।

लेकिन बहुत जल्द हमें वह नाला मिल गया। कीकर का वह बूढ़ा पेड़ भी, जिस पर शहद के छत्ते थे, और वह चट्टान भी। तिरिछ की लाश चट्टान से जरा हटकर, जमीन पर, घास के ऊपर चित्त पड़ी हुई थी। बिल्कुल यह वही तिरिछ था। मेरे भीतर हिंसा और उत्तेजना और खुशी की एक सनसनी दौड़ रही थी।

थानू ने और मैंने सूखे पत्ते और लकड़ियाँ इकट्ठी कीं, खूब सारा मिट्टी का तेल उसमें डाला और आग लगा दी। तिरिछ उसमें जल रहा था। उसके जलने की चिरायंध गंध हवा में फैल रही थी। मेरा मन जोर से चिल्लाने को हुआ लेकिन मैं डरा कि कहीं मैं जाग न जाऊँ और यह सब कुछ सपना न साबित हो जाए। मैंने थानू की ओर देखा। वह रो रहा था। वह मेरा बहुत अच्छा दोस्त था।

मेरे सपने में इसी जगह से निकलकर उस तिरिछ ने कई बार मेरा पीछा करना शुरू किया था। आश्चर्य था कि इतने लंबे अर्से से उसके अड्डे को इतनी अच्छी तरह से जानने के बावजूद कभी दिन में आकर मैंने उसे मारने की कोई कोशि नहीं की थी।

मैं आज बेतहाश खुश था।

पंडित राम औतार ने बतलाया था कि ट्रैक्टर ने पौने दस बजे के लगभग शहर का चुंगीनाका पार किया था। वहाँ उन्हें नाके का टोल टैक्स चुकाने के लिए कुछ देर रुकना भी पड़ा था। वहाँ पर पिताजी ट्रैक्टर से उतरकर पेशाब करने गए थे। लौटने पर उन्होंने बताया था कि उनका सिर कुछ घूम-सा रहा है, तब तक पिताजी को धतूरे का काढ़ा पिए हुए तकरीबन डेढ़ घंटा हो चुका था। ट्रैक्टर ने पिताजी को शहर में दस बजकर पाँच-सात मिनट के आसपास छोड़ दिया था। ट्रैक्टर में ही बैठे पलड़ा गाँव के मास्टर नंदलाल का कहना था कि जब शहर में, मिनर्वा टाकीज के पासवाले चौराहे पर पिताजी को ट्रैक्टर से उतारा गया, तब उन्होंने शिकायत की थी कि उनका गला कुछ सूख-सा रहा है। वे थोड़ा परेशान भी थे क्योंकि अदालत जाने का रास्ता उन्हें मालूम नहीं था और शहर के लोगों से पूछ-पूछकर कहीं जाने में उन्हें बहुत तकलीफ होती थी।

पिताजी के साथ एक दिक्कत यह भी थी कि गाँव या जंगल की पगडंडियाँ तो उन्हें याद रहती थीं, शहर की सड़कों को वे भूल जाते थे। शहर वे बहुत कम जाते थे। जाना ही पड़े तो अंतिम समय तक वे टालते रहते थे, तब तक, जब तक जाना बिल्कुल ही जरूरी न हो जाए। कई बार तो ऐसा भी हुआ कि पिताजी सारा सामान लेकर शहर के लिए रवाना हुए और बस अड्डे से लौट आए। बहाना यह कि बस छूट गई। जब कि हम सब जानते थे कि ऐसा नहीं हुआ होगा। पिताजी ने बस को देखा होगा, फिर वे कहीं बैठ गए होंगे-पेशाब करने या पान खाने। फिर उन्होंने दखा होगा कि बस छूट रही है। उन्होंने जरा-सा और इंतजार किया होगा। जब बस ने रफ्तार पकड़ ली होगी-तब वे कुछ दूर तक दौड़े होंगे। फिर उनके कदम धीमे पड़ गए होंगे और अफसोस और गुस्सा प्रकट करते वे लौट आए होंगे। ऐसा करते हुए उन्हें स्वयं भी लगा होगा कि बस सचमुच छूट गई है। ऐसे में, जबकि हम मान चुके होते कि वे शहर जा चुके हैं, वह लौटकर हमें चकित कर देते।

ट्रैक्टर से मिनर्वा टाकीज के पास वाले चौराहे पर, सिंध वाच कंपनी के ठीक सामने लगभग दस बज कर सात मिनट पर उतरने के बाद से लेकर शाम छह बजे तक पिताजी के साथ शहर में जो कुछ भी हुआ, उसका सिर्फ एक धुँधला-सा अनुमान ही

लगाया जा सकता है। यह जानकारी भी कुछ लोगों से बातचीत और पूछताछ के बाद मिली है। किसी की भी मृत्यु के बाद, अगर वह मृत्यु बहुत आकस्मिक और अस्वाभाविक ढंग से हुई हो, ऐसी जानकारियाँ मिल ही जाती है। उस दिन, बुधवार 17 मई, 1972 को सुबह दस-दस से लेकर शाम छह बजे तक, लगभग पौने आठ घंटे में पिताजी कहाँ-कहाँ गए, कहाँ-कहाँ उनके साथ क्या-क्या हुआ, इसका बहुत सही और विस्तृत ब्यौरा तो मिलना मुश्किल है। जो सूचनाएँ या जानकारियाँ बाद में मिली, उनके जरिए उन घटनाओं का सिर्फ अनुमान ही लगाया जा सकता है।

जैसा कि पलड़ा गाँव के मास्टर नंदलाल का कहना था कि जब पिताजी ट्रैक्टर से उतरे, तभी उन्होंने गला सूखने की शिकायत की थी। इसके पहले चुंगीनाका के पास, जब पेशाब करके पिताजी लौटे थे तो उन्होंने सिर घूमने की बात की थी। यानी पिताजी पर धतूरे के बीजों के काढ़े का असर होना शुरू हो गया था। वैसे भी शहर पहुँचने तक पिताजी को काढ़ा पिए हुए लगभग दो घंटे हो चुके थे। मेरा अनुमान है कि उस समय पिताजी को प्यास बहुत लगी होगी। गला भिगाने के लिए वे किसी होटल या ढाबे की तरफ गए भी होंगे, लेकिन जैसा कि मुझे उनके स्वभाव के बारे में पता है, वे वहाँ कुछ देर खड़े रहे होंगे, और फिर एक गिलास पानी माँगने का फैसला न कर सके होंगे। एक बार उन्होंने बताया भी था कि कुछ साल पहले गर्मियों के दिनों में जब उन्होंने किसी होटल में पानी माँगा था, तो वहाँ काम करनेवाले नौकर ने उन्हें गाली दी थी। पिताजी बहुत संवेदनशील थे, इसलिए उन्होंने अपनी प्यास को दबाया होगा और वे वहाँ से चल पड़े होंगे।

सवा दस से लेकर लगभग ग्यारह बजे के बीच, पैंतालीस मिनट तक पिताजी कहाँ-कहाँ गए, इसकी कोई जानकारी कहीं से नहीं मिलती। इस बीच ऐसी कोई खास घटना भी नहीं हुई, जिससे कोई कुछ कह सके। फिर शहर में सड़क पर आते-जाते लोगों में से किसी ने उन पर ध्यान दिया हो, उन्हें देखा हो, इसका पता लगाना भी मुश्किल है। वैसे मेरा अपना अंदाजा है कि इस बीच पिताजी ने कुछ लोगों से अदालत जाने का रास्ता पूछा होगा और उनके दिमाग में यह बात भी रही होगी कि वहाँ पहुँचकर वे अपने वकील एस.एन. अग्रवाल से पानी माँग लेंगे। लेकिन उनके पूछने पर या तो लोग चुप रह कर तेजी से आगे बढ़ गए होंगे या किसी ने इतनी बौखलाहट और जल्दबाजी में उन्हें कुछ बताया होगा, जो पिताजी ठीक से समझ नहीं सके होंगे और सिर्फ अपमानित, दुःखी और परेशान होकर रह गए होंगे। शहर में ऐसा होता ही है।

वैसे बीच के पौन घंटे के बारे में मेरा अपना अनुमान है कि इस बीच पिताजी पर

काढ़े का असर काफी बढ़ गया होगा। मई की धूप और प्यास ने इस असर को और भी तेज, और भी गहरा कर दिया होगा। उनके पैर लड़खड़ाने भी लगे होंगे और बहुत संभव है कि एकाध बार, इस बीच, उन्हें चक्कर भी आ गए हों।

पिताजी ग्यारह बजे, शहर में, देशबंधु मार्ग पर स्थित स्टेट बैंक ऑफ इंडिया की इमारत में घुसे थे। वे वहाँ क्यों गए, इसकी वजह ठीक-ठीक समझ में नहीं आती। वैसे हमारे गाँव का रमेश दत्त शहर में भूमि विकास सहकारी बैंक में क्लर्क है। हो सकता है पिताजी के दिमाग में सिर्फ बैंक रहा हो और यहाँ से गुजरते हुए अचानक उन्होंने स्टेट बैंक लिखा हुआ देखा हो और वे उधर घूम गए हों। उन्होंने अब तक पानी नहीं पिया था इसलिए उन्होंने सोचा होगा कि वे रमेश दत्त से पानी भी माँग लेंगे, अदालत जाने का रास्ता भी पूछ लेंगे और बता सकेंगे कि उनका सिर घूम-सा रहा है, यह भी कि कल शाम उन्हें तिरिछ ने काटा था। स्टेट बैंक के कैशियर अग्निहोत्री के अनुसार वह उस समय कैश रजिस्ट्री चेक कर रहा था। उसकी मेज पर लगभग अट्ठाइस हजार रुपयों की गड्डियाँ रखी हुई थीं। उस वक्त ग्यारह से दो-तीन मिनट ऊपर हुए होंगे, तभी पिताजी वहाँ आए। उनके चेहरे पर धूल लगी हुई थी, चेहरा डरावना था और अचानक ही उन्होंने जोर से कुछ कहा था। अग्निहोत्री का कहना था कि मैं अचानक डर गया। अमूमन ऐसे लोग बैंक के इतने भीतर, कैशियर की टेबिल तक नहीं पहुँच पाते। अग्निहोत्री का कहना यह भी था कि अगर वह पिताजी को एकाध मिनट पहले से अपनी ओर आता हुआ देख लेता, तब शायद न डरता। लेकिन हुआ यह कि वह पूरी तरह से कैश रजिस्टर के हिसाब-किताब में डूबा हुआ था, तभी अचानक ही पिताजी ने आवाज निकाली और सिर उठाते ही उन्हें देखकर वह डर गया और चीख पड़ा। उसने घंटी भी बजा दी।

बैंक के चपरासियों, दो चौकीदारों और दूसरे कर्मचारियों के अनुसार अचानक ही कैशियर की चीख और घंटी की आवाज से वे सब लोग चौंक गए और उस तरफ दौड़े, तब तक नेपाली चौकदीर थापा ने पिताजी को दबोच लिया था और मारता हुआ कॉमन रूप की तरफ ले जा रहा था। एक चपरासी रामकिशोर, जिसकी उम्र पैंतालीस के आस-पास थी, ने कहा कि उसने समझा कि कोई शराबी दफ्तर में घुस आया है, या पागल और चूँकि उसकी ड्यूटी बैंक के मुख्य दरवाजे पर थी इसलिए ब्रांच मैनेजर उसे चार्जशीट कर सकता था। लेकिन हुआ यह कि जब पिताजी को मारा जा रहा था, तभी उन्होंने अंग्रेजी में कुछ बोलना शुरू कर दिया। इसी वजह से चपरासियों का शक बढ़ गया। इसी बीच शायद असिस्टेंट ब्रांच मैनेजर मेहता ने यह कह दिया कि इस आदमी

की अच्छी तरह से तलाशी ले लेना तभी बाहर निकलने देना। वैसे चपरासी रामकिशोर का कहना था कि पिताजी का चेहरा अजीब तरह से डरावना हो गया था। उस पर धूल जमा हो गई थी और उल्टी की बास आ रही थी। बैंक के चपरासियों ने पिताजी को ज्यादा मारने-पीटने की बात से इनकार किया, लेकिन बैंक के बाहर, ठीक दरवाजे के पास जो पान की दुकान है, उसमें बैठनेवाले बुन्नू का कहना था कि जब साढ़े ग्यारह बजे के आस-पास पिताजी बैंक से बाहर आए तो उनके कपड़े फटे हुए थे और निचला होंठ कट गया था, जहाँ से खून निकल रहा था। आँखों के नीचे सूजन और कत्थई चकत्ते थे। ऐसे चकत्ते बाद में बैंगनी या नीले पड़ जाते हैं।

इसके बाद, यानी साढ़े ग्यारह बजे से लेकर एक बजे के बीच पिताजी कहाँ-कहाँ गए, इसके बारे में कोई जानकारी नहीं मिलती। हाँ स्टेट बैंक के बाहर पान की दुकान लगानेवाले बुन्नू ने एक बात बताई थी हालाँकि इस बारे में वह पूरी तरह स्पष्ट नहीं था, या हो सकता है कि स्टेट बैंक के कर्मचारियों से डर की वजह से वह साफ-साफ बतलाने से कतरा रहा हो। बुन्नू ने बतलाया था कि स्टेट बैंक से बाहर निकलने पर शायद (वह 'शायद' पर बहुत जोर डाल रहा था) पिताजी ने कहा था कि उनके रुपए और कागजात बैंक के चपरासियों ने छीन लिए हैं। लेकिन बुन्नू का कहना था कि हो सकता है पिताजी ने कोई और बात कही हो, क्योंकि वे ठीक से बोल नहीं पा रहे थे, उनका निचला होंठ काफी कट गया था, मुँह से लार भी बह रही थी और उनका दिमाग सही नहीं था।

मेरा अपना अंदाजा है कि इस समय तक पिताजी पर काढ़े का असर बहुत ज्यादा हो चुका था। हालाँकि पंडित राम औतार इस बात से इनकार करते हैं। उनका कहना था कि धतूरे के बीज तो होली के दिनों में भाँग के साथ भी घोटे जाते हैं, लेकिन कभी ऐसा नहीं होता कि आदमी पूरी तरह से पागल हो जाए। पंडित राम औतार का मानना है कि या तो तिरिछ का जहर उस समय पिताजी के शरीर में चढ़ना शुरू हो गया था और उसका नशा उनके दिमाग तक पहुँचने लगा था। या फिर बहुत संभव है कि जब स्टेट बैंक में पिताजी को थापा चौकीदार और चपरासियों ने मारा-पीटा था तब उनके सिर के पीछे की तरफ कोई चोट लग गई हो और उस धक्के से उनका दिमाग सनक गया हो। लेकिन मुझे लगता है कि उस समय तक पिताजी को थोड़ा-बहुत होश था और वे पूरी कोशिश कर रहे थे कि किसी तरह वे शहर से बाहर निकल जाएँ। शायद रुपए और अदालत के कागजात बैंक में छिन जाने की वजह से उन्होंने सोचा हो कि अब यहाँ रहने का कोई मतलब भी नहीं है। उन्होंने शायद एकाध बार सोचा भी होगा कि वापस स्टेट

बैंक जाकर अपने कागजात तो कम-से-कम माँग लाएँ। फिर ऐसा करने की उनकी हिम्मत नहीं पड़ी होगी। वे डर गए होंगे। उन्हें उनके जीवन में पहली बार इस तरह से मारा गया था, इसलिए वे ठीक से सोच पाने में सफल नहीं हो पा रहे होंगे। उनका शरीर बहुत दुबला था और बचपन से ही उन्हें एपेंडिसाइटिस की शिकायत थी। यह भी हो सकता है कि उस वक्त तक उन पर काढ़े का असर इतना ज्यादा हो गया हो कि वे एक चीज पर देर तक सोच ही नहीं पा रहे हों और दिमाग में हर पल पैदा होनेवाला, छोटे-छोटे बुलबुलों जैसे विचारों या नए-नए झटकों के वश में आकर इधर से उधर चल पड़ते रहे हों। लेकिन मैं यह जानता हूँ, मुझे अच्छी तरह से महसूस होता है कि उनके दिमाग में घर लौट आने और शहर से बाहर निकल जाने की बात-एक स्थाई, बार-बार कहीं अँधेरे से उभरनेवाली, भले ही बहुत क्षीण और बहुत धुँधली बात-जरूर रही होगी।

पिताजी लगभग सवा बजे शहर के पुलिस थाना पहुँचे थे। थाना शहर के बाहरी छोर पर सर्किट हाउस के पास बने विजय स्तंभ के पास है। आश्चर्य यह है कि थाने से बमुश्किल एक किलोमीटर दूर अदालत भी है। अगर पिताजी चाहते तो यहाँ से पैदल ही दस मिनट में अदालत पहुँच सकते थे। समझ में यह नहीं आता कि पिताजी अगर यहाँ तक पहुँचे थे, क्या तब तक उनके दिमाग में अदालत जाने की बात रह भी गई थी? उनके कागजात तो रह नहीं गए थे।

थाने के एस.एच.ओ. राघवेंद्र प्रताप सिंह ने कहा कि उस वक्त एक बजकर पंद्रह मिनट हुए थे। वे घर से लाए गए टिफिन को खोलकर लंच लेने की तैयारी कर रहे थे। आज टिफिन में पराँठों के साथ करेले रखे हुए थे। करेले वे खा नहीं पाते और इसी उलझन में थे कि अब क्या करें। तभी पिताजी वहाँ आए थे। उनके शरीर पर कमीज नहीं थी, पैंट फटी हुई थी। लगता था कि वे कहीं गिरे होंगे या किसी वाहन ने उन्हें टक्कर मारी होगी। थाने में उस वक्त एक ही सिपाही गजाधर प्रसाद शर्मा मौजूद था। सिपाही का कहना था कि उसने सोचा कि शायद कोई भिखमंगा थाने में घुस आया है। उसने आवाज भी दी लेकिन पिताजी तब तक एस.एच.ओ. राघवेंद्र प्रताप सिंह की टेबिल तक पहुँच चुके थे। एस.एच.ओ. ने कहा कि करेलों की वजह से वैसे भी उनका मूड ऑफ था। तेरह साल के विवाहित जीवन के बावजूद पत्नी यह नहीं जान पाई थी कि उन्हें कौन-सी चीजें बिल्कुल नापसंद हैं, इतनी नापसंद कि वे उन चीजों से घृणा करते हैं। उन्होंने जैसे ही निवाला मुँह में रखा, पिताजी बिल्कुल उनके करीब पहुँच गए। पिताजी के चेहरे और कंधों के नीचे उल्टी लगी हुई थी और उसकी बहुत तेज गंध

उठ रही थी। एस.एच.ओ. ने पूछा कि क्या बात है। तो जवाब में पिताजी ने जो कुछ कहा उसे समझना बहुत मुश्किल था। एस.एच.ओ. राघवेंद्र सिंह बाद में पछता रहे थे कि अगर उन्हें मालूम होता कि यह आदमी बकेली ग्राम का प्रधान और भूतपूर्व अध्यापक है तो वे उसे थाने में ही कम-से-कम दो-चार घंटे बिठा लेते। बाहर न जाने देते। लेकिन उस समय उन्हें लगा कि यह कोई पागल है और उन्हें खाते हुए देखकर यहाँ तक घुस आया है इसीलिए उन्होंने सिपाही गजाधर शर्मा को गुस्से में आवाज दी। सिपाही पिताजी को घसीटता हुआ बाहर ले गया। गजाधर शर्मा का कहना था कि उसने पिताजी के साथ कोई मार-पीट नहीं की और उसने देखा था कि जब वे थाने आए थे तब उनका निचला होंठ कटा था। ठुड्डी पर कहीं रगड़ा खाकर गिरने से खरोंच के निशान थे और कुहनियाँ छिली हुई थीं। वे कहीं-न-कहीं गिरे जरूर थे।

यह कोई नहीं जानता कि थाने से निकलकर लगभग डेढ़ घंटे पिताजी कहाँ-कहाँ भटकते रहे। सुबह दस बजकर सात मिनट पर, जब वे शहर आए थे और मिनर्वा टाकीज के पासवाले चौराहे पर ट्रैक्टर से उतरे थे, तब से लेकर अब तक उन्होंने कहीं पानी पिया था या नहीं, इसे जानना मुश्किल है। इसकी सँभावना भी कम ही बनती है। हो सकता है तब तक उनका दिमाग इस काबिल न रह गया हो कि वे प्यास को भी याद रख सकें। लेकिन अगर वे पुलिस थाने तक पहुँचे तो उनके मस्तिष्क में, नशे के बावजूद, कहीं बहुत कमजोर-सा, अँधेरे में डूबा यह खयाल रहा होगा कि वे किसी तरह अपने गाँव जाने का रास्ता वहाँ पूछ लें, या उस ट्रैक्टर का पता पूछें या फिर अपने रुपए और अदालती कागजात छिन जाने की रिपोर्ट वहाँ लिखा दें। यह सोचने के करीब पहुँचना ही बुरी तरह से बेचैन कर डालने वाला है कि उस समय पिताजी सिर्फ तिरिछ के जहर और धतूरे के नशे के खिलाफ ही नहीं लड़ रहे थे, बल्कि हमारे मकान को बचाने की चिंता भी कहीं-न-कहीं उनके नशे की नींद में से बार-बार सिर उठा रही थी। शायद उन्हें अब तक यह लगने लगा हो कि यह सब कुछ जो हो रहा है, सिर्फ एक सपना है, पिताजी इससे जागने और बाहर निकलने की कोशिश भी करते रहे होंगे।

सवा दो बजे के आस-पास पिताजी को शहर के बिल्कुल उत्तरी छोर पर बसी सबसे संपन्न कॉलोनी-इतवारी कॉलोनी में घिसटते हुए देखा गया था। यह कॉलोनी सर्राफा के जौहरियों, पी.डब्ल्यू.डी. के बड़े ठेकेदारों और रिटायर्ड अफसरों की कॉलोनी थी। कुछ समृद्ध पत्रकार-कवि भी वहीं रहते थे। यह कॉलोनी हमेशा शांत और घटनाहीन रहती थी। जिन लोगों ने यहाँ पिताजी को देखा था, उन्होंने बताया कि उस वक्त तक उनके शरीर में सिर्फ एक पट्टेदार जाँघिया बचा था, जिसका नाड़ा शायद टूट

गया था और वे उसे अपने बाएँ हाथ से बार-बार सँभाल रहे थे। जिसने भी उन्हें वहाँ देखा, उसने यही समझा कि कोई पागल है। कुछ ने कहा कि वे बीच-बीच में खड़े होकर जोर-जोर से गालियाँ बकने लगते थे। बाद में, उसी कॉलोनी में रहनेवाले एक रिटायर्ड तहसीलदार सोनी साहब और शहर के सबसे बड़े अखबार के विशेष संवाददाता और कवि सत्येंद्र थपलियाल ने बताया कि उन्होंने पिताजी के बोलने को ठीक से सुना था और दरअसल वे गालियाँ नहीं बक रहे थे बल्कि बार-बार कह रहे थे-''मैं रामस्वारथ प्रसाद, एक्स स्कूल हेड मास्टर...एंड विलेज हेड ऑफ...ग्राम बकेली...!'' कवि पत्रकार थपलियाल साहब ने दुःख जाहिर किया। दरअसल उसी समय वे अमरीकी दूतावास की किसी खास पार्टी में संगीत सुनने दिल्ली जा रहे थे इसलिए जल्दबाजी में वे चले गए। हाँ तहसीलदार सोनी साहब का कहना था कि ''मुझे उस आदमी पर बहुत तरस आया और मैंने लड़कों को डाँटा भी। लेकिन दो-तीन लड़कों ने कहा कि यह आदमी रामरतन सर्राफ की बीवी और साली पर हमला करने वाला था।'' तहसीलदार ने कहा कि ऐसा सुनने के बाद उन्हें भी लगा कि हो सकता है यह कोई बदमाश हो और नाटक कर रहा हो। लड़के उन्हें तंग करने में लगे थे ओर पिताजी बीच-बीच में जोर-जोर से बोलते थे, ''मैं रामस्वारथ प्रसाद...एक्स स्कूल हेडमास्टर...''

अगर हिसाब लगाया जाए तो मिनर्वा टाकीज के पासवाला चौराहा, जहाँ पिताजी ट्रैक्टर से सुबह दस बजकर सात मिनट पर उतरे थे, वहाँ से लेकर देशबंधु मार्ग का स्टेट बैंक फिर विजय स्तंभ के पास का थाना और शहर के बाहरी उत्तरी छोर पर बसी इतवारी कॉलोनी को मिलाकर वे अब तक लगभग तीस-बत्तीस किलोमीटर की दूरी तक भटक चुके थे। ये जगहें ऐसी हैं जो एक ही दिशा में नहीं है। इसका मतलब यह हुआ कि पिताजी की दिमागी हालत यह थी कि उन्हें ठीक-ठीक कुछ सूझ नहीं रहा था और वे अचानक ही, किसी भी तरफ चल पड़ते थे। जहाँ तक सर्राफ की पत्नी और साली पर उनके हमला करने की बात है, जिसे थपलियाल साहब सच मानते हैं, मेरा अपना अनुमान है कि पिताजी उनके पास या तो पानी माँगने गए होंगे या बकेली जानेवाली सड़क के बारे में पूछने। उस एक पल के लिए पिताजी को होश जरूर रहा होगा। लेकिन इस हुलिए के आदमी को अपने इतना करीब देखकर वे औरतें डरकर चीखने लगी होंगी। वैसे, पिताजी की दाहिनी आँख के ऊपर भौंह पर जो चोट लगी थी और जिसका खून रिसकर उनकी आँख पर आने लगा था, वह चोट उनको इतवारी कॉलोनी में ही लगी थी, क्योंकि बाद में लोगों ने बताया कि लड़के उन्हें बीच-बीच में ढेले मार रहे थे।

वह जगह इतवारी कॉलोनी से बहुत दूर नहीं है, जिस जगह पिताजी को सबसे ज्यादा चोटें लगीं। नेशनल रेस्टोरेंट नाम के एक सस्ते से ढाबे के सामने की खाली जगह पर पिताजी घिर गए थे। इतवारी कॉलोनी से लड़कों का जो झुंड उनके पीछे पड़ गया था, उसमें कुछ बड़ी उम्र के लड़के भी शामिल हो गए थे। नेशनल रेस्टोरेंट में काम करनेवाले नौकर सत्ते का कहना था कि पिताजी ने गलती यह की थी कि एक बार उन्होंने गुस्से में आकर भीड़ पर ढेले मारने शुरू कर दिए थे। शायद उन्हीं का एक बड़ा-सा ढेला सात-आठ साल के लड़के विकी अग्रवाल को लग गया था, जिसे बाद में कई टाँके लगे थे। सत्ते का कहना था कि इसके बाद झुंड ज्यादा खतरनाक हो गया था। वे हल्ला मचा रहे थे और चारों तरफ से पिताजी पर पत्थर मार रहे थे। ढाबे के मालिक सरदार सतनाम सिंह ने बताया कि उस वक्त पिताजी के जिस्म पर सिर्फ पट्टेवाली एक चड्डी थी, दुबले शरीर की हड्डियाँ और छाती के सफेद बाल दिख रहे थे। पेट पिचका हुआ था। वे धूल और मिट्टी में लिथड़े हुए थे, सिर के सफेद बाल बिखर गए थे, दाहिनी आँख के ऊपर से और निचले होंठ से खून बह रहा था। सतनाम सिंह ने दु:ख और पछतावे के साथ कहा-'मेरे को क्या मालूम था कि यह आदमी सीधा-सादा, इज्जतदार, साख-रसूख का इंसान है और नसीब के फेर में इसकी ये हालत हो गई है।' वैसे ढाबे में कप-प्लेट धोनेवाले नौकर हरी का कहना था कि बीच-बीच में पिताजी भीड़ को अंड-बंड गालियाँ दे-देकर ढेले मारने लगते थे-'आओ ससुरो ...आओ...एक-एक को मार डालूँगा भोसड़ीवालो ...तुम्हारी माँ की...' लेकिन मुझे संदेह है कि पिताजी ने ऐसी कोई गाली दी होगी। हमने कभी भी उन्हें गाली देते नहीं सुना था।

मैं पूरे विश्वास के साथ कह सकता हूँ, क्योंकि पिताजी को मैं बहुत अच्छी तरह से जानता हूँ कि, इस समय तक, उन्हें कई बार लगा होगा कि उनके साथ जो कुछ हो रहा है, वह वास्तविकता नहीं है, एक सपना है। पिताजी को ये सारी घटनाएँ ऊल-जलूल, ऊटपटाँग और बेमतलब लगी होंगी। वे इस सब पर अविश्वास करने लगे होंगे। उन्होंने सोचा होगा कि यह सब क्या बकवास है? वे तो गाँव से शहर आए ही नहीं हैं, उन्हें किसी तिरिछ ने नहीं काटा है। बल्कि तिरिछ तो होता ही नहीं है, एक मनगढंत और अंधविश्वास है...और धतूरे का काढ़ा पीने की बात तो हास्यास्पद है, वह भी एक तेली के खेत में उसका पौधा खोजकर। उन्होंने सोचा होगा और पाया होगा कि भला उन पर कोई मुकदमा क्यों चलेगा? उन्हें अदालत जाने की क्या जरूरत है?

मैं जानता हूँ कि सुरंग जैसा लंबा, सम्मोहक लेकिन डरावना सपना जैसा मुझे

आता था, पिताजी को भी आता रहा होगा। मेरी और उनकी बहुत-सी बातें बिल्कुल मिलती-जुलती थीं। मुझे लगता है कि इस समय तक पिताजी पूरी तरह से मान चुके होंगे कि यह जो कुछ हो रहा है सब झूठ और अवास्तविक है। इसीलिए वे बार-बार उस सपने से जागने की कोशिश भी करते रहे होंगे। अगर वे बीच-बीच में जोर-जोर से कुछ बोलने लगते थे, या शायद गालियाँ बकने लगते थे, तो इसी कठिन कोशिश में कि वे उस आवाज के सहारे उस दु:स्वप्न से बाहर निकल आएँ। नेशनल रेस्टोरंट के नौकरों और मालिक सरदार सतनाम सिंह ने जैसा बताया था उसके अनुसार उस जगह पर पिताजी को बहुत चोटें आई थीं। उनकी कनपटी, माथे, पीठ और शरीर के दूसरे हिस्सों पर कई ईंटें और ढेले आकर लग गए थे। सड़क का ठेका लेनेवाले ठेकेदार अरोड़ा के बीस-बाइस साल के लड़के संजू ने उन्हें दो-तीन बार लोहे की रॉड से भी मारा था। सत्ते का तो कहना था कि इतनी चोटों से कोई भी आदमी मर सकता था।

मुझे यह सोचकर एक अजीब-सी राहत मिलती है और मेरी फँसती हुई साँसें फिर से ठीक हो जाती हैं कि उस समय पिताजी को कोई दर्द महसूस नहीं होता रहा होगा, क्योंकि वे अच्छी तरह से, पूरी तार्किकता और गहराई के साथ विश्वास करने लग गए होंगे कि यह सब सपना है और जैसे ही वे जागेंगे, सब ठीक हो जाएगा। आँख खुलते ही आँगन बुहारती माँ नजर आ जाएगी या नीचे फर्श पर सोते हुए मैं और छोटी बहन दिख जाएँगे...या गौरइयों का झुंड...हो सकता है कि उन्हें बीच-बीच में अपने इस अजीबो-गरीब सपने पर हँसी भी आई हो।

अगर पिताजी ने गुस्से में लड़कों की तरफ खुद भी ढेले मारने शुरू कर दिए तो इसके पीछे पहली वजह तो यही थी कि उन्हें यह बहुत अच्छी तरह से पता था कि ये ढेले सपने के भीतर जा रहे हैं और इससे किसी को कोई चोट नहीं आएगी। यह भी हो सकता है कि पूरी ताकत से ढेला मार कर वे उत्सुकता और बेचैनी से यह इंतजार करते रहे हों कि जैसे ही वह जाकर किसी लड़के के सिर से टकराएगा, उसका माथा नष्ट होगा और एक ही झटके में इस दु:स्वप्न के टुकड़े-टुकड़े बिखर जाएँगे और चारों ओर से वास्तविक संसार की बेतहाशा रोशनी अंदर आने लगेगी। उनका जोर-जोर से चीखना भी दरअसल गुस्से के कारण नहीं था, वे असल में मुझे, छोटी बहन को, माँ को या किसी को भी पुकार रहे थे कि अगर वे अपने आप इस सपने से जाग पाने में सफल न भी हो पाएँ, तब भी कोई भी आकर उन्हें जगा दे।

एक सबसे बड़ी विडंबना भी इसी बीच हुई। हमारे गाँव की ग्राम पंचायत के सरपंच और पिताजी के बचपन के पुराने दोस्त पंडित कंधई राम तिवारी लगभग साढ़े

तीन बजे नशेनल रेस्टोरेंट के सामने, सड़क से गुजरे थे। वे रिक्शे पर थे। उन्हें अगले चौराहे से बस लेकर गाँव लौटना था। उन्होंने उस ढाबे के सामने इकट्ठी भीड़ को भी देखा और उन्हें यह पता भी चल गया कि वहाँ पर किसी आदमी को मारा जा रहा है। उनकी यह इच्छा भी हुई कि वहाँ जाकर देखें कि आखिर मामला क्या है। उन्होंने रिक्शा रुकवा भी लिया। लेकिन उनके पूछने पर किसी ने कहा कि कोई पाकिस्तानी जासूस पकड़ा गया है जो पानी की टंकी में जहर डालने जा रहा था, उसे ही लोग मार रहे हैं। ठीक इसी समय पंडित कंधई राम को गाँव जानेवाले बस आती हुई दिखी और उन्होंने रिक्शेवाले से अगले चौराहे तक जल्दी-जल्दी रिक्शा बढ़ाने के लिए कहा। गाँव जानेवाली यह आखिरी बस थी। अगर उस बस के आने में तीन-चार मिनट की भी देरी हो जाती तो वे निश्चित ही वहाँ जाकर पिताजी को देखते और उन्हें पहचान लेते। राज्य परिवहन की वह बस हमेशा आधा-पौन घंटा लेट रहा करती थी, लेकिन उस दिन, संयोग से, वह बिल्कुल सही समय पर आ रही थी।

सतनाम सिंह का कहना था कि वह भीड़ नेशनल रेस्टोरेंट के सामने से तब हटी और लोग तितर-बितर हुए जब बड़ी देर तक पिताजी जमीन से उठे ही नहीं। ईंट का एक बड़ा-सा ढेला उनकी कनपटी पर आकर लगा था। उनके मुँह से खून आना शुरू हो गया था। सिर में भी चोटें थीं। सतनाम ने बताया कि जब पिताजी बहुत देर तक नहीं हिले-डुले तो लड़कों के झुंड में से किसी ने कहा कि लगता है यह मर गया। जब भीड़ छँटने के दस-पंद्रह मिनट बाद भी पिताजी नहीं हिले-डुले तो सतनाम सिंह ने सत्ते से कहा था कि वह उनके मुँह में पानी के छींटे मार कर देखे कि वे सिर्पु बेहोश हैं तो हो सकता है कि उठ जाएँ। लेकिन सत्ते पुलिस की वजह से डर रहा था। बाद में सतनाम सिंह ने खुद ही एक बाल्टी पानी उनके ऊपर डाला था। दूर से पानी डालने के कारण जमीन की मिट्टी गीली होकर पिताजी के शरीर से लिथड़ गई थी।

सरदार सतनाम सिंह और सत्ते दोनों का कहना था कि लगभग पाँच बजे तक पिताजी उसी जगह पड़े हुए थे। तब तक पुलिस नहीं आई थी। फिर सतनाम सिंह ने सोचा कि कहीं उसे पंचनामा और गवाही वगैरह में न फँसना पड़ जाए इसलिए उसने ढाबा बंद किर दिया था और डिलाइट टाकीज में 'आन मिलो सजना' फिल्म देखने चला गया था।

उस समय लगभग छह बजे थे जब सिविल लाइंस की सड़क की पटरियों पर एक कतार में बनी मोचियों की दुकानों में से एक मोची गनेशवा की गुमटी में पिताजी ने अपना सिर घुसेड़ा। उस समय तक उनके शरीर पर चड्डी भी नहीं रह गई थी, वे घुटनों

के बल किसी चौपाए की तरह रेंग रहे थे। शरीर पर कालिख और कीचड़ लगी हुई थी और जगह-जगह चोटें थीं।

गनेशवा हमारे गाँव के तालाब के पारवाले टोले का मोची है। उसने बताया कि मैं बहुत डर गया और मास्टर साहब को पहचान ही नहीं पाया। उनका चेहरा डरावना हो गया था और चिन्हाई में नहीं आता था। मैं डर कर गुमटी से बाहर निकल आया और शोर मचाने लगा। दूसरे मोचियों के अलावा वहाँ कुछ और लोग भी इकट्ठा हो गए थे। लोगों ने जब गनेशवा की गुमटी के भीतर जाकर झाँका तो गुमटी के अंदर, उसके सबसे अंतरे-कोने में, टूटे-फूटे जूतों, चमड़ों के टुकड़ों, रबर और चिथड़ों के बीच पिताजी दुबके हुए थे। उनकी साँसें थोड़ी-बहुत चल रही थीं। उन्हें वहाँ से खींच कर, बाहर, पटरी पर निकाला गया। तभी गनेशवा ने उन्हें पहचान लिया। गनेशवा का कहना था कि उसने पिताजी के कान में कुछ आवाजें भी लगाईं लेकिन वे कुछ बोल नहीं पा रहे थे। बहुत देर बाद उन्होंने 'राम स्वारथ प्रसाद...' और 'बकेली' जैसा कुछ कहा था। फिर चुप हो गए थे।

पिताजी की मृत्यु सवा छह बजे के आसपास हुई थी। तारीख थी 17 मई, 1972। चौबीस घंटे पहले लगभग इसी वक्त उन्हें जंगल में तिरिछ ने काटा था। चौबीस घंटे पहले क्या पिताजी इन घटनाओं और इस मृत्यु का अनुमान कर सकते थे?

पिताजी का शव शहर के मुर्दाघर में पुलिस ने रखवा दिया था। पोस्टमार्टम में पता चला था कि उनकी हड्डियों में कई जगह फ्रैक्चर था, दाईं आँख पूरी तरह फूट चुकी थी, कॉलर बोन टूटा हुआ था। उनकी मृत्यु मानसिक सदमे और अधिक रक्तस्राव के कारण हुई थी। रिपोर्ट के अनुसार उनका आमाशय खाली था, पेट में कुछ नहीं था। इसका मतलब यही हुआ कि धतूरे के बीजों का काढ़ा उल्टियों द्वारा पहले ही निकल चुका था।

हालाँकि थानू कहता है कि अब तो यह तय हो गया कि तिरिछ के जहर से कोई नहीं बच सकता। ठीक चौबीस घंटे बाद उसने अपना करिश्मा दिखाया और पिताजी की मृत्यु हुई। पंडित राम औतार भी यही कहते हैं। हो सकता है कि पंडित राम औतार इसलिए ऐसा कहते हों कि वे खुद को विश्वास दिलाना चाहते हों कि धतूरे के काढ़े का पिताजी की मृत्यु से कोई संबंध नहीं था।

मैं सोचता हूँ, अंदाजा लगाने की कोशिश करता हूँ कि शायद अंत में, जब गनेशवा ने अपनी गुमटी के बाहर, पिताजी के कान में आवाज दी होगी तो पिताजी सपने से जाग गए होंगे। उन्होंने मुझे, माँ को और छोटी बहन को देखा होगा-फिर वे दातून लेकर

नदी की तरफ चले गए होंगे। नदी के ठंडे पानी से उन्होंने अपना चेहरा धोया होगा, कुल्ला किया होगा और इस लंबे दुःस्वप्न को वे भूल गए होंगे। उन्होंने अदालत जाने के बारे में सोचा होगा। हम लोगों के मकान की चिंता ने उन्हें परेशान किया होगा।

लेकिन मैं अपने सपने के बारे में बताना चाहता हूँ, जो मुझे अक्सर आता है। वह यों है–कि मैं खेतों की मेंड़, गाँव की पगडंडी से होता हुआ जंगल पहुँच गया हूँ। मैं रक्सा नाला, कीकर के पेड़ को देखता हूँ। वह भूरी चट्टान वहाँ उसी जगह है, जो सारी बारिश नाले के पानी में डूबी रहती है। मैं देखता हूँ कि तिरिछ की लाश उसके ऊपर पड़ी हुई है। मुझे एक बेतहाशा खुशी अपने घेरे में ले लेती है। आखिर वह मारा गया। मैं पत्थर लेकर तिरिछ को कुचलने लगता हूँ, जोर-जोर से उसे मारता हूँ। मेरे पास थानू मिट्टी का तेल और माचिस लिए खड़ा है। तभी, अचानक ही, मैं पाता हूँ कि मैं उस चट्टान पर नहीं हूँ। थानू भी वहाँ नहीं है, वहाँ कोई जंगल नहीं है बल्कि मैं दरअसल शहर में हूँ। मेरे कपड़े बहुत ही मैले, फटे और चिथड़ों जैसे हो गए हैं। मेरे गालों की हड्डियाँ निकली हैं। बाल बिखरे हैं। मुझे प्यास लगी है और मैं बोलने की कोशिश करता हूँ। शायद मैं बकेली, अपने घर जाने का रास्ता पूछना चाहता हूँ और तभी अचानक चारों ओर शोर उठता है...घंटियाँ बजने लगती हैं...हजारों-हजारों घंटियाँ...मैं भागता हूँ।

मैं भागता हूँ...मेरा पूरा शरीर बेदम होने लगता है, फेफड़े फूल जाते हैं। मैं पास-पास कदम रख कर अचानक लंबी-लंबी छलाँगें लगाता हूँ, उड़ने की कोशिश करता हूँ। लेकिन भीड़ लगता है मेरे पास पहुँचने वाली होती है। एक अजीब-सी गर्म और भारी हवा मुझे सुन्न कर देती है। अपनी हत्या की साँसें मुझे छूने लगती हैं...और आखिरकार वह पल आ जाता है, जब मेरे जीवन का अंत होने वाला होता है...

मैं रोता हूँ...भागने की कोशिश करता हूँ। मेरा पूरा शरीर नींद में ही पसीने में डूब जाता है। मैं जोर-जोर से बोल कर जागने की कोशिश करता हूँ...मैं विश्वास करना चाहता हूँ कि यह सब सपना है...और अभी आँख खोलते ही सब ठीक हो जाएगा...मैं सपने के भीतर अपनी आँखें फाड़ कर देखता हूँ...दूर तक...लेकिन वह पल आखिर आ ही जाता है...

माँ बाहर से मुझे देखती है। मेरा माथा सहलाकर वह मुझे रजाई से ढाँप देती है और मैं वहाँ अकेला छोड़ दिया जाता हूँ। अपनी मृत्यु से बचने की कोशिश में जूझता, बेदम होता, रोता, चीखता और भागता।

माँ कहती हैं मुझे अभी भी नींद में बड़बड़ाने और चीखने की आदत है। लेकिन मैं पूछना चाहता हूँ और यही सवाल मुझे हमेशा परेशान करता है कि मुझे आखिरकार अब तिरिछ का सपना क्यों नहीं आता?

उदय प्रकाश

जन्म	:	1 जनवरी, 1952
प्रकाशन	:	सुनो कारीगर, अबूतर-कबूतर, रात में हारमोनियम (कविता संग्रह) दरियायी घोड़ा, तिरिछ, और अंत में प्रार्थना, पॉल गोभरा का स्कूटर, पीली छतरी वाली लड़की, मैंगोसिल, मोहनदास (कहानी संग्रह)
सम्मान	:	भारत भूषण अग्रवाल पुरुस्कार, ओमप्रकाश सम्मान, श्री कांत वर्मा सम्मान, मुक्तिबोध सम्मान, पहल सम्मान, कथाक्रम सम्मान

पैंट

–विष्णु नागर

हालत तो उसकी यह थी कि अगर वह रोज कुएँ में गिरता और निकलता, रोज पहाड़ पर चढ़ता और कूदता, जहर खाता और उसकी जुबान बाहर निकल आती, तो भी उससे कोई कहने–सुनने वाला नहीं था। कोई नहीं पूछता कि तू जीता है कि मरता है।

इतना अकेला था वह, इतनी उदासीन थी दुनिया उसके बारे में पर उसे हमेशा दुनिया की ही लगी रहती। दुनिया ऐसा कहेगी, दुनिया वैसा कहेगी, दुनिया में हूँ, तब तक तो ऐसा नहीं करूँगा, दुनिया में रहना है तो सब करना पड़ता है, दुनिया का चालचलन ही ऐसा है, दुनिया देख कर चलना पड़ता है, आदि। दुनिया का भूत उसके सिर पर ऐसा चढ़ बैठा था कि उतरने का नाम ही नहीं लेता था।

एक बार उसके पास जेब–खर्च से ज्यादा पैसा आ गए। उसने हिम्मत कर ली, एक अच्छी–सी पैंट सिलवाने की। कपड़ा लाया, दर्जी को दे आया। पैंट सिलवा ली, पर पहनी नहीं। दुनिया क्या कहेगी? कहेगी कि इतनी अच्छी पैंट इस बुढ़ापे में! किसे दिखाने के लिए? कहाँ से आया पैसा? वह पैंट किसी को दे भी नहीं पाया क्योंकि कभी किसी को कुछ देने की उसकी हस्ती ही नहीं रही! घर में पैंट देख–देख खुश होता और फिर बक्से में बंद कर रख देता।

बहुत जी कड़ा करके और यह सोचकर कि दुनिया के सवालों का वह क्या जवाब देगा, उसने पैंट पहनने का इरादा बनाया, तो लगा, पैंट तो नई है, पर कमीज पुरानी है। चप्पल का हाल तो बेहद खराब है। शर्ट और चप्पल नई हो तो पैंट पहनने का भी मजा है। कई दिनों तक वह यही सोचता रहा कि तीनों नई चीजों का जुगाड़ कैसे बैठाया

जाए। उसने किसी तरह खाने–पीने का खर्च कम करके पहले नई चप्पल का इंतजाम किया। फिर नई शर्ट के लिए बचत–अभियान शुरू हुआ। लेकिन इस बीच पुरानी चप्पल की हालत इतनी खस्ता हो चुकी थी कि उसे मोची के पास ले जाना भी अपनी हँसी उड़वाना था। इसलिए नई शर्ट आई नहीं और नई चप्पल पहननी पड़ी। लिहाजा सारी योजना का कबाड़ा हो गया।

नई पैंट फिर मुसीबत बन गई। पुरानी पैंटें फटी नहीं थीं और वे सूती कपड़े की थीं, जो पहनने के दूसरे दिन ही पुरानी लगती थीं। इसलिए वे दुनिया की आँखों में खटकती नहीं थी। यह पैंट कुछ कीमती थी और उसके मुकाबले तो इतनी कीमती थी कि महीनों नई लगती। इसलिए दुनिया जवाब माँगती। दुनिया के लोग सीधे–सीधे जवाब माँगे, तब तो वह दे भी दे, मगर टेढ़े–मेढ़े आड़े–तिरछे सवाल किए जाएँ, मुँह से बोला न जाएँ, आँखों से सवाल किए जाएँ तो वह क्या जवाब दे!

इसी उधेड़बुन में पैंट बक्से में पड़ी रहती। यह रोज रात को पैंट निकालता, उसे सहलाता, उसके कपड़े और सिलाई की मन–ही–मन तारीफ करता, कहीं गंदगी न लग जाए इसका खयाल रखता और फिर उसे तह करके, उसकी काल्पनिक धूल झाड़कर उसे सावधानी से बक्से में रख देता।

फिर उसे घर में चोरी का भी डर रहने लगा। वह कल्पना करने लगा कि अगर पैंट की चोरी हो गई तो उसकी क्या हालत होगी। न वह पैंट–चोरी की पुलिस में रिपोर्ट लिखवा पाएगा, न किसी से अपना दुखड़ा रो पाएगा। उसने कई बार यह भी सोचा कि घर से जाते समय उसे एक पर्ची छोड़ जानी चाहिए–चोर के नाम कि–सारा सामान उठा ले जाना, पर भैया पैंट मत ले जाना। मगर फिर उसे ख्याल आता कि जरूरी नहीं कि चोर पढ़ा–लिखा हो, और पढ़ा–लिखा हुआ, तब तो पर्ची पढ़कर पैंट तो जरूर ही चुरा ले जाएगा।

उसने कई–कई बार सामने में चोर को पैंट ले जाते हुए और चोर के सामने खुद को गिड़गिड़ाते हुए पाया। इस तरह कई–कई रातें उसकी नींद खराब हुई। फिर दुबारा नींद नहीं आई। झूठ क्यों कहें, एक बार तो चोर के डर के मारे नींद में उसका पेशाब भी छूट गया।

वह इस पैंट से, जिसके बारे में शायद ही कोई जानता हो, तंग आ गया था। वह न इसे पहन सकता था, न फेंक सकता था। वह इस पैंट से प्यार भी करता था और आजिज भी आ गया था। उसे अपनी इस पैंट के बारे में उतनी ही आशाएँ–आशंकाएँ

होती थीं, जितनी माँ-बाप को अपने बेटे-बेटियों के बारे में होती हैं। जिस तरह कुछ कुँआरी माएँ अपने बच्चे को कूड़ेदान में फेंक देती हैं, उसी तरह उसने भी इस पैंट को फेंकने का इरादा बनाया। मगर बाद में वह इसकी कल्पना से भी डरने लगा। उसकी आँखों के सामने वह सारा दृश्य साकार हो गया, जो पैंट को कूड़ेदान में फेंकने पर उपस्थित होगा। जो पहला आदमी, सुबह-सुबह एकदम नई कोरी पैंट को देखेगा, उसे पहले तो इसे पा लेने की इच्छा होगी, फिर डर लगेगा कि कहीं कोई छुपकर न देख रहा हो। जब वह डर पर विजय पा लेगा तो उसे आशंका होगी कि एकदम नई कोरी पैंट कोई क्यों छोड़ गया है? जरूर टोना-टोटका करके छोड़ा होगा। वह लोगों को बुलाएगा और मोहल्ले में हंगामा खड़ा करवा देगा। इसके बाद अपराधी की खोज होगी। लोग शक करते-करते उसके पास पहुँचेंगे। वह अपना अपराध कबूल कर लेगा। फिर लोग उसकी ऐसी गत बनाएँगे कि आत्महत्या के अलावा कोई चारा नहीं रहेगा।

उसने पाया कि वह इस पैंट से वाकई तंग आ गया है और अब इससे मुक्ति जरूरी है। उसने मोहल्ले से दूर किसी कूड़ेदान या नदी-तालाब में इसे फेंकने का निश्चय किया मगर थोड़ी ही देर में उसने पाया कि एक नई पैंट के साथ ऐसा सुलूक वह नहीं कर सकता। करेगा, तो कई-कई दिन तक यह सोचता रहेगा कि वह पैंट किसके हाथ लगी होगी, कहाँ गई होगी, उसे पहना गया होगा या फाड़कर फेंक दिया गया होगा। पैंट से तब भी पीछा नहीं छूटेगा। किसी को दान कर देना भी उसे दुस्साहस से कम नहीं लगता था।

कई महीने पैंट बक्से में पड़ी रही। उसे निकालकर देखने का साहस भी उसे नहीं हुआ। लेकिन एक दिन न जाने क्या सोचकर उसने पैंट निकाली तो पाया कि उसे कई जगह से कॉक्रोच खा चुके हैं। उसे बहुत सदमा लगा। वह रोया। वह पछताया कि क्यों वह दुनिया से इतना डरा कि उसने पैंट नहीं पहनी। वह जितनी अपनी निन्दा कर सकता था, उसने की। वह जितना दुनिया को कोस सकता था, उसने कोसा। वह जितने कॉक्रोच मार सकता था, उसने मारे।

अंत में, उसने ठंड की रातों में इस पैंट को पहनकर सोने का निर्णय किया। तीन साल उसने इस तरह निकाल दिए। इसकी वजह से रात में उसे दो-तीन बार दिक्कतों का सामना भी करना पड़ा। एक बार उसका पेट खराब था। रात में सोते-सोते अचानक पाखाना लगा। उस हालत में उसे उतारकर पायजमा पहनने का संकट झेलना पड़ा। तब वह घर से बाहर बने पाखाने में जा पाया। एक बार आधी रात को उसके कोई मेहमान आ गए। साँकल बजने पर उसकी नींद खुली। उसने पता किया कि कौन आया है।

आश्वस्त हो जाने पर वह दरवाजे तक गया और लौट आया। पैंट का ख्याल आ गया था। उसने पैंट निकाली, पायजमा पहना, पैंट को बक्से में बंद किया, तब बाहर आया। इस बीच मेहमान काफी हैरान-परेशान हुए। बाद में उससे अजीब-अजीब सवाल किए।

एक और बार की बात है। पड़ोस में 'चोर-चोर' का शोर सुनकर वह हड़बड़ी में बाहर आया। बाहर आकर पैंट का ख्याल आया। वह अंदर भागा। पैंट बदली और बाहर आया। लेकिन तब से उसे शंका होने लगी थी कि किसी न किसी ने तो उसकी यह फटी पैंट जरूर देख ली होगी। वह आदमी जरूर मेरी हँसी उड़ाता होगा। वह जरूर इस ताक में होगा कि मुझे फिर से इस हालत में देख ले। उसे उस पैंट को बर्दाश्त करना भारी लगा। हालाँकि दूसरे ही क्षण उसे ख्याल आया कि तीन ठंडों में काम देने के बावजूद तीन और ठंडे इसमें निकल सकती है।

दरअसल, कॉक्रोच द्वारा पैंट को काट लिए जाने के बाद उसका इस पैंट से मोह और बढ़ गया था। वह कॉक्रोचों को बता देना चाहता था कि उसके खून-पसीने की कमाई की इस तरह तौहीन नहीं की जा सकती। वह इस पैंट में लगा एक-एक पैसा वसूल करके रहेगा। वह भूल नहीं पाएगा इस पैंट को।

यह सोचते-सोचते कभी-कभी तो उसमें इतनी हिम्मत आ जाती कि वह इसी पैंट के साथ सड़क पर निकलने की सोचता। उसे उस हँसी की कल्पना भी नहीं दहलाती, जो इस पैंट के पहनने पर सड़क और दफ्तर में सुनाई देगी। कई बार इस निर्णय को स्थगित करते-करते, कई-कई रातों को इस बारे में सोचते-सोचते, एक दिन उसने पैंट पहनना तय ही कर लिया। वह पैंट पहन कर बाहर निकला। उसने किसी से बात नहीं की। किसी की बात नहीं सुनी। किसी की ओर नहीं देखा। दफ्तर में भी उसने यही किया। उसने आम दिनों की तरह सारा काम किया पर किसी से बोला नहीं। किसी से व्यंग्य, किसी हँसी-मजाक, किसी आग्रह का जवाब नहीं दिया। किसी को अपनी बीड़ी नहीं पिलायी। किसी से माचिस उधार नहीं माँगी। उसने किसी पर क्रोध नहीं किया। किसी पर दया नहीं दिखाई।

उसका यह व्यवहार सबके बीच कौतूहल का विषय बना रहा मगर किसी में हिम्मत नहीं हुई कि उससे दो बातें कर ले।

लेकिन अगले दिन से उसने दूसरी रणनीति अपनाई। अगर कोई इस पैंट को लेकर उसकी हँसी उड़ाएगा, तो वह इसका भरपूर जवाब देगा। गाली देना जरूरी होगा तो

गाली देगा, मारपीट जरूरी हुई तो मारपीट करेगा। और रोज-रोज इसी पैंट को पहनकर दफ्तर जाएगा।

विष्णु नागर

जन्म : जून, 195

पत्रकारिता, नईदुनिया से संबद्ध। एच.टी. मीडिया प्रकाशन की हिन्दी मासिक पत्रिका 'कादम्बिनी' के कार्यकारी सम्पादक रहे। इससे पहले 'हिन्दुस्तान' के विशेष संवाददाता रहे। 'नवभारत टाइम्स' में विशेष संवाददाता सहित विभिन्न पदों पर रहे। द वॉइस ऑफ जर्मनी, कोलोन (जर्मनी) में दो वर्ष तक हिन्दी सेवा के संपादक रहे।

दर-ब-दर

—शशांक

कोलाहल के बीच मैं चुप था। जी हाँ, मुझे बहुत जोरों से लगा कि अपने शहर में होता तो कम से कम सीटीनुमा आवाज तो जरूर निकालता। कुछ कसरत की कोशिश करता और स्टेशन के हर आने जाने वाले व्यक्ति को पहचानने के लिए मुड़-मुड़ कर देखता अपने शहर में तो हर आदमी पहचाना-पहचाना लगता है। मगर यहाँ इस खेल में किसे शामिल करता? तमतमाए चेहरों की हँसी खुशी, दौड़ लगाते हुए बच्चे और गहरे विषाद में लटके हुए सिरों को दूर से बैठकर देखना एक खेल ही नहीं था। उसमें थोड़ा सा डर भी मिला हुआ था। आज पहली बार लग रहा है, किसी सीमेंट की बैंच पर बैठा कोई लड़का मेरे डर को भाँप रहा होगा। शायद अब खेल नहीं होगा सिर्फ डर होगा। और मजबूरन इसी डर से वह खेल रहा होगा।

सूटकेस और होल्डाल घसीट कर एक किनारे पर कर दिया। दुबेजी ने आने को लिखा था तो आएँगे जरूर ही। हो सकता है खोजते हुए आ रहे हों। मंजन कर लेता तो अच्छा था। परंतु इस चक्कर में खो जाऊँगा। पटरियों के उस पार बंबे के नीचे कुछ लोग नहा रहे हैं। शरीर मल-मल कर नहा रहे हैं। और फटे चीकट कपड़ों को फटकार कर पहन रहे हैं। तीन टाँगों के सहारे उचकता हुआ कुत्ता औरत की रोटी सूंघ रहा है। उसकी एक टाँग गाड़ी से कटी होगी और औरत स्टेशन के बाहर कहीं पागल हो गई होगी।

वे दुबेजी चले आ रहे हैं। नीली जींस की पैंट और कोटी पहने हैं। लगभग दौड़ते हुए आते हैं। इतनी भीड़भाड़ में क्या कह रहे हैं, कुछ सुनाई नहीं देता। केवल मुस्कराहट पकड़ पाता हूँ। अरे मालिक! जै राम जी-मैंने दोनों हाथ उठा दिए।

हाय या हाई ऐसा कुछ दुबेजी ने कहा और अपने दोनों हाथ कूल्हे पर धर लिए।

मेरे हाथ मय कोहनियों के झूलते हुए नीचे आ गए। अच्छा चलो। जल्दी चलें। फिर मुझे ऑफिस जाना है। स्कूटर ले लेते हैं। दुबेजी ने एक साँस में कहा और कुली को आवाज देने लगे। उन्होंने मुझे चुपचाप देखकर ही शायद यकायक अपने हाथ मेरे कंधे पर रख दिए फिर मुझे देखा या कहिए कि जायजा लिया और पूछा कि न हो तो चाय पी ली जाए। मैं काफी देर तक चुप रहा। वास्तव में दुबेजी की फर्ती से मैं सुट्ट रह गया और काफी देर तक इस फुर्ती में दुबेजी की पुरानी आदतें ढूँढ रहा था।

देखो यदि इस तरह सुस्तराम रहे तो दिल्ली तुम्हें खा जाएगी समझे मुन्ना। चाय पियोगे न?

ऐसा करते हैं कि घर पर ही लेंगे।

घर कहाँ यार! कमरा कहो। यहां चाय तो मैं बनाता नहीं। खैर चलो वहीं कहीं पी लेंगे।

स्कूटर में बैठकर पहली बार दुबेजी ने घरेलू अंदाज में पूछा–और क्या हाल चाल हैं शहर के?

शहर माने माता पिता भाई बहिन

शहर माने प्रेमिका

शहर माने तालाब पेड़ पुल

शहर माने दोस्त

शहर माने सड़कें

मैं कैसे सारी बातें सूक्तियों में उन्हें बता सकता? कह दिया–शहर की तबियत दुरुस्त है। सूक्तियाँ कभी किसी का भला नहीं कर सकतीं। वे उनकी जिज्ञासाओं पर कील की तरह ठुक गई तो। दुबेजी फिर बतलाने लगे–यह कनॉट सर्कस है। यह पार्लियामेंट स्ट्रीट। यह अशोका होटल। कल से घूमेंगे, मुन्ना, आज तो तुम आराम करना।

मेरा ख्याल है, आज ही उनसे मैं मिल लेता?

वे जान गए कि मैं दिल्ली दर्शन के लिए नहीं आया हूँ। काम पर आया हूँ।

आज ही मिलोगे?

मिल लेते तो अच्छा था।

पहले अपन फोन कर लेंगे।

चला ही जाता तो?

फोन पर बात करते डर लगेगा क्या?

हाँ, डर को निस्संकोच होकर खोला।

तुम्हें किस बात का डर भाई। ठाठ से कहना तुम्हारे दामाद आए हैं।

गाड़ी भेजो फटाफट।

औल सैक्लेटली भेज देंगे तो फिल?

तो सेक्रेटरी को रख लेंगे और गाड़ी भेज देंगे। ठीक?

ठीक!

ठीक?

ठीक!!

दुबेजी की सहायता से मैं विभोर होता रहा। और अब तो मैं यह कहूँगा कि दुबेजी बड़े रायल आदमी हैं। स्टेशन पर उतरते ही मुझे लगा था कि सभी लोग किसी षड्यंत्र के तहत भागदौड़ कर रहे हैं। और इसमें से कोई न कोई अंत में मेरा टेंटुआ दबा देगा। पर अब चैन है। दुबेजी जाने बूझे हैं, कोई डर नहीं।

तुम प्रेम-पत्र ले आए हो ना?

अब जब तक प्रेम-पत्र है मैं मर नहीं सकता। वही तो आया है, उसके पीछे-पीछे मैं दुमछल्ला हूँ।

तुम्हारी अच्छी पहचान है। मुझे तुमसे ईर्ष्या होती है।

अगर आप मेरी जगह होते तो आपकी फट जाती।

अब तो निश्चित ही है कि लग जाओगे।

हाँ, उम्मीद तो है।

तुम आई.ए.एस. में क्यों नहीं बैठते?

दुबेजी, पढ़ाई पूरी किए अभी एक साल हुआ है। फूला फूला फिरा जगत में, कुछ दिन तक। फर्स्ट डिवीजन आई है। क्या बात है। वा भई मैं, वा। पिताजी भी कहते रहे आई.ए.एस. में बैठो। यदि यहीं मेरा अंतिम उद्देश्य होता न दुबेजी तो मैं कम-से-कम अबतक सेल्सटैक्स इंस्पेक्टर तो हो ही गया होता। मैंने दो तीन इंटरव्यूज दिए। नहीं हुआ तब सबको दिव्य ज्ञान प्राप्त हुआ। पिताजी आई.ए.एस. से धीरे-धीरे उतरते हुए 225 की

बेसिक पर आ गए। बाइस साल का लड़का जब तेइसवें में निरा नालायक और मूर्ख साबित हो जाए तो घर में ऐश बंद हो ही जाने चाहिए। सो अंडा और दूध बंद हुआ।

खैर, अब तो नौकरी मिल ही जाएगी। इसके साथ ही कांपीटीशन की तैयारी करना।

दुबेजी बात ऐसी है। नहीं। क्या कारण है कि आप यह नहीं कहते कि मुन्ना नौकरी लग जाएगी तो हॉकी की और अच्छी प्रेक्टिस करना। मन लगा कर लिखना-पढ़ना। अच्छी जिंदगी जीना।

यार मुन्ना, एक बार बड़ी पोस्ट पा जाओगे न तो तुम्हारे बड़े-बड़े मार्क्सवादी मित्र तुम्हारी झंडी उठाएँगे। खैर अभी तुम बच्चे हो मेरे साथ रहोगे तो व्यावहारिक बना दूँगा।

दुबेजी ने स्कूटर एक ओर मुड़वाकर रुकवा दी। हम दोनों ने मिलकर सामान उतारा। दुबेजी ने ड्रायवर को पैसे देते हुए कहा-मुन्ना तुम्हें मैं कांपीटीशन में बैठाकर ही छोड़ूँगा।

इतनी जबरदस्त और गलत आत्मीयता के लिए मैंने, हूँ कहा और सामान ढोने का प्रयत्न किया। दुबेजी के साथ सामान ढोकर दूसरी मंजिल पर आए। बीच सीढ़ियों पर रुककर उन्होंने फुसफुसाकर कहा कि ङ्कसधजी से कहना कि छोटा भाई हूँ। और वैसे भी मेरे भाई की तरह हो। मैंने इस कदर सिर हिलाया मानों चोरी करने जा रहे हों।

दरवाजा खुलने पर एक तगड़ी औरत को मैंने नमस्ते किया। दुबेजी कुछ बोले इससे पहले ही उन्होंने कहा-आपके भाई है? आओ जी आओ।

हम कृतज्ञ होते हुए अंदर आए। बहुत सारे बच्चे थे और कमरे में बू भरी हुई थी। दुबेजी ने अपने कमरे का ताला खोला। सामान ठेल कर अंदर किया। दुबेजी ने दरवाजा बंद कर लिया।

देखो अब तुम्हें यहाँ रहना है। इन्हें मूँ लगाने की जरूरत नहीं है। नहीं तो सारे बच्चे यहाँ आ जाएँगे। दिल्ली के लोग हरामी होते हैं। तुम्हें कब नंगा कर दे मालूम नहीं।

और आपको किसके लिए नियुक्त किया गया है? आप मुझे भर नंगा न करना-मैं हँसा।

उन्होंने गर्व के साथ सूचना दी कि वे कभी दिल्ली के नहीं रहे। उन्होंने कहा कि छह महीने में यहाँ की नस पकड़ी जा सकती है। और एक बार नस पकड़ ली तो फिर लाखों का वारा-न्यारा हो जाए। दुबेजी कुछ और गुप्त सफलता के सूत्रों की जानकारी

देते इसके पहले ही मुझे मुँह धोने की याद आ गई। मैंने जमीन पर होल्डाल बिछा लिया और बैठकर मंजन करने लगा। दो बिस्तरों और एक मेज से कमरा भरापूरा हो गया। एक वार्डरोब है जो दीवार में समाई हुई है। एक रस्सी एक कोने से दूसरे कोने तक तनी हुई है जिस पर कपड़े लटक रहे हैं। मेज के ऊपर दीवाल पर हाथ से बना ग्रीटिंग लगा हुआ है। 'दादा को शुभ-कामनाओं सहित-कुन्नू, राजू, बंटू और विमला।' एक पंक्ति और लिखी गई होगी। जिस पर नीली मोटी लकीर फेर दी गई है। सजावट के नाम पर यही एक चिप्पी है। लेकिन शायद यह सजावट न हो। मेज पर कुछ किताबें हैं। नीचे प्लास्टिक की बाल्टी। बाकी सामान वार्डरोब में होगा। उसमें भी मैं अपने कपड़े रख लूँगा।

निबट लेने के बाद हम नीचे उतर आए। दुबेजी ने कमरे पर ताला लगा दिया था। और ऑफिस जाने की तैयारी में पोर्टफोलियो ले लिया। मुझे कुछ अजीब सा लग रहा था। एक घर में रहकर अपने कमरे को जुदा रखना। नीचे आकर मैंने कहा तो वे बोले दोस्त, यह दिल्ली है। यहाँ चुरकट भावुक की तरह तुम रहे तो जरूर तुम्हारी नैय्या विजय चौक पर डूब जाएगी। अपना मतलब साधो बस। मैं उसे किराया देता हूँ कमरे के लिए। न की भाई-भौजाई बनाने के लिए।

पास में ही होटल थी। लोगों ने हँस-हँसकर उनसे नमस्ते की। तनिक आवाज को रठु बनाकर होटल के मालिक से मेरा परिचय कराया गया। अब यहीं नाश्ता करना है, यही भोजन करना है। दुबेजी ने स्नेह के चलते मालिक को एक बोल मारी और मुझसे कहा कि-मुन्ना यह वैष्णव भोजनालय है। इसलिए लहसुन और प्याज का बंदोबस्त नहीं है। वैष्णव होना फायदेमंद इसलिए है कि प्याज मँहगी है। पर बाहर जो तखत पर अंडे उबाल रहा है। यहाँ ले आएगा। दाल मुफ्त नहीं मिलेगी और सब्जी की तरी सिर्फ एक बार मिलेगी। सारी व्यवस्था समझाने के बाद मठरी और चाय का नाश्ता किया। मुझे घर की याद आने लगी। घर यानी माँ। मठरी यानी माँ।

छूट गया भाई छूट गया

घर आँगन तो छूट गया

छूट गया भाई छूट गया

घर

आँगन

छूट गया

पुराने दिन बहुत खराब होते हैं। कॉलेज के दिनों के जुलूस, बंद मुट्ठियाँ, नारे, सन-सनाहट, गुस्सा...पानी की तरह गदबदाता-मगर जुलूस रोक लेता हूँ। मक्कार आदमी की तरह हँसता हूँ क्योंकि दुबेजी एक नौकर से धौल-धप्प कर रहे हैं। दस या बारह के करीब का लड़का। मोटा हँसमुख।

मुन्ना अपने को ये खाता खिलाता है। विक्रम है। साला बदमाश है। पर काम अच्छा करता है।

मैंने उससे कहा-विक्रम अब मैं भी यहां खाया करूंगा।

ठीक है साब, अपनी तो यही नौकरी है। उसने अदाकारी में सिर झुकाया और पूछा, समोसे चलेंगे?

दुबेजी ने घड़ी देखी। कहा, नहीं चाहिए। फिर मेरी तरफ होकर बोले, चलो उठो मुझे जाना है। उन्होंने मुझे चाबी दे दी। बोले शाम को जल्दी आ जाऊँगा। आज तो तुम कमरे पर आराम करो। कल तुम्हारे साथ चले चलूँगा। फ्रैंचलीव हो जाएगी। वे पोर्टफोलियों झुलाते हुए बस स्टॉप की ओर चलने लगे। मैं भी पीछे-पीछे चलने लगा तो उन्होंने मना कर दिया-जाओ मुन्ना, जाके आराम करो। फिर रूककर बोले तुम्हें मालूम है मुन्ना, साले जो दो-दो हजार पाते हैं, वो भी धक्का खाते खड़े रहते हैं। आप मालूम नहीं कर सकते कि कमाते कितना है। अच्छा तुम जाओ।

मैं समझ नहीं पाया कि आखिरी बात के लिए वे रूक क्यों गए थे। आज्ञाकारी की तरह मैं कमरे पर लौट आया। दूसरे कमरे में बच्चे हल्ला कर रहे हैं। माँ खीज रही है। मैं दरवाजा बंद किए बैठा हूँ। ये कमरा। सिर्फ दुबेजी का कमरा। कितना अजीब है। छीना-झपटी और रोना गाना। होल्डाल से डब्बा निकाल कर गाजर की बर्फी निकाल लेता हूँ। दरवाजा खोलकर कमरे से बाहर आता हूँ। बच्चों ने तो सारा सामान अस्त-व्यस्त कर दिया है। वे पाँच हैं। वे सब चुप होकर मुझे देखने लगते हैं। मैं बर्फी उन्हें दे देता हूँ। वै हैरान होकर मुझे देखने लगते हैं। दिल्ली के बच्चे। दुबेजी, दिल्ली के बच्चे। उनकी माँ सिर से दुपट्टा सरका कर कर मुँह से लगा लेती है। शायद हँस रही है कहती है-ये ऐसे नहीं मानेंगे। अब तो और रोएँगे। गाजर की मिठाई खाई है कभी तुम लोगों ने, अब चुप होना।

चुप तो हैं-मैंने कहा।

अब हम बहुत कुछ कहते। मसलन

आप इन्हें स्कूल क्यों नहीं भेज देती?

अरेऽऽ कहाँऽऽ

कम से कम बड़े को?

अगले साल देखेंगे।

सिंघ साब जल्दी निकल जाते हैं।

एक जगह और थोड़ा काम करते हैं।

जमाना बड़ा मँहगा है।

हं जी।

तीन में से एक दुबेजी को दे दिया तो घर भी छोटा होगा?

हाँऽऽ

चलो ये तो है कुछ पैसे आ जाते हैं।

हं जी।

आप यहीं की हैं?

नहीं जी।

छुट्टियों में गाँव जाती होंगी?

अरेऽऽ कहाँऽऽ

मँहगाई बहुत है।

हाँऽऽ

पूरा नहीं पड़ता।

हाँ।

हाँ।

हाँ।

इसी तरह से कुछ बातचीत होती। इसके पहले ही मैं कमरे में आ गया।

आदमी जब अकेला होता है इस पर भी अकेला नहीं होता। अपने आपसे लड़ता रहता है। कुछ सुझाता है। हँसता है। और कभी-कभी लड़ते-लड़ते उक्ताहट होती है। संशय या हार के दौरान। कभी लड़ते-लड़ते आयतन कम हो जाता है। किस चीज का।

मुझे मालूम नहीं। परंतु कोई चीज सिकुड़ जाती है, यह तय है। इसको मैं कह देता हूँ कि कुछ लुप्प् हो गया। शायद आप कुछ और कहते हों। कुछ भी कहें क्या फर्क पड़ता है।

बहुत बार, शुरू में ऐसा हुआ कि इसी लड़ाई के कारण मैं अपने को दूसरी से अलग कर लेता था। शानदार लड़ाई जो मेरे अंदर चल रही है वह दूसरों में कहा! बाद में, अनेक लत भंजन के बाद यह महसूस हुआ कि अकेला वीर मैं ही नहीं। कोरस में कई वीर हैं। अब आप यह कहिए कि ये तो लड़ाई का वो हिस्सा है जो महत्वाकांक्षा के निकट आता है।

बहुत ठीक, बहुत ठीक। यह निहायत खुशी की बात है कि लड़ाई के उस हिस्से को हम, कम-अज-कम पहचान तो रहे जो अंदरूनी मामला है। किन्तु ये सिकुड़न है न वो तनाव (कैसा वाहियात शब्द है) पैदा कर देती है जो लड़ाई के दूसरे हिस्से की भी रंगाई करता है।

मैं उक्ता गया।

सारे कमरे की चीजें करीने से लगा दीं। और फिर बिस्तर पर लेट गया। तकिए में से लिफाफा निकाला। श्रीमती का पत्र है-

अपना बच्चा है। भला है। अपने यहाँ लगा सको तो इस पर दया होगी। सब ठीक है।

श्रम की कदर की जाती हो तो बाईस वर्ष थोड़े नहीं होते।

इसके बाद दया?

लुप्प्

लुप्प्

लुप्प् लुप्प्

लुप्प्

मुझे अचानक महसूस हुआ मैं दिल्ली में हूँ। मुझे लाल किला देखना चाहिए। मुझे कुतुब देखना चाहिए।

कैबरे

जू

प्रधानमंत्री

अशोका, ओबेराय

कनॉट प्लेस

नहीं। कुछ भी नहीं। मैं यहाँ सिर्फ नौकरी करने आया हूँ। मेरे शहर में भी बहुत सी चीजें है। जिन्हें देखकर मैं खुश होता था। छोटी-छोटी टेकरियाँ, गत्ता मिल का धुआँ।

पिछले साल से फिर कहीं नहीं निकला कभी कभार कोई मिल जाता तो कहता- कहो कुछ जमा?

नहीं

दूसरा, कहीं कुछ जमा?

यार, पी.एचडी. कर रहा हूँ।

तीसरा, कहीं कुछ जमा?

यार, सोचता हूँ फाँरन निकल जाऊँ।

चौथा मिले इससे पहले मैं घर में कैद रहने लगा। निर्वासन। घर का निर्वासन। दिल्ली का निर्वासन। समय का जिंदगी से निर्वासन। मैं तैयार होता हूँ। हजामत बनाकर धुले कपड़े पहनता हूँ। श्रीमती का पत्र जेब में रख लेता हूँ पत्र को निकाल कर चोर जेब में रख लेता हूँ।

लुप्प् लुप्प्

बस नं. 15

अब

अब नं. 11

आप सीधे चले जाइए। फिर दाएँ फिर दाएँ। लाल भवन। लिफ्ट पकड़िए और ऊपर छठी मंजिल।

मैं आ गया हूँ।

कार्यालय में घुसता चला जाता हूँ। सिर झुकाए लोग कागजों से जूझ रहे हैं। मैं किसी से पूछता हूँ ता पूछने के पहले ही सिर हिला देता है। फिर कोई उँगली की नोक पर बैठाकर एक चैंबर में लुढ़का देता है। हम उम्र चुस्त नौजवान से पूछा रहा हूँ। चोर

जेब में मेरा हाथ थरथरा रहा है। वह कहता है मैनेजर साब अभी नहीं है। पाँच दिन बाद आएँगे। फिर आइएगा।

पाँच दिन और? पहले चिंता फिर खुशी। परीक्षा भवन से बाहर निकल जाने जैसी खुशी। रास्ते में पूछते-पूछते बस से लौट आया। भोजन करके कमरे पर आ गया। शाम तो हो रही है। अब दुबेजी को आ जाना चाहिए। वोट क्ल पर बहुत बड़ा लाल सूरज पत्थरों के भवन के पीछे था। पानी पर भवन, रंग और पूरी भव्यता हिलोर ले रही थी। मैंने तय किया कि नौकरी लगने पर सब कुछ देखूँगा। सब कुछ। नौकरी होने पर सब कुछ आसान हो जाता है क्या?

चार पाँच दिन।

शामें ही ऐसी है, जबकि लगता है कि दिल्ली में हूँ। नए शहर में हूँ। वरना सुबह होटल, लेटना दोपहर फिर शाम। कुछ किताबें साथ लाया था। परंतु वे वैसी की वैसी धरी रही। क्या पढ़ूँ कुछ समझ नहीं आता। जो भी कुछ पढ़ लो किंतु यह निश्चित है कि काम नहीं आएगा। वे सब मूर्धन्य सारी पढ़ाई पर पानी फेर देंगे। फ्रायड की औरतें, पावलोव के कुत्ते, कोह के बंदर, बड़बड़ाहट में हँसता गाँधी। सब बेमानी हो गए हैं। अब जो है वह श्रीमंत का पत्र और एक नई दुनिया। या शायद दुनिया जिसमें पहली बार धँस रहा हूँ।

दुबेजी थके हारे शाम को लौटते हैं। पूछते हैं-कुछ पढ़ा?

मैं कहता हूँ, नहीं, और हँसता हूँ।

दिन भर पड़े-पड़े क्या करते हो?

सोता हूँ।

कहानियाँ ही पढ़ा करो।

श्रीमती का पत्र पाँच छे दफे पढ़ लेता हूँ।

दुबेजी कुछ नहीं कहते। नए कपड़े पहन कर तैयार होते हैं। योग जैसी दो चार चीजें निकालते हैं। फिर आइने में तरह-तरह से चेहरा देखते हैं। गाल फुलाकर। पिचकाकर। आँख के पपोटै खींचकर। दाँत निकालकर आईना देखते हुए मुझसे पूछते हैं-मुन्ना मेरी उम्र क्या लगती होगी?

मैं झूठ बोलता हूँ-3

नहीं यार! फिर से देखो। अपना चेहरा मेरे सामने कर देते हैं।

बिल्कुल 3।

वे उमग जाते हैं-कितना मेंटेन करके रखा है मैंने। अब तो खैर सेहत थोड़ी गिर गई नहीं तो कोई भी 17-28 से कम समझता।

हाँ। मैं कहूँगा ही।

यार धक्कम धक्के में मर गए। एक के बाद एक चार नौकरी। इधर से उधर। सैटिल ही नहीं हो पाए।

सैटिल यानी शादी?

शादी भी। क्यों हमारी इच्छा नहीं हो सकती क्या?

तो क्या? शादी कर लीजिए। भाभी को घर छोड़ आना।

मैं ही खुद 4 साल से घर नहीं गया।

4 साल!

हाँ।

आपको याद नहीं आती?

नहीं। कुछ रूपया जुड़े तब घर जाएँ।

इसके बिना नहीं?।

जाना कोई मतलब नहीं रखता। न मेरे लिए न उनके लिए।

ऐसा नहीं है।

तुम अभी बच्चे हो मुन्ना। धीरे-धीरे व्यावहारिक बनोगे।

आप अपनी उम्र का फायदा उठा लेते हैं। मैं एकदम बच्चा नहीं हूँ। सचमुच आपको याद नहीं आती?

धीरे-धीरे भूल जाता हूँ। अच्छा उठो चलो।

हर बार वही कनॉट प्लेस!

पिछली बार जब मैं पेरिस में था तब मेपिल की पत्तियाँ इसी तरह सड़क किनारे छा जाती थीं। मुझे पेरिस की बेहद याद आ रही है!

मुन्ना मुझे न्यूयार्क की!

अच्छा चलो कोई बात नहीं। हम मिलकर पेरिस चलेंगे।

नहीं न्यूयार्क।

एग्री।

बहुत चमकीली रोशनियाँ। बहुत अमीर हँसियाँ। बहुत कोमल सरसराहटें। दुबेजी दो साफ्टी खरीदते हैं।

वे कहते हैं–मुन्ना जब मैं बिल्कुल अकेला होता हूँ। तो एक साफ्टी खरीद लेता हूँ। और बीच भीड़ में खड़ा खाता हूँ। टकराते हुए लोगों से मन बहल जाता है।

अपने शहर की तरह यहाँ भी अपने मुहल्ले होंगे। वे सभी क्या इसी तरह से साफ्टी खाएँगे?

दुबेजी बोलते नहीं। हम पार्क के चारों तरफ घूमते हैं। रीगल में पोस्टर देखते हैं। आती-जाती लड़कियों के कसे लिहोर लेते उरोज, मुड़-मुड़ कर देखते हें। इतने में लगता है रात हो रही है। दुबेजी हाथ पैर दुखने का बहाना करते हैं, फिर व्हिस्की खरीदते हैं। पार्क के कोने में जाकर गटकते हैं और कहते हैं। चायघर में बैठेंगे।

चायघर में बैठते ही दो-तीन दुआ सलाम वाले मित्र करीब आ जाते हैं। दुबेजी जोर-जोर से बतलाते है कि वे 'फलां हाऊस' से पार्टी लेकर आ रहे हैं। स्कॉच और तंदूरी मुर्गा। फिर काफी ऊँची-ऊँची बातें। थकने पर उठते हैं। आवाजाही कम हो गई है। हम बस अड्डे की ओर जाते हैं। ये कोई चीज गुनगुना रहे हैं। यकायक मुझसे पूछते हैं–और शहर के क्या हालचाल है?

शहर माने...

शहर माने...

शहर माने....

कोई पाठ हो इसके पहले ही बोलता हूँ–आप ही सुनाइए!

दुबेजी एक किस्सा चुनते हैं। प्रेमिका के बारे में। हम रुक कर एक छोटी-सी होटल में भोजन करते हैं। दुबेजी का किस्सा जारी है। वे सुबकने लगते हैं और उन्हें बहुत सी बातें याद आती हैं। काश, मैं कोई सिलसिलेवार जिंदगी जीता। अब नहीं है कुछ नहीं है। मेरा कोई नहीं है। न आगे न पीछे। मैं किसी को भी मार डालूँगा। जेल चला जाऊँगा। मेहनत करने पर दो रोटी वहाँ भी मिल जाएगी।

कमीज से नाक पोंछकर वे उठते हैं। मैं सरदारजी को पैसा देता हूँ।

वे दुबेजी को विनोदी ढंग से देखकर हँसते हैं।

कमरे पर आते ही वे बिस्तर पर लेट जाते हैं। फिर नाक बजने लगती है। मैं होल्डाल पर पसर जाता हूँ। बिजली बंद कर देता हूँ।

दहशत

एक साफ सुथरा अंत

बस इतना ही होगा?

नींद आती नहीं...

मैंने चिट पहुंचा दी। केयरऑव श्रीमंता। चेंबर के अंदर गहमागहमी है। जो चिट ले गई थीं, उन्होंनें आकर कहा कि मीटिंग चल रही है। यहीं बैठिए। सोफे पर मैं बैठा रहा और डरता रहा। वे टाइपराइटर खटखटा रही थीं। मालूम नहीं क्यों सेक्रेटरी के नाम से हेलन की छवि याद आती है (स्त्री हेलन मुझे माफ करें)। मगर इस शालीन चेहरे को देखकर अच्छा लगता है। अपना डर, कनखियों से देखकर कम कर रहा हूँ।

अचानक दरवाजा भड़भड़ा कर खुलता है। एक सज्जन विलाप करते हुए दोनों कमरों के बीचोंबीच पसर गए हैं। वे अत्यंत करूणा के साथ रो रहे हैं। गले की टाई ढीली हो गई है। कुछ लोग अंदर है। कुछ लोग बाहर से जमा होते जा रहे हैं। मैं भी हड़बड़ाहट में खड़ा हो गया हूँ। सब जस के तस खड़े हैं। वे रो रहे हैं–मुझे मैनेजर साब ने मारा। और इसके बाद ही कहते हैं–मेरी नौकरी चली जाएगी। वे जोरों से रोते हैं। बार-बार यही शब्द। मैं समझ नहीं पाता वे सम्मान के लिए रो रहे हैं या नौकरी के लिए।

लुप्प् लुप्प्

लुप्प्

सब पत्थर की तरह जड़ हैं। अंत में मैनेजर कहते हैं–इसे पानी पिलाओ और आप लोग अपना-अपना काम करिए।

लंबी-चौड़ी मेज के पीछे मैनेजर ने हाथ हिलाकर आदेश दिया। कर्मचारीगण घिसटते हुए कुर्सियों की तरफ चले जाते हैं। दो व्यक्ति उन्हें उठाकर चल दिए हैं। वे लिफ्ट से नीचे उतर जाएँगे। दस मिनिट में सुनसान हो गया।

सायं सायं लुप्प् लुप्प्

जाइए-सेक्रेटरी ने कहा।

मैं चोर जेब से पत्र निकाल लेता हूँ। उन्होंने पत्र पढ़ा और स्नेह से मुझे देखा।

पूछा—घर में सब ठीक है उनके?

जी।

उनके रिश्ते में हो?

जी नहीं।

फिर?

घरेलू पहचान है।

ठीक है। उन्होंने एक फार्म निकाला और लिख दिया, जिसका मतलब यह कि ले लिया जाए।

मैं बाहर आकर फार्म भरने लगा। उन्होंने यह भी नहीं पूछा, मेरी योग्यता क्या है? मेरी रुचि किसमें है?

लिखते हुए ऐसा लगा मानों मुर्दा अंगों का प्रदर्शन कर रहा हूँ।

रुचि और विशेष योग्यता के खाने में एक लंबी लकीर खींच दी।

कंपनी की शर्तों के नीचे, जो मेरी ओर से छपी थी, उसके नीचे हस्ताक्षर घसीटे। लुप्प्-लुप्प्। फार्म जमा किया। कल से यहाँ आना है। बाहर आया तो देखा, वह अपना भारी चेहरा लिए, बाँहों में बैग दबाए प्रतीक्षा कर रहा है। टाई यथास्थान है। मैं उससे नजरें बचाता निकल गया। (हालाँकि मुझे जानता थोड़ी)।

कोई एक निर्धारित कुर्सी। फाइलें। पानी, चाय, लंच। घंटे, दिन, महीने।

लुप्प् लुप्प्

धड़ाम् ऊ ऊं हा हा

मारा मारा मारा

नौकरी नौकरी नौकरी प्रतीक्षा

लुप्प् लुप्प्

दुबेजी हँसते हैं। दुबेजी रायल आदमी हैं। दुबेजी कहते हैं, व्यावहारिक हैं। दुबेजी सुबह हँसते हैं, रात को रोते हैं। दुबेजी कहते हैं, अच्छा अब छोड़ो। चलो कनॉट तक हो आएँ। मैं मना करता हूँ। मुझे कनॉट से दहशत होती है। वे कंइयाँ में लेने लगते हैं। चलो चलो। यू आर अ यंग चैप। वे समझते हैं मैं थक गया हूँ।

हम वही सड़कें पार करते हैं। उसी घास को रौंदते हैं। उसी मार्के की शराब वे पीते हैं।

लौटते है तो कार्यक्रम बनता है एम.पी. कैंटीन में खाया जाए। बस बदल कर जाते हैं।

कैंटीन में साफ सुथरे कपड़े पहने विक्रम स्वागत करता है।

अबे तू यहाँ?

हौ।

कैसे?

वो साला समझता है कि चौबीसों घंटों के लिए खरीद लिया। अपने शौक के लिए कुछ करो तो चिढ़ जाता है।

दारू कब से पीने लगा।

दारू नहीं साब कपड़े, सिनेमा।

अच्छा अच्छा

साब मेहनत करेंगे तो अपने लिए ना।

अच्छा खाना लाओ।

दुबेजी बतला रहे हैं, जब नौजवान थे तब एक लड़के की कितनी पिटाई की थी। वैसे अब भी किसी को पछाड़ सकते हैं।

भोजन करते हुए मैंने कहा—मैं दिल्ली छोड़ना चाहता हूँ। हाँ मेरे मेरे कानों ने भी सुना।

घूर कर उन्होंने मुझे देखा, फिर कहा—तुम्हारी फैमिली 'बै' ग्राउंड है। कर सकते हो। अरे मेरे पास ज्यादाद होती न तो मैं जरूर आई.ए.एस. में आ जाता। वे रुआंसे हो गए। उन्होंने मुझसे कहा—तुम्हें दिल्ली से कतई नहीं डरना चाहिए। यहाँ तो बस छह महीने....

दिल्ली से मैं डरा नहीं हूँ। शहर किसी को डराता नहीं है। मैंने फिर कहा—मैं दिल्ली छोड़ दूँगा।

शायद, उन्होंने सुना नहीं।

वे ग्लास में ही हाथ धोकर कमीज से पोंछने में व्यस्त थे।

शशांक

जन्म : 18 अक्टूबर, 1953

प्रकाशन : उन्नीस साल का लड़का, कोसा फल, शामिल बाजा, पर्व तथा अन्य कहानियाँ, दस प्रतिनिधि कहानियाँ, जैसे हमलोग, स्ट्रीटप्ले हमारा (कहानी संग्रह), लीजिए (डायरी) शीघ्र प्रकाश्य

चिट्ठी

—अखिलेश

कुटिया पर मुझे साढ़े सात बजे तक पहुँच जाना था और सात बज गए थे। एक तो मेरी जेब में रिक्शे-भर के लिए मुद्रा नहीं थी, दूसरे आज इस जाड़े की पहली बारिश हुई थी और इस समय रात के सात बजे तेज हवा थी। जाड़े में ठंडी के अनुपात से हमारा शरीर सिकुड़ जाता है और चाल धीमी हो जाती है। तो धीमी गति से कुटिया पर साढ़े सात बजे कैसे पहुँचा जा सकता था।

मैंने मफलर से कानों के साथ-साथ समूचे सिर को ढक लिया। गर्दन पर लाकर दोनों किनारों को गाँठ लगाई। अब मैं अपनी समझ से सर्दी से महफूज कुटिया तक पहुँच सकता था। मफलर के भीतर से मेरी आँखें और नाक झलक रही होंगी।

कुटिया में आज हम दोस्तों का सामूहिक विदाई समारोह था। कहने को तो, हम बड़े दिन की छुट्टियों में घर जा रहे थे। पर इस बार का जाना साधारण प्रस्थान नहीं था। इस बार हमारे गमन में उत्साह नहीं मजबूरी थी। घरों से मनीआर्डर आने की अवधि बढ़ती जा रही थी और हम किसी भी कंप्टीशन में उत्तीर्ण नहीं हो रहे थे। हमने कुछ अखबारों में दफ्तरों और रेडियो स्टेशन में चक्कर मारे। पहली बात तो वहाँ काम का टोटा था। गर काम था, तो क्षणजीवी किस्म का। उसमें भी श्रम ज्यादा और धन कम का सिद्धांत सर्वमान्य था।

सबसे पहले रघुराज ने घोषणा की, 'मैं घर चला जाऊंगा। इलाहाबाद में मेरा पेट भी नहीं भर पाता है।'

कृष्णमणि त्रिपाठी ने गंभीरता का नाटक करते हुए कहा, 'सब्र करो और ईश्वर पर

भरोसा रखो। ऊपरवाला जिसका मुँह चीरता है, उसे रोटी भी देता है।'

हम हँस पड़े। कृष्णमणि की यह पुरानी आदत थी। वह नास्तिक था और ईश्वर की बात करके वह ईश्वर का मजाक उड़ाता था। उसका चेहरा मुलायम था और हाथों पर बड़े-बड़े घने बाल थे।

यह प्रारम्भ था। बाद में एक दिन हुआ यह कि फैसला हो गया, हम अपने-अपने घरों को चले जाएंगे।

विनोद ने कहा था, हम इस तरह नहीं जाएंगे। हम एक दिन जाएंगे और जाने के एक दिन पहले मेरे कमरे पर बैठक होगी और उसमें मैं शराब सर्व करूंगा।

विनोद ने अपने कमरे का नाम 'कुटिया' रखा था। मैं विनोद के कमरे पर जा रहा था। कुटिया जा रहा था। जहाँ पर मेरे बाकी दोस्त मिलेंगे। वे भी कल मेरी तरह इस शहर को छोड़ देंगे।

आगे की कहानी संक्षिप्त, सुखहीन और मंथर है, इसलिए मैं थोड़ा पहले की कहानी बताना चाहूँगा। उसमें उन्मुक्त विस्तार, प्रसन्नता और गति है। तो आखिर चीजें इतनी उलट-पुलट क्यों हो गई, यह रहस्य मैं इस उन्मुक्त, प्रसन्नता और गति से भरे हिस्से के बाद, यानी अभी-अभी जहाँ पर कहानी ठहरी थी, उसके बाद के अंश में खोलूँगा...

विनोद से मेरी पहली मुलाकात एक गोष्ठी में हुई थी। उसमें उसने कविताएँ पढ़ीं, जिनकी मैंने जमकर धुनाई की। सचमुच उस गोष्ठी में उसकी कविताएँ रुई थीं और मैं धुनिया। बस उस गोष्ठी के बाद विनोद मेरा दोस्त बन गया। हमारी गाढ़ी छनने लगी। हमारी जो कुछ लोगों की मंडली थी, उसमें सिफारिश करके मैंने उसका दाखिला करा दिया। उधर उसका दाखिला हुआ था और इधर मेरा मकान-मालिक सात महीनों का बकाया किराया माँगने में हरामीपन की हद तक उतर आया। एक बार मैंने मजाक में मामला रफा-दफा करने की गरज से कहा, 'नौ महीने हो जाने दीजिए। सात महीने में जच्चा-बच्चा दोनों को खतरा रहता है।' सुनकर मकान-मालिक ने पिच्च से थूक दिया। पान की पीक ने मेरी वाक्पटुता की रेड़ मार दी थी।

आखिरकार मैंने पाया कि इस मामले में सात महीने का मुक्त निवास भी उपलब्धि है, मंडली में कमरा तलाश करने की बात चलाई। अगले दिन सभी कमरे की खोज में सक्रिय हो गए। नवागंतुक विनोद भी इस काम में जोत दिया गया था।

कमरे के मामले में मकान-मालिक सिद्धांतवादी होते हैं। उन्होंने कुछ सिद्धांत बना

रखे थे, जैसे शादीशुदा लोगों को ही किराएदार बनाएंगे। नौकरीवालों को वरीयता देंगे। नौकरी स्थानांतरणवाली हो। कुछ लोग गोश्त-मछली खाने पर पाबंदी लगाते, तो कुछ रात में देर से आने पर। वगैरह...वगैरह...!

मैं इन सभी मानदंडों पर अयोग्य था फिर भी छल-प्रपंच कर कमरा प्राप्त ही कर लेता। दरअसल हम भी कोई ऐरे-गैरे नहीं थे। मेरा और मेरी मंडली का भी एक सिद्धांत था कमरे को लेकर। कमरा उसी मकान में लिया जाएगा जिसमें और जिसके आसपास नैसर्गिक सौंदर्य हो, यानी सुंदरियाँ हों। इस बात की जानकारी हेतु हमारे पास उपाय था। हम पान और चाय की दुकानों पर गौर करते, जहाँ मुस्टंडों का जमावड़ा होता, उसके आसपास कमरा पाने के लिए जद्दोजहद करते। कमरा न मिले यह दीगर बात है किंतु हमारे प्रयोग की प्रामाणिकता कभी भी संदेहवती नहीं हो पाई थी। वाकई वहाँ सुंदरियाँ होतीं। चाय-पान की दुकानों के अलावा एक और दिशासूचक था हमारे पास पड़ताल का। हम मकान के छज्जों और छतों पर दृष्टिपात करते। यदि शलवार, कुर्ते, दुपट्टे या अंतरंग वस्त्र लटकते होते, तो हम वहाँ बातचीत करना मुनासिब समझते।

विनोद इस प्रसंग में कुछ ज्यादा ही मुहहर निकाला। नैसर्गिक सौंदर्य या नैसर्गिक सौंदर्य के वस्त्र देखता तो पहुँच जाता और पूछता, 'मकान खाली है क्या?' 'नहीं' सुनने के बाद वह प्रश्न करने लगता कि बताया जाए आसपास में कोई मकान खाली है? खैर, काफी छानबीन के बाद एक कमरा मिला। बातचीत के पहले हमने छज्जे पर कुंवारे कपड़े देखे और छत पर तीन नैसर्गिक सौंदर्य।

मकान-मालिक को तुरंत एडवांस दिया और पहली तारीख से रहने की बात पक्की कर ली। जब हम कमरे में आए तो यह जिंदगी का बहुत बड़ा घोटाला साबित हुआ था। मंडली के प्रत्येक सदस्य का चेहरा गमगीन हो गया था। वे तीनों सौंदर्य विभूतियाँ रिश्तेदार थीं जो मंडली से बेवफाई करके चली गई थीं रघुराज ने कहा, 'सालियों के शलवार, कुर्ते और दुपट्टे अब कहीं और टंगते होंगे और युवा पीढ़ी को दिशाभ्रमित करते होंगे।' प्रदीप ने दाढ़ी पर हाथ फेरते हुए कहा, 'सब माया है।' और कमरे में कोरस शुरू हो गया :-

माया महा ठगिनि हम जानी।
तिरगुन फाँस लिए कर डोलें
बोले मधुरी बानी।
केशव के कमला है बैठी शिव के भवन भवानी

पंडा के मूरति होई बैठी तीरथ में भई पानी...

योगी के योगिन है बैठी राजा के घर रानी।

काहू के हीरा है बैठी काहू के कौड़ी कानी...

भक्त के भक्तिन है बैठी ब्रह्मा के ब्रह्मानी।

कहै कबीर सुनो हो संतो वह अब अकथ कहानी...

माया महा ठगिनि हम जानी।

मंडली में कई लोग थे, प्रदीप, रघुराज, कृष्णमणि त्रिपाठी, विनोद, दीनानाथ, त्रिलोकी, मदन मिश्रा आदि। हम विश्वविद्यालय के बेहद पढ़-लिखे लड़कों में थे। हमारी पढ़ाई-लिखाई वह नहीं थी, जो गुरुओं के पाजामे का नाड़ा खोलने से आती है। हम उस तरह के पढ़नेवाले भी नहीं थे, जो प्रकट हो जानेवाले ग्रस्त रोगी की तरह अपने बाड़े में ही दुबके रहते हैं। राजनीतिक रुझान भी थी हमारी।

हम लोग लड़कियों के दीवाने थे। कोई हमारी आंतरिक बातें सुनता तो हमें लंपट और लुच्चा मान लेता। मगर हम ऐसे गिरे हुए नहीं थे। लड़कियों के प्रति यह आसक्ति वास्तव में जिज्ञासा और खेल थी। सीमा का अतिक्रमण हराम था हमारे लिए। सच कहूँ, हम इतने नैतिक थे कि अवसर को ठुकरा देते थे। वैसे तो हम लोगों की तरफ अनेक लड़कियाँ लपकती थीं। हम अपने-अपने विभाग के हीरो थे। यह भी बता दूँ कि चिकने-चुपड़े गालों, सफाचट मूंछों और दौलत की वजह से हीरो नहीं थे। बल्कि हम में से अधिसंख्या तो दाढ़ी भी रखते थे। जहाँ तक दौलत का प्रश्न है, तो हम लड़कियों से प्रायः चंदा माँगते थे। इस राह पर त्रिलोकी दो डग आगे था। वह व्यक्तिगत कामों के लिए भी लड़कियों से चंदा वसूलता। लेकिन वह उन नेताओं की तरह नहीं था जो सामूहिक कल्याण के लिए चंदा लेकर अपने तेल-फुलेल पर खर्च करते हैं। त्रिलोकी को जब निजी काम के लिए जरूरत होती, तो जरूरत बतलाकर पैसा लेता। वह कहता, 'विभा, भोजन के लिए पैसा नहीं है, लाओ निकालो।'

एक बार एक लड़की ने त्रिलोकी से पूछा, 'तुम हम लड़कियों से ही क्यों हमेशा चंदा माँगते हो?'

'क्योंकि वे दयालु होती हैं। लड़के घाघ और क्रूर होते हैं।'

त्रिलोकी की इस स्थिति की वजह उसकी एक खराब आदत थी। घर से जब उसका मनीआर्डर आता तो वह सनक जाता। रिक्शा के नीचे उसके पाँव नहीं उतरते थे।

दोस्तों के साथ नॉनवेज खाता और सिनेमा देखता। एक-दो बार जन-कल्याण भी कराता। 'जल-कल्याण' मंडली में शराब का कोड था और 'देशभक्ति' प्यार-मुहब्बत का। हाँ तो हफ्ते-भर में त्रिलोकी के पैसे चुक जाते और वह सड़क पर आ जाता।

कमोबेश मंडली के हर सदस्य की स्थिति यही थी। हमारी त्रासदी थी कि हम सुखमय जीवन जीने की कामना रखते थे किंतु हमारे मनीआर्डर वानप्रस्थ पहुँचानेवाले थे। यह दीगर बात है कि सब लोग त्रिलोकी की तरह महीने के पहले हफ्ते में ही कंगाल नहीं होते थे लेकिन महीने के अंत में भोजन को लेकर तीन तिकड़म करना सभी की बाध्यता थी। कृष्णमणि होटल में रजिस्टर देखता। जितने मीटिंग वह अपने एक रिश्तेदार के यहाँ खाकर संतुलन स्थापित करता। मदन मिश्र प्रायः कमरे में खिचड़ी पकाकर मेस में एब्सेंट लगवाता। रघुराज भूखा रहकर भी हँसते रहने की क्षमता अर्जित कर चुका था। प्रदीप जिसमें ऐसी कोई योग्यता नहीं थी, लोगों के यहाँ घूम-घूमकर खाता। पंकज सक्सेना शर्मीला था, सो मंडली ने विनोद को समझा दिया था, वह उसका सत्कार करता। विनोद फले-फूले परिचितों से सम्मानजनक रकम कर्ज लेता था, जिसे कभी नहीं चुकाता था।

छुट्टियों के बाद युनिवर्सिटी खुली थी, इसलिए लोगों के चेहरों पर एक खास तरह का नयापन और उल्लास था। पर ये चीजें उतनी नहीं थीं, जितनी इस मौके पर होनी चाहिए थीं। क्योंकि कल इस जाड़े की पहली बारिश हुई और आज हवा तेज चल रही थी, इसलिए लोग ठंड से सिकुड़े हुए थे।

मैं कुछ ज्यादा ही पहले अपने हिन्दी विभाग आ गया था, इसलिए सामने के लॉन में खड़ा धूप खा रहा था। मुझे त्रिपाठी का इंतजार था कि वह आए तो चलकर चाय पी जाय। मोहन अग्रवाल साले का पीरियड कौन अटेंड करे।

मैं सदानन्दजी के अलावा और किसी का पीरियड अटेंड नहीं करता था क्योंकि बाकी अध्यापक पढ़ाई के नाम पर कथावाचन करते थे या खुद सही किताब से नकल करके इमला लिखवाते थे। एम.ए. में नकल का इमला मैंने इनकी कक्षाओं का बायकाट कर दिया पर मेरे इस कुकर्म पर वे भन्नाने की जगह परम प्रसन्न हो गए। क्योंकि अब वे क्लास में निर्भीक भाव से लघुशंका-दीर्घशंका समाधान कर सकते थे....

मुझे त्रिपाठी पर झुंझलाहट हुई, आ क्यों नहीं रहा है। कहीं डूब गया होगा बतरस में। त्रिलोकी को बोलने का भयानक चस्का था। उसके बारे में प्रसिद्ध था कि त्रिलोकी जब बोलना शुरू करता है तो सामनेवाला केवल कान होता है और वह केवल मुँह।

मेरे विभाग में उसके आने का एक उद्देश्य सुन्दरियों को देखना भी होता था। यहाँ एम.ए. के दोनों भागों में लड़कियों की तादाद लड़कों से ज्यादा होती थी, इसलिए यह विभाग अन्य छात्रों का तीर्थ होता था। यहाँ लोग विपरीत सेक्स के चक्कर में इस तरह मंडराते, जैसे अस्पताल और मन्दिरों के आसपास मंडराते हैं। वैसे यह विश्वविद्यालय का मीरगंज बोला जाता था। मीरगंज इलाहाबाद का वह स्थल है, जो नैतिकतावादी लोग बहुत सतर्क होकर घुसते और टिकते हैं और बाहर निकलते हैं।

तभी सदानन्दजी का स्कूटर रुका और वह अपना हैल्मेट हाथ में झुलाते हुए आने लगे। हमारी मंडली उनका बेहद सम्मान करती थी लेकिन उनसे हमारे संबंध बेतकल्लुफ थे। एक बार हमने उनसे शराब के लिए रुपए भी लिए थे। वह अपनी मेधा और वामपंथी रुझान के अतिरिक्त एक अन्य प्रकरण की वजह से भी चर्चित थे, उन्होंने प्रेम-विवाह किया था किंतु विभाग की अध्यापिका सुनीता निगम से प्रेम करते थे। दोनों दुस्साहसी थे और भरे विभाग में एक-दूसरे का हाथ पकड़ लेते थे। कई लोगों ने उन्हें सिविल लाइंस के एक अच्छे रेस्तरां में देखा-सुना था। गुरु के बारे में ज्यादा क्या कहा जाए, समझदार के लिए इशारा काफी है। मतलब यह, कि विवाह न करने के बावजूद दोनों दंपती थे।

सदानन्दजी मुझे देखकर मुस्कराए और पास आकर मेरी अभी हाल में छपी एक कविता की तारीफ करने लगे। मैंने सोचा इस तारीफ को कोई सुन्दरी सुनती तो आनन्द था। तभी एम.ए. प्रीवियस की नई किंतु सुन्दर लड़की उपमा श्रीवास्तव दिखी। हम दोनों का हल्का-हल्का चक्कर भी चल रहा था। मैं उसे बुलाकर सदानन्दजी से परिचय कराने लगा। परिचय के बाद मैंने कहा, 'हाँ तो सर, मेरी उस कविता में कोई कमी हो तो वह भी कहें, तारीफ तो आपने बहुत कर दी।'

वह मुस्कराकर बोले, 'नहीं भई, यह तुम्हारी बहुत अच्छी कविता है।'

'सर प्रणाम!' त्रिलोकी आ गया था। आज हम चार लोग धूप के एक वृत्त में खड़े थे। तभी विभागाध्यक्ष महेश प्रसाद जिन्हें मंडली गोबर-गणेश कहती थी, लपड़-झपड़ आते दिखाई पड़े। उन्हें देखकर उपमा थोड़ी दूर खिसककर खड़ी हो गई। कई दूसरे लोगों ने भी अपनी पोजीशन बदल ली। क्योंकि सदानन्दजी और गोबर-गणेशजी में दांतकटी दुश्मनी थी। गोबर-गणेशजी हिन्दी विभाग का अध्यक्ष होने के नाते अपने को साहित्यकार लगाते थे पर साहित्य में मान्यता सदानन्दजी की थी। इसके अतिरिक्त गणेशजी प्रो. वी.सी. लॉबी में थे जबकि सदानन्दजी एंटी.वी.सी. लॉबी में थे।

और सबसे खास बात, इस विश्वविद्यालय के अध्यापकों में ब्राह्मण और कायस्थ जाति के लोग शक्तिशाली थे जबकि सदानन्दजी सिंह थे। इस मामले में भी गणेशजी का कहना था कि असल में वह सिंह नहीं यादव थे। सदानन्दजी मथुरा के नन्द कुलवंशी थे।

गणेशजी निकट आए, तो सदानन्दजी ने नहीं लेकिन मैंने और त्रिलोकी ने प्रणाम किया। जवाब में उनका सिर काँपा तक नहीं और आगे बढ़ गए। त्रिलोकी उनके पीछे हो लिया, 'सर, हमारा और आपका मुद्दा आज हर हालत में साफ हो जाना चाहिए।'

मैं भी सदानन्दजी को छोड़कर लपका। त्रिलोकी गणेशजी के संग उनके कमरे में घुस गया, तो मैं चिक से सटकर खड़ा हो गया।

'कैसा मुद्दा?' गणेशजी हाँफ रहे थे।

'भक्ति आंदोलन के सामाजिक कारण क्या थे?'

'उस दिन बताया था। सुना नहीं क्या?' उन्होंने किसी बच्चे की तरह चिढ़कर कहा।

'उस दिन भक्ति आंदोलन के सामाजिक कारण बतलाने के नाम पर आप सांप्रदायिकता फैलाने की कोशिश करते रहे।'

'मैं तुम्हें क्यों बताऊँ सामाजिक आधार?' तुम तो हिन्दी के छात्र हो नहीं। आउटसाइडर होकर मेरे विभाग में कैसे घुसे?'

त्रिलोकी कुर्सी खिसकाकर खड़ा हो गया। हाथ के पंजों को मेज पर रखकर थोड़ा-सा झुक गया, 'भक्ति आंदोलन पर हिंदी वालों का बैनामा है क्या? रही बात आउटसाइडर की, तो जो साले लुच्चे-बदमाश आपके विभाग में आँख सेंकने आते हैं, उनको कभी आपने मना किया? मना किया? आंय? उनको मना करने में आपकी दुप-दुप होती है। मीना बाजार बना रखा है हिन्दी डिपार्टमेंट को। महानगरों की सिटी बसें बना रखा है।'

'मैं कहता हूँ, निकल जाओ यहाँ से।'

'तो आप मुझे बाहर निकाल रहे हैं। मैं हिन्दी का विद्यार्थी न होते हुए भी आपको चैलेंज करता हूँ कि हिन्दी साहित्य ही नहीं, संसार के साहित्य के किसी मसले पर बहस कर लें। बहस में अगर जीत जाएँ तो मैं पेशाब से अपनी मूंछें मुड़ा दूँगा।'

'मैं कहता हूँ, निकल जाओ... निकल जाओ...'

'मुझसे निकलने को कह रहे हैं। दुरदुरा रहे हैं जबकि मैं साहित्य का योग्य अध्येता हूँ और गुंडों को आप शेल्टर देते हैं। मैं जा रहा हूँ लेकिन जाते-जाते एक बात कह देना चाहता हूँ कि क्या कारण है, जब से आप हेड हुए, यहाँ केवल लड़कियों ने टाप किया?'

वह तमतमाया हुआ बाहर आ गया। मैंने खुश होकर उसकी पीठ पर हाथ रखा, 'वाह गुरु! मजा आ गया। चलो, लल्ला की दुकान पर तुम्हें चाय पिलाता हूँ।'

'अबे पहले एक ठो सिगरेट तो पिला।'

'हां...हाँ...गुरु...लो...।'

हम दोनों सिगरेट पी रहे थे। पढ़ने में रुचि रखने वाले लड़के-लड़कियाँ हमें मुग्ध भाव से देख रहे थे। लेकिन पास नहीं आ सकते थे। क्योंकि उन नन्हें-मुन्ने प्यारे बच्चों को अच्छे नम्बर लाने थे।

उपमा श्रीवास्तव भी एक कोने में खड़ी होकर हमें देख रही थी। त्रिलोकी मुस्कराया, 'कहो कब तक भाभीजी को देवर दिखलाते रहोगे। वैसे उनके बगलवाली मेरी श्रीमती हो सकती है।'

'श्री शादीशुदा! सपने देखना छोड़ दो।' मैंने कहा।

'लेनिन के अनुसार सपने हर इंसान को देखने चाहिए।'

'वह तो दिन वाला सपना है, तुम तो रातवाले सपने देख रहे हो।'

'तुम कुंवारे साले स्वप्न-दोष से आगे जा ही नहीं पाते...'

'हा... हा... हा...' मैंने ठहाका लगाया और कहा, 'इस बात का फैसला लल्ला की दुकान पर होगा।'

लल्ला की दुकान पर लड़कों का खूब जमावड़ा होता था जिसकी खास वजहें थीं। दुकान युनिवर्सिटी और कई हॉस्टलों के निकट थी। फिर सामने विमेन्स हॉस्टल था। इसके अलावा लल्ला ने एक हिस्से में जनरल स्टोर्स की दुकान खोल ली थी। वीमेन्स हॉस्टल के आस-पास यह इकलौती अच्छी दुकान थी, सो हमेशा दो-चार लड़कियाँ खरीदफरोख्त करती मिलतीं।

मैं और त्रिलोकी दुकान पर पहुँचे, वहाँ इलेक्शन की चर्चा थी। हमने चर्चा में शरीक होने के पहले जनरल स्टोर्स की तरफ देखा, कुछ लड़कियाँ और कुछ सामान्य जन सामान खरीद रहे थे। त्रिलोकी ने मुझे कोंचा, 'वो पीली साड़ीवाली को देखो।' मैंने

देखा, गोरा रंग और बड़ी-बड़ी आँखों वाली थी वह। पीली साड़ी ने उसके गोरेपन को चन्दन का रंग बना दिया था। शेम्पू किए चमकते हुए बाल घुंघराले और कटे हुए थे।

मैंने उसे पहले भी कई बार देखा था। वह भेष बदला करती थी। कभी शलवार-कुर्ते में होती तो कभी पैंट-शर्ट में तो कभी स्कर्ट में। उसके कपड़े कभी ढीले होते तो कभी चुस्त। आज पीली साड़ी पहने थी और अलौकिक बाला लग रही थी।

'देख लिया।' मैंने बताया।

'क्या प्रतिक्रिया है?'

'भारत में मोनालिसा।'

'सी... ई... ई...' यह पंकज सक्सेना की है। पंकज की योजना है, नौकरी लगते ही शादी कर लेगा।'

'ईश्वर इसे अखंड सौभाग्यवती बनाए।' मैंने कहा। हम दोनों आकर दुकान के स्टूल पर बैठ गए। छात्र संघ के चुनाव परिणाम पर चर्चा चल रही थी। इस बार हमारी मंडली जिस संगठन से जुड़ी थी, उसने भी अध्यक्ष पद के लिए प्रत्याशी खड़ा किया था जिसने अच्छी तरह शिकस्त खाई थी। दरअसल आजादी के बाद इस विश्वविद्यालय के छात्रसंघ का इतिहास रहा है कि अध्यक्ष की कुर्सी पर किसी ठाकुर या ब्राह्मण ने ही पादा है और प्रकाशन मंत्री की कुर्सी कोई हिजड़ा-भड़वा टाइप का ही आदमी गंधवाता रहा है। अध्यक्ष विगत अनेक वर्षों से भारतीय राजनीति के एक धुर कूटनीतिक बहुखंडीजी की उंगलियों और आँखों की संगीत, चित्रकला और भाषा को तत्क्षण समझ लेनेवाला होता रहा है। इसके मूल में छिपा रहस्य यह है कि बहुखंडीजी पहले इस बात का जायजा लेते हैं कि कौन दो सबसे वरिष्ठ प्रतिद्वन्द्वी हैं। फिर उनका कुबेर दोनों को समृद्ध करता है। इसके बावजूद इस बार हमारा संगठन बहुखंडीजी की मंशा का खंड-खंड करता। बहुखंडीजी ही क्यों, शराब के बड़े ठेकेदार सीताराम बरनवाल, उद्योगपति हाफिज, सभी के फन को कुचलता हमारा संगठन। सभी की लपलपाती जीभ को सिद्धांतों के धागे से नापता हमारा संगठन। लेकिन चुनाव की पिछली रात जनेऊ घूम गया। बहुखंडीजी का प्रत्याशी इस बार ब्राह्मण था। मशाल जुलूस निकालने के बाद वह सभी छात्रावासों में गया और अपनी जाति के लोगों की मीटिंग कर पानी भरने की रस्सी जितनी मोटी जनेऊ निकालकर गिड़गिड़ाया, 'जनेऊ की लाज रखो।' और हम हार गए।

हम छात्र-संघ के चुनाव की चर्चा में डूब-उतरा ही रहे थे कि रघुराज हाँफता हुआ

आया और मुझसे तथा त्रिलोकी से एक साथ बोला, 'छः समोसे खिलाओ।'

हम समझ गए, आज खाना नहीं खाया है उसने। इस समय वह थोड़ा बुझा हुआ भी था कि त्रिलोकी ने उससे पूछा, 'कहाँ से आ रहे हो महाराज?'

'यार, दो लड़कियों से आरूढ़ रिक्शे के पीछे साइकिल लगाई। रिक्शा सिनेमा हाल के पास रुका। मैं भी देखने लगा फिल्म।'

हम समझ गए, अब रघुराज शुरू हो गया है। मैंने पूछा, 'कैसी थी फिल्म?'

'ठीक ही थी, बस अश्लीलता का अभाव था।' रघुराज की विशेषता थी कि मूड की स्थिति में संसार के सभी क्रिया-व्यापार के मूल्यांकन के लिए उसके पास इकलौता बंटखरा सेक्स था।

'और लड़कियाँ कैसी थी?' त्रिलोकी का प्रश्न था।

'क्षमा करना यार, मैं बताना भूल गया। उसमें एक लड़की थी, दूसरी नव-विवाहिता थी, भाभीजी!'

'पर तुम किसके लिए प्रयासरत थे?'

'दोनों के लिए। बेशक दोनों के लिए, लेकिन ज्यादा भाभीजी के लिए।'

'लेकिन रघुराज, मैंने प्रायः देखा है कि तुम्हें शादी-शुदा औरतें ज्यादा अच्छी लगती हैं। इसकी वजह क्या है?'

'इसकी वजह वे ज्यादा ची... ची... नहीं करतीं....'

'वाह रघुराज, तुम्हारी पकड़ बहुत अच्छी है। तुमको लेखक होना चाहिए। उपन्यास पर काम करो रघुराज।'

'कर रहा हूँ। एक उपन्यास पर काम कर रहा हूँ-अतृप्त काम वासना का जिंदा दस्तावेज। और एक कहानी पूरा की है-इलाहाबाद के तीन लड़कों को देखकर दिल्ली की लड़कियाँ विद्रोह कर घर से बाहर।' उसने जोर का ठहाका लगाया, 'साले लेखकों की दुम। आज तक मैंने कुछ लिखा है? जो अब लिखूंगा। फिर आज तक बाँझ औरत के कभी संतान हुई है? हा... हा... हा....'

रघुराज अब अपनी रौ में था। हमने वहाँ से उठ लेना ही बेहतर समझा, क्योंकि वहां मंडली से बाहर के कई लड़के थे जिनकी निगाह में हम ब्रह्मचारी किस्म के सरल सीधे माने जाते थे।

हम उठने लगे तो दूसरे लोगों ने हमें रोका लेकन हम रुके नहीं। थोड़ी ही दूर बढ़े होंगे कि रघुराज ने अपना काम शुरू कर दिया। आने-जानेवाली प्रत्येक लड़की को वह टकटकी बाँधकर देखता। हमने टोका तो कहने लगा, 'कहां कायदे से देख पाता हूँ। ईश्वर ने एक आँख पीछे भी दी होती, तो कितना आनन्द होता।'

मैंने सलाह दी, 'तुम इसके लिए तपस्या शुरू कर दो।'

'ठीक है।' वह ठिठक गया, 'मैं यहीं धूनी रमाऊंगा।' ठीक सामने विमेन्स हॉस्टल था। मुझे इसकी यह आदत बिलकुल अच्छी नहीं लगी, 'देखो तुम विमेन्स हॉस्टल के बारे में कुछ मत कहना।'

'क्यों?'

'क्योंकि जब सूरज डूब जाता है तो अंधेरे में लड़कियों का यह हॉस्टल मुझे एक अद्‌भुत रहस्य लोक-सा लगता है... मेरे भीतर इसके लिए एक पवित्र भाव है।'

'देखो बालक! वैसे मैं तुम्हारे तथाकथित पवित्र बोध को अपवित्र नहीं करना चाहता।' रघुराज गंभीर हो गया, 'लेकिन अज्ञान की वजह से जन्मी पवित्रता कोई वजन नहीं रखती इसलिए तुम चाहो, तो मैं तुम्हारी जिज्ञासा को शान्त कर सकता हूँ। चाहते हो?'

त्रिलोकी बोल पड़ा, 'हाँ... हाँ... महाराज बताओ...'

'तो सुनो।' वह रुक गया। हम लोगों को पल-भर देखा। फिर धीरे-धीरे चलते हुए कहने लगा, 'मैं कुछ बताने से पहले एक सवाल करना चाहता हूँ। बताओ, इस हॉस्टल में पी.एस.एफ. से जुड़ी लड़कियाँ अधिक क्यों हैं? हमारे संगठन की तरफ वे ज्यादा आकर्षित क्यों नहीं होतीं?'

'तुम ही बताओ महाराज! सब तुम ही बताओ!' त्रिलोकी ने व्यग्र होकर कहा।

'ठीक है, मैं ही बताता हूँ। इसलिए कि पी.एस.एफ. भद्र लोगों की वर्चस्ववाली संस्था है। उसमें लड़कियाँ इसलिए जाती हैं कि उससे जुड़कर उनमें अपने को विशिष्ट समझने का एहसास होता है। देखो, आजकल संपन्न घरों के सदस्यों में सामाजिक कार्य करने का चस्का जो पकड़ता जा रहा है लेकिन उनके ये कार्य मूलतः जनता के संघर्ष की धार को कुंद करने के लिए होते हैं, यही बिंदु पी.एस.एफ. और इन सुविधाभोगी लड़कियों के बीच सेतु का काम करता है।'

'रघुराज, हमने पी.एस.एफ. और लड़कियों के संबंध पर प्रकाश डालने के लिए

प्रार्थना की नहीं थी।' मैंने अधीर होकर कहा। त्रिलोकी ने भी मेरी बात पर हामी भरी। रघुराज भड़क गया, 'तुम लोग तभी तो अच्छे लेखक नहीं बन सके।' वह जोर-जोर से बोलने लगा, 'केन्द्रीय तत्त्व को समझे बिना यथार्थ को फैलाने की कोशिश करते हो। यही हड़बड़ीवाली आदत रही, तो शीघ्रपतन के रोगी कहलाओगे...'

हमने हाथ जोड़ लिया, 'अच्छा भइया सुनाओ! सुनाओ!'

'चलो क्षमा कर देता हूँ। हां तो मेरी उपरोक्त बात से तत्त्व निकला कि विमेन्स हॉस्टल की अधिसंख्या लड़कियाँ आर्थिक दृष्टि से दुरुस्त परिवारों से जुड़ी हैं। लेकिन इससे क्या होता है। यहाँ भी कई तरह की भिन्नाताएँ कई तरह की कहलों को जन्म देती हैं। अब बहुत संभव है, थानेदार की बिटिया का मनीआर्डर और जूनियर इंजीनियर की बिटिया का मनीआर्डर क्रमशः डिप्टी, एस.पी. और असिस्टेंट इंजीनियर की बिटिया के मनीआर्डरों से ज्यादा रुपयों का होता हो। ऐसी स्थिति में पहली दोनों का घमंड अपने बाप के पैसों का होगा, दूसरी दोनों को अपने-अपने बाप के पद का। दूसरी तरफ हीनता भी अपने बाप के पद का। दूसरी तरफ हीनता भी अपने बाप के कारण होगी कि एक का बाप पैसा रखते हुए भी मातहत है, दूसरे का बाप अफसर होते हुए भी मातहत से कम समृद्ध। लड़कियों के बीच कलह का एक प्रमुख कारण यह है। तुम लोग जानते ही हो, इन लड़कियों में होड़ की भावना बड़ी प्रबल होती है। वे पैंटी से लेकर प्रेम तक में अपनी चीज को श्रेष्ठ देखना चाहती हैं। कम-से-कम दूसरों से उन्नीस तो नहीं ही दिखना चाहती हैं। अब जिसकी माली हैसियत अपेक्षाकृत पिछड़ी होती है, वे गड़बड़-सड़बड़ हो जाती हैं। ऐसे में पहला काम किसी मालदार प्रेमी को पटा लेने का होता है। इसके बावजूद कमी पड़ी तो पतन शुरू हो जाता है...' इतना कहकर रघुराज चुप हो गया। हम भी चुप हो गए। कुछ देर बाद मैंने कहा, 'और कुछ ज्ञान दोगे?'

'समय क्या है?'

'तीन चालीस।'

'तो त्रिलोकी तुम भी सुनो, हमें चलना भी है। चार तीस पर जाकर सांस्कृतिक प्रपंच की विरोध करना है।'

'पर तुमने यह नाम क्यों दिया?'

'क्योंकि किसी भी स्वस्थ कला के निर्माण के लिए इसकी समाज से प्रतिक्रिया अनिवार्य होती है पर जिनको तुम लोगों आज डंडा करोगे, वे स्वयं रचते, स्वयं आनंदित होते हैं।' हम अल्फ्रेड पार्क यहाँ से आधा घंटा में आसानी से पहुँच सकते थे। यानी कि

हमारे पास बीस मिनट का वक्त था। पर हमने तय किया कि वहीं चलते हैं। वहाँ हम धूप का एक टुकड़ा खोजेंगे और बीस मिनट लेटे रहेंगे।

शहीद पार्क से इकट्ठा होकर हमें कला भवन के लिए कूच करना था। बाकी लोग वहीं मिलनेवाले थे।

मंडली के नेतृत्व में तमाम युवा कलाकार छात्र भवन में हो रहे नाट्य समारोह का विरोध करनेवाले थे। क्योंकि कला भवन एक सरकारी संस्था थी और इसके कार्यक्रम जनता और उसके अपने कलाकारों से मुँह मोड़े रखते थे। इसमें दर्शक श्रोता अफसर वगैरह होते और कलाकार विदेशी मेकअप में ऐंठे रहनेवाले। यहाँ शराब की झमाझम बारिश और रासलीला के प्रयत्न की सुरसुरी समय-असमय हर समय देखी जा सकती थी।

विनोद ने कहीं से कार्यक्रम का पास उपलब्ध कर लिया था। योजना यह थी कि वह हमारे विरोध के पर्चों का बंडल झोले में छुपाकर भीतर हो जाएगा और भीतर जितना बांट सकेगा, बाँटेगा, बाकी लोग बाहर नारेबाजी करेंगे। कलाभवन की कमर तोड़ने की अब हम ठान चुके थे...

तो मंडली के लोगों का एक रूप था बौद्धिक मस्त और निर्भय।

जिंदादिली की रोशनाई में डूबी कलमें थे हम।

पर हम और भी कुछ थे। कहीं कुछ बुरा देखें, बुरा सुनें-हम क्रोध से कांपने लगते। इतने अजीब थे हम कि यदि खुद ही गलत कह या कर जाते तो खुद पर ही खफा होने लगते।

हम पोस्टर चिपकाते। नारे लगाते। हम जुलूसों में होते, सभाओं में होते, हड़तालों में होते। हम पुलिस और गुप्तचरी के रजिस्टर में दर्ज थे। सचमुच हम पढ़ाकू और लड़ाकू थे।

हम गर्म तंदूर पर पक रही रोटियाँ थे।

लेकिन हम ऊपर उड़ते गैस-भरे रंग-बिरंग गुब्बारों की तरह थे। हम उड़ रहे थे...हम उड़ रहे थे... उड़ते-उड़ते हम ऐसे वायुमंडल में पहुँचे जहाँ हम फूट गए। अब हम नीचे की ओर गिर रहे थे। अपना संतुलन खोए हम नीचे की ओर गिर रहे थे। हमारा क्या होगा, हमें पता नहीं था...।

हमें नौकरी मिल नहीं रही थी जबकि वह हमारे लिए साँस थी इस वक्त।

उपमा मुझसे उखड़ी-उखड़ी रहने लगी। जब भी मिलती मशविरा देती कि मुझे कंप्टीशन की पढ़ाई और मेहनत से करनी चाहिए। इस पर मैं क्रुद्ध हो जाता। धीरे-धीरे हमारे संबंधों के पाँव उखड़ने लगे...।

सदानन्दजी भी मंडली से दोस्ताना अंदाज में नहीं मिलते। वह मंडली पर दया करने लगे थे।

अब हम भोजन के लिए लाल-तिकड़म नहीं करते थे। न होने पर भूखे रह जाते। उधार लेने का मनोबल भी खो चुके थे हम।

कोई हमसे पूछता, क्या कर रहे हो? तो प्रत्युत्तर में हम कांपने लगते। किसी से मिलने के पहले ही हमारे दिल की धड़कन तेज हो जाती। कहीं पूछ न लिया जाए,क्या कर रहा हूँ मैं?

आपस में भी मिलना कम होने लगा। हम परस्पर कतराने लगे। हमारे बीच मुहब्बत बदस्तूर थी पर बातचीत में हम थोड़ा कटखने हो गए थे। एकबार हम लोग छुट्टियों में अपने-अपने घर गए। लौटने पर हम सभी थके और हारे हुए लग रहे थे। हमने अपने माता-पिता-परिचितों को निराश किया था जिससे वे चिढ़ गए थे। उन्होंने हमें हिकारत से देखा था और हम हार गए थे। थक गए थे।

फिर भी हमने तय किया था कि हम घर चले जाएँगे। हम 'कुटिया' पर इकट्ठा होने वाले थे-अपने-अपने घरों को प्रस्थान करने के लिए।

हम खुशी या फायदे के लिए नहीं वापस हो रहे थे। हम मजबूर थे। क्योंकि यहाँ तो जीना मुहाल हो गया था। गुजारा मुश्किल था।

बाद की कहानी यह कि हम कुटिया पर इकट्ठा हो गए थे। विनोद का यह कमरा आधुनिक शैली का था पर उसकी जीवन-पद्धति ने इस आधुनिकता का कबाड़ा कर दिया था। किताबें और कपड़े हर जगह फैले हुए थे। उसने हर जगह रंगीन तस्वीरें चिपका रखी थीं। चेग्वारा की बगल में एक सुन्दरी कूल्हे मटका रही थी...

सबसे पहले त्रिलोकी बहका। वह हाथों में शराब का गिलास लेकर खड़ा हो गया और बोला, 'भाइयो और बहनो!'

'नेताजी, यहाँ कोई लौंडिया नहीं है। प्रदीप चिल्लाया। वह भी हल्के, बहुत हल्के सुरूर में आ गया था।

'बड़े अफसोस की बात है।' त्रिलोकी दुखी होकर बोला, 'यह भारतवर्ष के लिए बहुत बड़ा दुर्भाग्य है कि हम जैसे महान युवकों के पास न प्रेमिकाएँ है और न नौकरियाँ। हम किसके सहारे जिएं?'

'मैं जानता हूँ...। जानता हूँ...। लो मैं बैठ जाता हूँ... पब्लिक साली अब समझदार हो गई है... सवाल-जवाब करने लगी है...'

'सवाल-जवाब ही तो नहीं कर रही है जनता, वर्ना हमारी यह दशा नहीं होती.... नहीं होती...।' दीनानाथ ने धीमे से कहा।

त्रिलोकी को छोड़कर बाकी मंडली अभी नशे में नहीं थीं। नशे की पूर्वावस्था सुरूर में थी।

'आखिर हम यहाँ क्यों इकट्ठा हुए हैं?' मदन मिश्र दार्शनिक अंदाज से बोला। मैंने कहा, 'यहाँ हम विदाई-समारोह के उपलक्ष्य में एकत्र हुए हैं।'

'नहीं।' प्रदीप ने बताया, 'यह बैठक हमारे सुख की शोकसभा है। हमारे पास जो भी सुख था, इस बैठक के पहले खत्म हो गया। कल से हम दुखी दुनिया के दुखी नागरिक होंगे।'

'हम नागरिक नहीं हैं। दुखी दुनिया के नागरिक मजदूर और किसान होते हैं, जिनके श्रम का शोषण होता है। हमारे पास तो सामाजिक श्रम करने का भी अधिकार नहीं है।' त्रिलोकी तैश में आ गया था, 'जिसके पास कोई काम नहीं होता, वह आदमी नहीं होता। हम आदमी नहीं हैं...इस व्यवस्था ने हमें आदमी नहीं रहने दिया... हमसे हमारा होना छीन लिया गया...।' त्रिलोकी सुबकने लगा। वह सिर झुकाए सुबक रहा था।

जैसे काठ मार गया हो, हम सब स्तब्ध हो गए। इस बात को कृष्णमणि ने सबसे पहले भांपा। वह आहिस्ते से त्रिलोकी के पास गया और उसके लटके हुए मुँह से एक सिगरेट लटका दी, 'नेताजी, ईश्वर एक दिन तुम्हारी सुनेगा जरूर। तुम इसी तरह भाषण करो, लेकिन भाषण के बाद असल में सुबकना छोड़ दो तो एक दिन सच्ची-मुच्ची में नेता हो जाओगे और मौज करोगे।'

'हम एक दिन मर जाएंगे। ओर कोई जानेगा भी नहीं।'

विनोद मेजबानी भूला नहीं, 'आप लोगों में जिसके गिलास खाली न हों, कृपया उन्हें जल्द खाली कर लें। यह साकी जाम का दूसरा पैग ढालने के लिए उतावला है।'

'काश, आज हम किसी रूपसी के हाथ पीते तो रात कितनी हसीन होती।'

रघुराज था।

'मार साले को।' हमने चौंककर देखा, प्रदीप था। उसे भी चढ़ गई थी। उसने फिर कहा, 'मार साले को' और चुप हो गया।

मैंने पूछा, 'किसे मार रहे हो?'

'अपने दोस्तों के लिए नहीं कह रहा हूँ। बस। मार साले को।'

हम दूसरा पैग पीने लगे। रात और ठंड दोनों बढ़ गई थी। दीनानाथ ने उठकर खिड़कियाँ बंद कर दीं। हमने सिगरेट सुलगा ली। उनका धुआँ कमरे में घुमड़ने लगा। मदन ने घूँट लेकर सिगरेट पी और कहा, 'रोज मेरी मृत्यु होती है। रोज कई-कई बार मेरी मृत्यु होती है। कोई मुझसे पूछता है, 'तुम क्या करते हो? और मैं मर जाता हूँ।'

'मार साले को।' प्रदीप धुत्त होने के करीब पहुँच गया था। वह किसे मारना चाहता था?

'तुम लोग समझते होगे, मैं नशे में हूँ, लेकिन मैं होशा-हवास में कह रहा हूँ। बेरोजगारी के कारण मैं कई-कई बार रोया हूँ। पिछली बार का रक्षा बन्धन था। बहन को देने के लिए मेरे पास कुछ नहीं था। बहन ने मेरे सिरहाने की किताब में चुपके से सौ का नोट रख दिया। उसे पाकेट में रख खूब रोया। मैंने उसे कुछ नहीं दिया। वह नोट अब भी मेरी डायरी में रखा है। मैं उसे देखता हूँ और उदास हो जाता हूँ। कृष्णमणि अपने चेहरे पर हाथ फेरने लगा।

'माँ-बाप दो आँखें नहीं करते-यह झूठ है।' विनोद ने एक साँस में कह डाला, 'मेरे माँ-बाप मेरे कमासुत भाई की चापलूसी तक करते हैं पर मुझे देखकर जल-भुन जाते हैं।'

'और मैं। मेरा पिता से कोई संवाद नहीं। एक दिन उन्होंने गुस्से में चीखकर कहा 'लोग पूछते हैं कि तुम्हारा बेटा क्या करता है? मैं क्या बताऊँ उन्हें? बोल जवाब दे। बोल।' बस, उसी दिन से हम एक-दूसरे से नहीं बोले।'

दीनानाथ आँखें स्थिर कर कुछ सोचने लगा। कहीं खो गया था वह।

'लो मैं भी बता देता हूँ।' रघुराज ने अपना सिर उठाया, उसकी आँखें सुर्ख लाल थीं 'मैं अपना रहस्य खोलता हूँ। अब हम जा रहे हैं, तो क्या छिपाना। मैं लड़कियों के पीछे कभी नहीं भागा। मैं एक कपड़े की और एक दवा की दुकान पर पार्ट टाइम काम करता रहा। मालिक मुझे ढाई सौ रुपए का चाकर समझते रहे। मैं... मैं...।' वह चुप हो गया, उसकी आवाज फँसने लगी थी।

मंडली अवाक् थी रघुराज की बात से। रघुराज ने अपना चेहरा फिर घुटनों में छिपा लिया।

हम सभी ने अपनी रामकहानी कही। हमने तीसरा पैग लिया। हमने चौथा पैग पिया। पांचवां पिया...। हम लुढ़कने लगे।

विनोद ने कहा, 'हम खाना कैसे खाएँगे?'

'भविष्य में हमें भूखे रहना है, हम आज भी भूखें रहेंगे।' मदन डंवाडोल होते हुए कह खड़ा हुआ। हम सभी खड़े हो गए।

हम कुटिया के बाहर खड़े थे, अलग-अलग दिशाओं की तरफ जाने के लिए। रात गाढ़ी थी और हवा सरसरा रही थी। हमारे मुँह बंद और चेहरे भिंचे हुए थे।

'अच्छा दोस्तो!' रघुराज ने गला साफ करते हुए दुबारा कहा, 'अच्छा दोस्तो! अब विदा होते हैं...!'

एक क्षण सन्नाटा रहा फिर अचानक हम सब लोग जोर से रो पड़े। हम सारे दोस्त फूट-फूटकर रो रहे थे...

उस दिन अलग होने से पहले हमने तय किया 'हममें से यदि कोई कभी सुखी हुआ तो सारे दोस्तों को खत लिखेगा।'

लंबा समय बीत गया इंतजार करते, किसी दोस्त की चिट्ठी नहीं आई। मैंने भी दोस्तों को कोई चिट्ठी नहीं लिखी है।

अखिलेश

जन्म	:	6 जून, 196, सुल्तानपुर (उत्तर प्रदेश)
प्रकाशन	:	आदमी नहीं टूटता, मुक्ति, शापग्रस्त, अंधेरा (कहानी संग्रह) अन्वेषण (उपन्यास) यह जो यथार्थ है (गद्य कृति)
सम्मान	:	श्रीकांत वर्मा पुरस्कार, वनमाली कथा पुरस्कार, इन्दु शर्मा कथा सम्मान, परिमल पुरस्कार

मुर्दा-स्थगित

—महेश कटारे

शहर के अखबार तो पिछले कई दिनों से चिल्ला रहे थे कि जिस दिन हुजूर की पुत्री ससुराल जाएगी, सारा शहर रोयेगा। बात कहने का ढंग कुछ फूहड़ हो गया, अन्यथा रोने को भी अलंकृत किया जा सकता है जो कि अखबार कर रहे थे यथा 'हर आँख नम होगी', प्रेमाश्रु के मोर्मियों की बरसात के बीच डोली उठेगी, 'नगर की जनता', 'आँखों के जल से अर्घ्य देगी' आदि-आदि। सबका सीधा-सा अर्थ यही कि शहर रोयेगा और चूँकि वह शहर का नागरिक है अत: उसे अपना कर्त्तव्य अच्छे ढंग से निभाना है।

कर्त्तव्य पालन में अखबार चौकस था अत: घुमा-फिराकर यह सूचना दे ही देता था कि अमुक दिन आपको रोना है किंतु वह सोचता था कि अभी तो वह दिन दूर है, देख लेंगे। परसों अचानक लेटे-लेटे उसे ख्याल आया कि कल बारात आने वाली है। एक-दो दिन बाद बिदा होगी, वह देखे तो कि विधि पूर्वक हो सकेगा कि नहीं। अँधेरे कमरे में रजाई से ढँका, वह रोने की रिहर्सल करने लगा। कुछ फिल्मों और नाटकों के दृश्य याद कर वह करुणा और संवेदना को आँखों की ओर समेटने लगा। साथ सो रहा बच्चा कुनमुनाया तो उसकी क्रियाशीलता बाधित हुई। हल्का-सा गुस्सा हो आया। ठीक तभी लगा कि बच्चे दो भी ज्यादा हैं। सिर्फ एक ही जिसे पत्नी ही सँभालती रहे। अचानक उसे गुस्से के कारण कोशिश से पैदा की गई करुणा डरकर छिटक गई।

यह तो तय था कि उसे रोना है, देखना यही था कि वह कितने बेहतर और शिष्ट ढंग से रो सकता है। अचानक याद आया कि स्कूल तथा कॉलेज के शुरुआती दिनों में वह शीशे के सामने खड़ा होकर नाटक या भाषण का अभ्यास किया करता था, अभी भी

दाढ़ी छीलते या बात काढ़ते वह अनेक मुद्राओं का अभ्यास दोहरा लेता है। उसने रजाई सरकायी और खड़े होकर शीशे की जगह टटोली। बत्ती जलाने से पत्नी जाग सकती थी। अपने देश में औरत को तो हर जगह हर तरह से रोने की सुविधा है, किंतु वह मर्द है। शीशा हाथ में ले वह पाखाने में जा घुसा था।

कल बारात आ गई थी। अगवानी से लेकर जनवासे तक के रास्ते सज चुके थे। शेष शहर भी सज रहा था।

आजादी के बाद वर्ष समर्पित किए जाने की परंपरा है, पहले ही घोषणा हो जाती है कि अगला वर्ष 'महिला वर्ष' होगा या 'विकलंग वर्ष', चुनाव वर्ष तो ऋतु-चक्र की तरह हर पाँचवें साल आती ही है पर जैसे कि प्रकृति कभी-कभी उत्साहित हो ठेठ जेठ में भी बाढ़ ला देती है या भर पावस में लदे-फदे बादल अधिकारियों की मीटिंग की तरह बिना कोई निर्णय लिए प्रोसीडिंग में अगली मीटिंग की सहमति दर्ज कर घर चले जाते हैं। चुनाव वर्ष भी आगे-पीछे हो लेता है। चालू साल 'सूखा-वर्ष' है। किसान चिंतित है, सरकार चिंतित है, शहर भी चिंतित है।

शहर की चिंताएँ और भी हैं। मसलन 'रामायण' सीरियल के समय विद्युत विभाग की लापरवाही क्रिकेट खेल का प्रसारण होना न होना, सिगरेट, शराब की कीमतों का बढ़ना, बाबरी मस्जिद वग़ैरा।

गाँव एक सूची कार्यक्रम के तहत 'सूखा वर्ष' मना रहा है। पानी धरती के पेट के नीचे धसक गया है, किसान के 'पशु परिवार' को चारा नहीं, वह हाथ चला भी रहा है और जोड़ भी रहा है और भी काम कर रहा है। शहर काम नहीं करता। वहाँ सरकार रहती है सो वही काम करती है। शहर विरोध या समर्थन करता है।

शहर में सूखे का असर नहीं है। बड़े बजारों और बड़ी सड़कों पर तो बिल्कुल नहीं। सूखे की क्या मजाल कि उधर का रुख करे। सूखे की प्रिय बस्तियाँ और गलियाँ यहाँ भी हैं किंतु वे राजमार्गों या मीनाबाजारों से दूर रखी जाती हैं। हर मौसम के अनेक लाभ-हानि हैं। सूखे के मौसम का सबसे बड़ा लाभ यह है कि मेहनत सस्ती हो जाती है।

सरकार के नैतिक और राजनीतिक दायित्व के तहत सूखा पीड़ित शहर की सड़कें और भी चिकनी की गयीं। गाँव से ट्रकों और ट्रालियों में सूखी मिट्टी लाकर शहर की पथरीली जगहों पर बिछा हरियाली रोपी गई। शहर को खूबसूरत बनाना है।

आज तो शहर बेहद खूबसूरत हो उठा है दुल्हन की तरह सजा कहना शहर का

अपमान करना है। दुल्हन तो हर किसी ऐरै-गैरे, नत्थू खैरे की बेटी भी बन जाती है। कहना होगा कि शहर अप्सरा की तरह सजा है। एक बात समझना जरूरी है-गाँव तो मिट्टी है-मिट्टी का सजना क्या और न सजना क्या। कस्बे कभी-कभी सज लेते हैं, शहर तो सजे ही होते हैं, त्यौहार-उत्सव पर वे विशेष रूप से सजते हैं और राजधानी? वह नित नई सजती है, वीरांगना की तरह।

आज शाही सवारी निकलेगी। जनता आकुल-व्याकुल है दर्शन के लिए। तरह-तरह के बैनरों से सजा स्वागत द्वार, हज़ारों हज़ार। हुज़ूर महामहिम हैं। वे अपने लिए कुछ नहीं चाहते। सब कुछ जनता के लिए चाहते हैं। वे लोकप्रिय हैं क्योंकि हर महामहिम लोकप्रिय होता है। उनका हर काम जनता का काम होता है, जनता के लिए होता है। जनता अनुग्रहीत है कि जो काम वह नहीं कर पाती उसे महामहिम कर लेते हैं। यही देखिए कि इस साल सूखे ने अनेक जोड़े बनते-बनते रुकवा दिए। पेट भरें या उत्सव मनाये? हुज़ूर ने सोचा कि उनकी उत्सव-प्रिय प्रजा दुखी और वंचित है, उनकी बेटियों की शादी नहीं हो पा रही तो चलो हम कर लेते हैं। हुज़ूर ने गरिमा और गंभीरता से कार्य-कारण का संबंध जोड़ते हुए अपना मंतव्य ज़ाहिर किया। 'चीखे' जनहित की यह खबर ले उड़े। आसमान गूँज उठा। प्रजा धन्य हो गई।

सड़कों पर बेतहाशा हुजूम उमड़ पड़ा है। जाने कौन-कौन तो आया है इस शादी में। जिनके सिर्फ नाम सुनते थे या नाम तक नहीं सुने वे भी। बड़ों ने थैलियाँ खोल दीं, छोटों ने जेबें टटोली और रोने के लिए राजमार्गों के आस-पास इकट्ठे होने लगे। बचे-खुचे आँसुओं से उन्हें नगर की बेटी को विदा करना है। हुज़ूर ही नगर हैं। हुज़ूर सामर्थ्यवान हैं, वे नगर तो क्या देश तक हो सकते हैं।

सारा नगर गौरव के सागर में डुबकी लगा रहा है। बारात लाने वाले भी महामहिम हैं, होने भी चाहिए। गाँवड़ी कहावत में 'लाखों चिट्ठियाँ फाड़ी गई हैं।' ठठ के ठठ देहाती जेब में राजचिन्ह मुद्रित चिट्ठयाँ धरे राजपथ के किनारे खड़े हैं। एक बोला-भाई वाह-क्या छवि है? महात्मा तुलसी कह गये हैं-सम समधी देखे हम आजू-सही है साँप का मुँह साँप ही सूँघ सकता है। वह जेब में रखे निमंत्रण-पत्र को उँगलियों से सहलाने लगता है। कल यह पत्र उसे फ्रेम में जड़वाना है।

शाही सवारी देखने के लिए जन-समुद्र ठाठें मार रहा है। जाने कहाँ-कहाँ से जनम-जनम के भिखमँगे किस्म के लोग अपनी दयनीयता को भरसक छिपाते हुए ठीक-ठाक या फिटफैट आवरण धारण कर जमा है। आतिशबाजी जारी हैं। क्यों कर रहे हैं ये लोग आतिशबाजी? नहीं, ये सिर्फ श्रद्धा नहीं है, उस हवा का भी असर है जो बह

रही है। पड़ जाएँ कहीं हुज़ूर की निगाह में? नाम भी पूछ लिया तो धन्य-धन्य हो जाएँगे। नाम के सहारे कुछ तो जुगाड़ कर ही लेंगे।

पर उसे क्या जुगाड़ करना है? वह तो अपने परिवार का पेट भर ही रहा है। बहुत से लोगों की तुलना में अच्छे तरीके से। उसके लिए तो कोई चिंता भी नहीं, चांस यानी भाग्य। वह थोड़ा-सा ही सही सोचता क्यों है। चांस की फिराक में क्यों नहीं रहता? यह सोचना ही तो चांस को मार देता है।

पत्नी और बच्चों को एक परिचित घर के छज्जे पर लटकाकर वह सड़क पर आया। सड़क के दोनों ओर सिर-ही-सिर, हर दस कदम पर डंडाधारी वर्दी-बीच की सड़क 'पंद्रह फुट' साफ रखने के लिए। दबाव सड़क की ओर बढ़ता तो डंडा पीछे धकेल देता। शाही सवारी आने में अभी काफी देर थी, लालबत्ती वाली गाड़ी थोड़ी-थोड़ी देर बाद बीच की खाली सड़क पर दौड़ते हुए प्रशासन की सतर्क उपस्थिति की याद दिला जाती थी। नगर की जनता धैर्य के साथ बतियाते-गलियाते किनारे जमी थी।

कोई बोला, ''यार बड़ा चुतियापा है। कब से खड़े हैं। अभी तक आ जाना चाहिए था टाइम के हिसाब से।''

''क्यों, क्या तुम्हारे नौकर हैं जो तुम्हारी घड़ी की सुई के साथ चलें? अरे ब्याह-बारात की ठसक का मामला है, फिर राजाओं के रेले ठहरे'', दूसरे ने कहा।

''नहीं मेरा मतलब अखबार में छपे कार्यक्रम से था।''

''ठीक है। अखबर तुम्हारे मतलब से निकलता है?''

''यार! अखबार पढ़ते तो हमीं है ना?''

''माना-पढ़ते हो। पर किसके बारे में पढ़ते हो?''

''मतलब खबरें तो होती ही हैं।''

''कौन साला कहता है कि नहीं होतीं। यही न कि फलाँ साहब को छींक आ गई, ढिमके साहब छुट्टियाँ मनाने किसी खास जगह गए। उन साहब ने गिरफ्तारी दी। वे साहब वाक् आउट कर गए। इन्होंने वक्तव्य दिया, उन्होंने रैली का नेतृत्व किया।''

ऐसे अवसरों पर समय काटने का, चर्चा से अच्छा कोई साधन नहीं होता। यही पता लगता है कि घुग्घू से लगने वाले और साहब के डर से बार-बार पेशाबघर की यात्रा करने वाले व्यक्ति के भी अपने मौलिक विचार होते हैं। यहाँ तक कि उसे कुर्सी पर बिठा दिया जाए तो सरकारें तक मज़े में चल सकती हैं।

'खाली बैठा बनिया सेर बाँट ही तौले वाले' अंदाज में कुछ और लोग भी हल्के-हल्क मुस्कराते चर्चा की ओर आकर्षित हो गए। गुट्ट-सा जमने पर कुछ दूर के तमाशाइयों की छठी इंद्रिया जागी। "वहाँ क्या हो रहा है?" वे उस तरफ बढ़े-कुछ और लोग भी बढ़े, "क्या हुआ भाई?"

"पता नहीं" एक आदमी जो पंजों पर उचक-उचक कर टोह रहा था 'बोला'। भीड़ का एक हिस्सा उस ओर बढ़ने लगा। दूर-दूर से निगाहें उधर ताकने लगीं। 'ला एंड आर्डर' का खतरा भाँप कर छोटा दरोगा कुछ डंडों के साथ लपका। वह पीछे था-आगे आदमियों की गाँठ थी। डंडों ने थोड़े से चमत्कार का प्रदर्शन किया तो गाँठ ढीली पड़ गई। अपने चूतड़ों को सहलाता वह जैसे-तैसे किनारा पकड़ पाया। नहीं! यहाँ एक जगह खड़े रहना ठीक नहीं। इससे तो अच्छा कि वह सवारी के रास्ते आगे बढ़े। अभिवादन और श्रद्धा स्वीकारते हुए 'हुजूर सवारी' को यहाँ तक पहुँचने में जाने कितनी देर लगेगी? कुछ आगे बढ़ लें तो देखकर वह जल्द घर लौट लेगा। बाजार की रौनक भी दिखाई आएगी। वह बढ़ लिया।

शाही स्वागत में मुख्य मार्ग जगर-मगर हो रहे थे। अनगिनत झालरें बल्ब रीतिकालीन कविता की भाँति चकाचौंध मार रहे थे। विद्युत विभाग पूरी तरह मुस्तैद था कि आपूर्ति में बाधा न आए। जनता की खुशी में खलल न पड़े, अत: सीधे खंभों से बिजली लेने की मौत स्वीकृति थी। गलत सही बिल आने का कोई खतरा नहीं था बिजली जी भर लुट रही थी। यह विवाह बार-बार होना है क्या?

बाँस बल्लियाँ, लोहे के पाइप सड़क की देह पर किए गए छेदों में ठुके अभिनंदन के भार से झुके-झुके पड़ते थे, हजारों बैनर 'स्थाई' थे। जिन्हें कहीं भी... कभी भी, किसी के लिए भी लटका लो। उसी संख्या में नई-से-नई प्रांजल और चिकनी भाषा में दमकते पोस्टर और बैनर फूल-पत्तियों के बीच दाँत निपोरते जान पड़ते थे। कई स्वागत द्वार तो इतने कीमती कि जिनकी लागत में 'बेचारे बापों' की दो-दो लड़कियाँ निपट जाएँ। पेड़ों से नोची-खसोटी हुई हरियाली मार्ग पर बिखेर दी गई थी। ऊँचे भवनों के आस-पास परिंदे चक्कर काट रहे थे। ठूँठ हुए पेड़ों के बीच उनके घर की पहचान खो गई थी।

धक्के खाते, धकियाते और बचते घिसटते हुए वह उल्टी दिशा में सरकता गया। मार्ग पर प्रतीक्षा बिखरी पड़ी थी। जो पिछले कुछ दिनों से ज्यादा ही गहरा गई थी। जन्म, मरण, चोरी, डकैती, बलात्कार दो-तीन दिन से बिल्कुल बंद थे। अखबारों और चर्चाओं में सिर्फ शादी थी। आज तो उत्सुकता का चरम था और सारे शहर में आदमी

के नाम पर सिर्फ हुजूर थे।

वह सुस्ताने के बहाने एक जगह ठहरा। शिष्ट से दिखने वाले तीन-चार लोग कुछ हटकर खड़े थे, भद्रजनोचित दूरी रखकर वह भी खड़ा हो गया। चार समझदार किस्म के लोगों के बीच विचारों का आदान-प्रदान जरूरी होता है। वे भी कर रहे थे। "क्यों भाई शैवाल जी! नमक तो अब बड़े-बड़े पूँजीपति भी बनाने लगे हैं। हमारे भी टाटा की थैली आती है। पर ससुरा पता नहीं। इस खानदान के नमक में ऐसी, क्या बात थी कि पीढ़ियाँ बीत गयीं फिर भी शहर का आदमी कहेगा कि 'हुजूर का नमक खाया है' जाने किस प्रयोगशाला में बनता था इनका नमक?"

शैवाल जी ठहाका लगाते बोले, "चचा! नमक बड़ा महिमावान पदार्थ है। वाज़िद अली शाह का नाम सुना है? उसे भी छोड़ो, अपने बापू कोई चूतिये ही थे कि यूँ ही नमक आंदोलन चलाते।" चचा मुँह फाड़कर शैवाल जी को देखने लगे। बग़ल के सज्जन दाढ़ी के बाल नोचते बोले, "चाचा! नमक-वमक कुछ नहीं, जनता भी समझदार हो चली है। यह सब कौतूहल प्रियता है। लोग दी ग्रेट जैमिनी सर्कस देखने के मूड में हैं। सुना है कि हिंदुस्तान भर के राजे-रजवाड़ों ने अपनी-अपनी पगड़ियाँ, अँगरखे तहखाने की संदूकों से निकाल धो-पोंछकर पहने हैं। थोड़ी ही देर में सड़क पर आपको अठारहवीं सदी नजर आएगी। लोग अठारहवीं और इक्कीसवीं सदी का 'कांबिनेशन' देखने खड़े हैं।"

"सवाल लोकतंत्र का है।"

"लोकतंत्र! क्या चीज है यह? आदरणीय यह एक शब्द भर है जिसे उछाला जा सकता है, चुभलाया जा सकता है। इसके नाम से तुम अपने विरोधी पर हमला कर सकते हो। ताकत हो तो लतिया भी सकते हो। लोकतंत्र, समाजवाद वगैरा आज के 'अल्लाहो अकबर' और 'हर-हर महादेव' हैं।"

शैवाल जी बहस को भटकती देख मुद्दे पर लाए-"दरअसल इसे लोकप्रियता से जोड़ना ग़लत है। अजूबे को देखने के लिए भीड़ उमड़ती ही है। आप प्रचारित कर दें कि शहर के फलाँ मैदान पर सरे-आम फाँसी लगाई जायेगी। देखिए भीड़। शहर के चूहे तक वहाँ पहुँच जाएँगे या प्रचार हो जाए कि सौ या पचास आदमी नंगे होकर ढोल-नगाड़े बजाते गुजरेंगे। इससे दुगुनी भीड़ देख लेना। दरअसल लोग ढर्रे की ज़िंदगी में कुछ चेंज चाहते हैं, उत्तेजक किस्म का कुछ भी। रोज़-रोज़ का वही गीत है कि हाय महँगाई, हाय भ्रष्टाचार, हाय पतन, बीवी, बच्चे, घर, ऑफिस, अफ़सर, डरना-भभकना।

स्वयं कुछ बदलाव ला नहीं पाते तो कोई और ही ला दे। उनके लिए घंटे-दो-घंटे का तमाशा भी महत्त्वपूर्ण हो गया है।''

इन्हें खंभा नोचता छोड़कर वह बढ़ लिया। मार्ग के दोनों ओर छज्जों, बलकनियों पर महिला वर्ग अपने परंपरागत धैर्य के साथ पूरी राजी-खुशी सहित जगह-जगह डटा हुआ था, लगता था कि ये किसी भी घटना की महीनों इसी तरह प्रतीक्षा कर सकती हैं। वह दृश्यों पर दृष्टि फटकारता जा रहा था कि कंधे पर दबाव पड़ा। क्षण के किसी सौवें या हजारवें अंश को उसे गुदगुदी पैदा हुई। किसी कोमल हथेली का स्पर्श! दबाव बढ़ा। ''क्यों? हम भी तो खड़े हैं, राहों में'' वह मुड़ा। ''अरे तुम?''

''हाँ कभी-कभार हम पर भी नज़र डाल लिया करो'' ये नागेश जी थे। स्थानीय अबखार के नगर प्रतिनिधि। महत्त्वपूर्ण व्यक्ति थे, कुछ मस्त तबियत के भी। दोस्तों के बीच स्वयं को 'नरक प्रतिनिधि' कहते थे-कड़की के दिनों में कुर्रा कर और गीले समय ब्याज स्तुति से। बोले-''कहो क्या राय है?''

उसने कहा-''अपना क्या? राय तो तुम्हारी मालूम होनी चाहिए? वही महत्त्वपूर्ण है।''

साथ चलते-चलते नागेश जी ने कहा, ''दोस्त? अपनी राय तो कल सबको मालूम हो जाएगी। हाँ, मेरी नहीं, अखबार की अर्थात् मालिक की-सेठ की।''

''सेठ की क्यों। तुम्हारी क्यों नहीं?'' उसने उन्हें घूरा।

''तो सुनो एक किस्सा। निराला पर अखबार में एक अच्छा लेख छपा।''

''हाँ तो?''

''टोको मत-सुनो। दूसरे दिन कुछ समझदार लोगों की प्रशंसा भरी चिट्ठियाँ आयीं, दो-चार फोन भी। अखबार सेठ अक्सर प्रधान या मुख्य संपादक कुछ न कुछ होते ही हैं, सो वे प्रसन्न भए। मदगदायमान होकर उन्होंने अपने लेखक कर्मचारी को तलब किया उससे शाबासी का पहला ही शब्द कहा था कि कहीं से फोन आया-वे सुनते रहे...लगभग पटकने के अंदाज में उन्होंने फोन रखा-''तो ये पाँच कालम का अधपेजी लेख आपने लिखा था?'' सेठजी की प्रसन्नता की सूचना लेखक कर्मचारी को मिल चुकी थी, वह सम्मान में दुहरा हो गया-''जी बाबूजी।''

''और जो रंग श्री मिल के मैनेजर साहब ने क्रिकेट टूर्नामेंट का उद्घाटन किया था, खिलाड़ी भावना पर भाषण दिया था? उनकी फोटो?''

''उस खबर को कभी भी दिया जा सकता है। उस दिन 'निराला जयंती थी।'''

''तो भाई साहब! आप ऐसा करें कि ये 'निराला' कौन हैं उससे दस हजार के विज्ञापन ले आएँ।'' सेठजी ने कहा।

लेखक सिटपिटा गया। सेठजी ही बोले, ''भाई साहब जब आप 'निराला' या जो भी हो, उससे विज्ञापन तक नहीं ला सकते तो हमारा दिवाला निकलवाने पर क्यों तुले हैं? अगर यह तुम्हारा रिश्तेदार हो तो चलो डाल दो इसकी खबर भी। पर भाई साहब इसके लिए पाँच कॉलम और आधा पेज बरबाद करने का हक आपको किसने दिया?''

''समझे श्रीमान्'' नागेश जी ने उसका हाथ झकझोरा-''देश-विदेश के कई पत्रकार इस समय शहर के आतिथ्य का सुख उठा रहे हैं। वर-वधू दोनों पक्ष दाता-खानदान हैं। ये अखबारी कलम का जमने के लिए इस्तेमाल करना चाहते हैं, तो इन्हीं जैसे दूसरे उखाड़ने के लिए। समर्थन और विरोध दोनों के लिखने वाले तय हैं। दोनों ओर से पाँच सितारा सुविधाएँ उपलब्ध कराई गई हैं।''

''तुम्हें भी तो प्रसाद मिल रहा होगा?'' उसने पूछा।

''तुमने वह कहावत नहीं सुनी? गाँव का जोगी जोगना, आन गाँव का सिद्ध।'' बात कुछ और आगे बढ़े कि दोनों के बीच भारी भरकम-सी वर्दी आ गई। नागेश जी को शहर कोतवाल से हाथ मिलाता छोड़ वह तेजी से आगे बढ़ गया।

वी.सी.आर. पर 'रामायण' का रंगीन प्रदर्शन काफी भीड़ को आस-पास समेटे था। कोई सज्जन दुखी हो रहे थे कि यह ससुरा बाज़ी मार ले गया, भीड़ के कारण हुज़ूर का ध्यान इधर जरूर जाएगा। अपने मंडप पर इससे चौथाई जमाबड़ा भी नहीं। उनके अंतरंग से दिखने वाले ने सलाह दी ''ऐसा करते हैं बॉस। अभी पंद्रह-बीस मिनट का टाइम है, अपन लाकर ब्लू फिल्म चढ़ाए देते हैं, चिड़िया भी 'रामायण' के पास रुक जाए तो नाम बदल देना।'' सलाह पर मुस्कराता वह बढ़ा तो शाही सवारी की धूम थी। अजीब दृश्य था-अभिवादन और अहसान के बोझ से फूलों के साथ बिछी-बिछी जाती प्रजा और प्रजा परायणता को स्वीकारते हुजूर। मोतियों, हीरों जाने किन-किन चमकने वाले पत्थरों की झालरों में लिपटी पगड़ी और पोशाक। आँखों पर सूरज की रोशनी के साथ रंग बदलने वाले काँचों का चश्मा। जुड़े हुए आश्वस्त हाथ। उनकी बगल में भी हुजूर याने पूरी प्रजा के समधी। अगले वाहन में दिव्य दर्शन देते वर-वधू। छायाकारों, फिल्मकारों की गाड़ियों से चकाचौंध उगलते कैमरे, अनगिनत साफे, अँगरखे, तलवारें, कटारें, पानदान, पीकदान और सबसे पीछे हाथ जोड़े नगर का भविष्य यानी

हुज़ूर के उत्तराधिकारी-युवराज। आगे-पीछे, अगल-बगल वर्दी, डंडे और संगीनें।

उसे एक और अनुभव से साक्षात्कार हुआ। वह हतप्रभ था। वह कुछ भी तय नहीं कर पा रहा था। जाने वह चल रहा था या खड़ा था या भीड़ के साथ लुढ़क रहा था।

वह किसी से टकराया-''अंधे हो गए? दिखता नहीं क्या?'' बारीक आवाज... उसे भय ने धर दबोचा-अगर वह चप्पल उतार ले तो? घिघियाते हुए उसने 'सॉरी' कहा और रेला निकल जाने की प्रतीक्षा करने लगा। उसके मफलर को उसाँस से छूती कोई कालेजी तरुणी-अपनी साथिन से 'कमेन्ट' कर रही थी-''सच्चे-ई-ई। इसको कहते हैं शादी। पार्टनर! हो तो ऐसी हो। वरना-हाय?''

''तो चढ़वा दें, तेरा भी नाम दहेज की लिस्ट में। तू भी क्या याद करेगी बोल?''

एक शैतान ख्याल उसके मन में आया कि शहर की जाने कितनी लड़कियाँ और महिलाएँ इन ललुआते और चमकते चेहरों में अपने पति की कल्पना कर रही होंगी। सबके सामने तो ये देवरूप में दर्शन देते हैं। रात-दिन रोटी की तलाश में झुलसा और बुझा घरेलू चेहरा इनके मुकाबले क्या टिक पाएगा? शहर की वर्णसंकरी इच्छा के ख्याल ने उसे बेचैन कर दिया। उसकी पत्नी भी तो इन्हें देखने बैठी है-वह घबराया सा बच्चों को घर ले जाने के लिए लपका।

शाह और शाही दंपत्ति को घूमकर जाना था, इसने सीधी सँकरी और उबड़-खाबड़ गली पकड़ी। शहर के भूगोल से वह परिचित है। ऐसी हजारों अँधेरी गलियाँ हैं जो पीछे बंद है ओर आगे राजमार्ग पर खुलती है। कुछ बीच की सड़कें भी हैं। बीसेक मिनिट में उसने रास्ता काटा होगा कि गली के राजमार्ग वाले मुहाने से लोग बदहवास, हाँफते, पीछे मुड़-मुड़ देखते गली में धँसे चले आ रहे थे जैसे यह उनकी सुरक्षा का किला हो-''क्या हुआ भाई?''

''पता नहीं उधर कुछ है-'' धौंकनी के साथ एक ने इशारा किया।

''वहाँ राजमार्ग पर?''

''हाँ वहीं-वहीं'' भागने वाला अब कुछ इतमीनान में था।

''उधर तो सवारी आ रही है, पुलिस लगी है'' बात पूरी होती कि एक देहरी पर आधे अंदर आधे बाहर नागेश जी दिख गए। वह तेजी से उनके पास पहुँचा। घबराहट तो नागेश जी के चेहरे पर भी थी, किंतु उसे देखते ही खिल गए-''अरे कहाँ जा रहे हो? खोपड़ी खुलवानी है क्या? उधर पुलिस रिहर्सल कर रही है।''

''वजह?''

''वजह है मुर्दा। घबराओ मत, अभी तुम्हारा नंबर नहीं आया। इधर आ जाओ वत्स। तुम्हारी जिज्ञासा शांत करूँ-हाँ ऐसे! अच्छे बच्चे की तरह सुनो! विश्वस्त सूत्रों के अनुसार कल सायं इस अँधेरी गली में किसी जर्जन नाव का इकलौता खेवनहारा मर गया। घर, कोठरी, या दड़बा में एक अदद लाश और रेजगारी की कीमत के तीन-चार अदद बच्चे। मुर्दे की बीबी, बर्तन माँजने का व्यवसाय करती है-वह अपनी साइट पर गई थी। लौटी तब तक सड़कें रोशनी के दूध में स्नान कर चुकी थी। रात में अंत्येष्टि जैसा महँगा समारोह संपन्न करने की कूबत मुर्दे की बीबी में थी नहीं। गाँव में परिवार वालों को भी खबर करनी थी। रात बीती। दिन आया। शाही शादी का मजा छोड़कर गाँव में खबर करने कौन जाता? खैर जाने कैसे खबर हुई-गाँव से दो-तीन सदस्यीय प्रतिनिधि मंडल आया। अर्थी रस्म हुई। तब तक सूर्य भगवान विश्राम करने चले गए। अब भाई साहब! ये जीव कोई राजा या नेता, तो था नहीं कि रसायनों के उपचार द्वारा अंतिम दर्शनों के लिए रखा जाता। जाड़े की अगली रात के चौदह घंटों और ठंडी सुबह के तीन घंटे मिलाकर कल तक लाश बदबू मारने लगती। सो तय पाया गया कि शाही सवारी आने से पहले ही उसे ठिकाने लगा लिया जाए।

अब श्रीमान् को हम वहाँ लिए चलते हैं, जहाँ शाह, हुज़ूर नंबर एक, दो, तीन, चार आदि चल रहे हैं। बिजली विभाग ने आज के खेल के लिए एस्ट्रोटर्फ इंतजाम किया है। लोग जीभर सुट्टे मार रहे हैं। सरकारी प्रेस की बगल में किसी खंभे, दुकान, स्वागत द्वार, राम जाने कहाँ आग लगी कि खतरा भाँपकर प्रशासन ने शाही सवारी बीच की सड़क से मोड़ दी। उधर लोग निराश भले ही हुए हों कि लाखों की लागत से सजे-धजे स्वागत द्वार धरे रह गए, पर पूरे तीन किलोमीटर का चक्कर बच गया। यूँ यहाँ तक आते-आते सवारी को देर लगती पर शार्टकट के कारण वह जल्दी ही आने को है और इधर से मुर्दा घुस पड़ा। जाना तो दोनों को एक ही रास्ते से है। प्रशासन के समक्ष गहन समस्या उपस्थित हो गई है कि पहले मुर्दा जाए या शाही सवारी। और प्यारे भाई! जब प्रशासन का दिमाग काम करना बंद कर देता है तो लाठी काम करने लगती है।''

''तुम्हें पड़ गई क्या?'' उसने पूछा।

''हो भी सकता है-शीघ्र पता नहीं चलता। चोट हमेशा बाद में तकलीफ देती है। अब चलो, मुझे पत्रकारिता भी करनी है।'' नागेश जी उसे खींचने लगे, वे गली के मुहाने पर पहुँचे। उचक-उचक कर देखने से पता चला कि अर्थी बदस्तूर बीच मार्ग पर

पड़ी है। कंधा देने वाले निरीह याचना से पुलिस और भीड़ की ओर बारी-बारी से टुकर-टुकर कर लेते हैं। आठ-नौ वर्ष का एक बालक मुँडे सिर पर सफेद कपड़े का टुकड़ा लपेटे हाथ में धुँधुआती हंडिया लटकाए खड़ा है। ये पाँचों प्रणी और छठा मुर्दा पुलिस के घेरे में हैं। दरोगा, नगर निरीक्षक, डिप्टी सब परेशानी में डूबे दिखाई दे रहे थे। पुलिस के घेरे पर दर्शकों का घेरा था। शाही सवारी की प्रतीक्षा में हो रही कोफ्त छंट गई थी-यह फिल्म के पूर्व, ट्रेलर जैसी व्यवस्था थी। नागेश जी ने थैले से डायरी निकाल हाथ में ली-''जरा हटिए प्लीज? इन्हें निकलने दीजिए। हटो भी, सॉरी'' आदि कहते वे अर्थी तक पहुँच गए। इतने में ही सायरन बजाती लाल बत्ती वाली गाड़ी आकर रुकी- पुलिस कप्तान और डी.एम. उतरे। बजती हुई एड़ियों को अनसुना कर कप्तान ने नगर निरीक्षक को घूरा जैसे जवाब तलब कर रहे हों। अटेंशन की मुद्रा में उसने रिपोर्ट दी, ''सर अर्थी है।''

''किसकी...?''

''कोई आदमी है, कल मरा था।''

''कोई पालिटिकल स्टंट तो नहीं? ऐसा न हो कि वह उठ खड़ा हो...''

''नो सर! सचमुच की लाश है।''

''ओ.के., तुरंत ठिकाने लगाओ। पर देखो वक्त नहीं-लो वे आ गए। कुछ भी करो लाश दिखनी नहीं चाहिए। हरी अप...देखना है क्या कर सकते हो'' वे जीप में बैठ रास्ता साफ करवाने मुड़ लिए।

नगर निरीक्षक की अंतर्दृष्टि के सामने पुलिस पदक लहराया। जयघोष से आसमान गूँजने लगा था। फुलझड़ियाँ, पटाखे, फ्लेश, नगाड़े, चीत्कार, सीत्कार-

शाही दंपत्ति की सवारी गुजर रही थी। मुर्दा बगल की ओर खिसका पुलिस के जवान व्यवस्था में इस तरह सटे खड़े थे कि पीछे की लाश दिखाई न दे सके। जवानों के आगे अर्थी को कंधा देने वाले भी खड़े कर दिए गए। उनके हाथों में फूल थे। सवारी गुजरने लगी-हुजूर के पीछे युवराज...अभिवादन स्वीकारते हुए उनकी निगाह हाथों में पुष्प लिए गुमसुम खड़े छोटे से बालक पर पड़ी...उन्होंने मुस्कराकर हाथ हिलाया..चौंककर लड़के के हाथों ने फूल उछाल दिए।

महेश कटारे

जन्म : 14 जनवरी, 1948

प्रकाशन : समर शेष है, इतिकथा अथकथा, मुर्दास्थगित, पहरूवा, छछिया भर छाछ (कहानी संग्रह) महासमर का साक्षी (नाटक), पहियों पर रात दिन (यात्रा वृतांत)

सम्मान : शमशेर सम्मान, सारिका सर्वभाषा कहानी प्रतियोगिता प्रथम पुरस्कार, मुक्तिबोध पुरस्कार, वागेशरी पुरस्कार, सुभद्रा कुमारी चौहान पुरस्कार, कथाक्रम सम्मान, चक्रधर सम्मान

खरगोश

–प्रियवंद

हमारे घर बिल्कुल सटे हुए थे। किसी पुरानी हवेली को जबर्दस्ती बाँटकर बनाए गए दो हिस्से। छत...छज्जे...आँगन...फटी दरारों वाली दीवारें...उखड़े फर्श और ऊँची-ऊँची छतों और हवादार खिड़कियों वाले विशाल पुराने कमरे। दोनों हिस्सों को बाँटने वाले आँगन के बीच में एक दीवार और उस दीवार में एक छोटा-सा दरवाजा था, जिससे एक-दूसरे के घरों में जाया जा सकता था। एक घर में मैं था और दूसरे में अविनीश भाई।

उस समय मेरी उम्र ऐसी थी जिसमें हर बालक का एक महानायक होता है। दुर्धर्ष...अदम्य...अपराजेय...दिव्य। अविनीश भाई मेरे नायक हुआ करते थे। साफ सफेद रंग...विद्वान...संतुलित...स्थितप्रज्ञ युवक का आभास देते थे वह। मेरी दृष्टि में संसार का कोई पराक्रम नहीं था जो अविनीश भाई न कर सके। मेरे लिए वह किसी भी देवता से सुन्दर थे। जैसी कि वह अवस्था होती हे, मैं उन पर मोहित था। चुपचाप बैठकर उनको देखने में भी एक सुख मिलता था। उनकी भंगिमाएँ, उनकी मुद्राएँ...बातचीत में काँपते होंठ...हाथों की उँगलियाँ...विचारवान आँखें। अविनीश भाई मेरी अंतिम शरण थे। उनकी बात मेरे लिए सृष्टि का अन्तिम सत्य थी। पतंग के कन्ने बाँधने से लेकर पिशाच साधने तक मैं हर गुत्थी के लिए अविनीश भाई के पास दौड़ता था।

हमारे घरों में बीच का वह छोटा दरवाजा हर समय खुला रहता था। सुबह या शाम या रात, किसी भी समय में आँगन पार कर उसी दरवाजे से होता हुआ ऊपर अविनीश भाई के कमरे में घुस जाता था। अविनीश भाई भी दुलार करते थे मेरा। बिस्तर में दुबकाकर चिपका लेते थे और दुनिया भर की बातें बताते थे। उनका कमरा किताबों से

भरा रहता था। अविनीश भाई मेरे खाने के लिए हमेशा कुछ रखते। मीठी गोलियाँ...काजू या किशमिश। जेब से कुछ न कुछ निकालकर मुझे दे देते।

मैं अपने घर में कम अविनीश भाई के साथ ज्यादा लटका रहता था। ''अविनीश भाई,'' मैं शाम को चार बजे तपती धूप में उनके कमरे में पहुँच जाता। वह कुछ पढ़ रहे होते।

'आओ बन्टू' वह मुस्कराकर मुझे चिपका लेते और फिर पढ़ने लगते। मैं किताब छीन लेता।

''पढ़ना बन्द अविनीश भाई,''

''क्यों?''

''पास की नीली छत वाले ने कल मेरी तीन पतंगें काट दीं।''

''तो?''

''आज उससे हिसाब बराबर करना है...तुम चलो।''

''कहाँ?'' अविनीश भाई पूछते।

''छत पर...पहले उसकी तीन पतंगें काटो चलकर।''

''पर जरूरी नहीं है कि काट ही दूँ...कट भी सकता हूँ।''

''नहीं'' मैं अंधविश्वास से उनको देखता ''तुम्हें कोई नहीं काट सकता, चलो।'' मैं उनको खींचता।

''पर शाम तो होने दो।''

शाम को मैं छत पर अविनीश भाई को ले जाता। सीना फुलाए...श्रेष्ठता के विजयी भाव से भरा। मैं चरखी दिखाती...अविनीश भाई पतंग बढ़ाते। नीली छत वाला भी उड़ाता। अविनीश भाई एक के बाद एक उसकी पाँच पतंगें काटते। मैं उत्तेजना...उत्साह और आनंद से हर बार चीखता...तालियाँ पीटता। मेरी आत्मा में अविनीश भाई की शक्ति उतर आती, इसलिए कि जो सामर्थ्य...जो श्रेष्ठता अविनीश भाई के पास है वह सब मेरी है...क्योंकि अविनीश भाई मेरे हैं।

अकसर शाम को अविनीश भाई ऊपर छज्जे से मुझे आवाज देते। उनकी आवाज सुनते ही मैं सब छोड़कर दौड़ पड़ता। ''चल घूम आयें'' वह नीचे आकर मेरा हाथ पकड़ लेते, ''माँ से कह दे।'' मैं आँगन से ही चीखकर माँ को बता देता। माँ मेरे पीछे

बकती...झकती...माथा पीटती...मेरे घूमने को कोसती, पर मैं कूदता हुआ अविनीश भाई के साथ निकल जाता। हम बहुत देर तक घूमते रहते। डूबते सूरज की लाली में...ठंडी काँपती रातों में...कभी बारिश में भी। बाजारों में...गंगा किनारे...नाव पर...कभी पुराने किले में...कब्रिस्तान में और कभी किसी पेड़ के नीचे। अविनीश भाई मुझे कितना कुछ बताते रहते। ''इंसान का दिल उसकी पूरी जिंदगी में दो हजार करोड़ बार धड़कता है...कि मादा मच्छर बस तीन दिन जिंदा रहती है और इन तीन दिनों में पैदा लाखों मच्छर पैदा करके मर जाती है...कि हाथी के पैर में कोई हड्डी ही नहीं होती...कि केवल जिराफ ऐसा जानवर है जो तैर नहीं सकता...कि चाँद से जमीन को केवल चीन की दीवार दिखती है...कि दुनियाँ के किसी भी राडार या कंप्यूटर से तेज दिमाग चमगादड़ का होता है जो अंधेरी छोटी गुफाओं में तेज रफ्तार से उड़ता रहता है, पर कभी किसी दीवार से नहीं टकराता।'' मैं हैरानी से मन्त्रमुग्ध-सा सुनता रहता। कहाँ सीमा है अविनीश भाई की...कितना जानते हैं...। क्या कोई उनसे भी श्रेष्ठ हो सकता है?

वे जाती हुई सर्दियों के दिन थे। दिन भर तेज हवाएँ चलतीं और पेड़ों के सूखे पत्ते टूटकर गिरते रहते। पाँवों के नीचे चटकते...चीखते...। दिन खाली-खाली, लंबे और उबाऊ होने लगे थे। मैं सुबह से ही शाम होने का इंतजार करने लगता, क्योंकि सर्दियों के बाद के साफ खुले आसमान पर पतंगें उड़ना शुरू हो गई थी।

उन्हीं दिनों एक शाम को अविनीश भाई मुझे ऊपर से आवाज दी।

''बन्टू।''

मैं बाहर आँगन में आ गया। छज्जे पर अविनीश भाई थे।

''क्या कर रहे हो?''

''पतंग जोड़ रहा हूँ।''

''चल...बाहर चलें।''

मैंने सर हिलाया। नीचे आकर अविनीश भाई ने मेरा हाथ पकड़ा और गली के अन्दर बाहर ले आए।

हमारी गली के बाहर सड़क की दुकानों के आगे कई चबूतरे बने थे। कई तरह के कई आकार के। रात को उन चबूतरों पर मुहल्ले के हलवाइयों की दुकान पर काम करने वाले छोटे लड़के...या भिखारी सोते थे। दिन भर चलते-फिरते लोग कुछ देर बैठकर दम लेते...पानी सिगरेट पीते या मुहल्ले के बेकार लड़के शतरंज खेलते...ताश पीटते या सस्ती किताबें पढ़ते। वहीं एक चबूतरे पर अविनीश भाई बैठ गए। मैं भी उनके साथ

चिपक गया। अविनीश भाई कुछ बोल नहीं रहे थे, चुपचाप सामने देख रहे थे। कितनी देर यूँ ही देखते रहे। कभी-कभी गर्दन घुमाकर दाएँ देख लेते।

मैं ऊबता-सा कभी सामने सड़क पर गुजरती भीड़...कभी धूप की बढ़ती छाया और कभी ऊपर आकाश की पतंगें देख रहा था। अचानक अविनीश भाई उठ गए।

''चल...पतंग उड़ाएँ।''

''पर अब तो सब उतार रहे हैं।'' मैंने बुरा-सा मुँह बनाया।

''अभी अँधेरा होने में देर है...चल।''

''पर क्यों...हम अभी कहीं घूमने भी नहीं गए?''

''फिर कभी।'' अविनीश भाई ने मुझे पकड़ा और लगभग घसीटते हुए घर ले आए।

पतंग...माँझा...चरखी लेकर मैं उनके साथ छत पर पहुँच गया। छत की एक ऊँची मुंडेर पर अविनीश भाई बैठ गए।

''तुम बढ़ाओ...मैं देख रहा हूँ।''

मैंने पंतग बढ़ानी शुरू की और बढ़ाता गया। बीच-बीच में अविनीश भाई को देख लेता। वह मेरी तरफ पीठ किए बैठे थे...सामने मकानों को देखते हुए। थोड़ी देर बाद ही अँधेरा घिरने लगा। चीखते हुए तोते पेड़ों को वापस लौट रहे थे।

''एक तोता फँसाऊँ?'' मैंने चिल्लाकर पूछा।

''नहीं...चलो...'' अविनीश भाई अब उठे, ''लाओ, मैं चरखी कर लूँ।'' मैंने पूरी पतंग खींची...अविनीश भाई ने चरखी की। लगभग होते हुए अँधेरे में हम नीचे आ गए।

यही दूसरे दिन भी हुआ...तीसरे दिन भी फिर हम शाम होने लगा। मैं ऊब गया इससे।

''यहाँ क्यों बैठते हो अविनीश भाई?'' एक दिन मैंने पूछ लिया।

''बताऊँ।'' अविनीश भाई ने मुझे देखा।

''हाँ।''

''अपनी मृत्यु देखता हूँ।''

''मृत्यु?'' मेरी आँखें फैल गई।

''हाँ।'' अविनीश भाई मुस्कराए।

''क्या मृत्यु दिख सकती है?''

''हाँ?''

''सच बताओ।'' मैं डरकर उनसे और सट गया।

''सच कह रहा हूँ।''

''मुझे भी दिखाओ।''

अविनीश भाई हँस दिए।

मैं चुपचाप सामने सड़क पर देखने लगा। कहाँ हो सकती है अविनीश भाई की मृत्यु? सामने ठेले वाले जल्दी-जल्दी फुटपाथ पर बिछा अपना सामान समेट रहे थे। मदारी झोले में रंगीन पत्थर, जड़ी-बूटियाँ भर रहा था। सांडे का तेल बेचने वाला टूटी रीढ़ वाले गिरगिटान, छिपकलियाँ, लिजलिजे निचुड़े छोटे-छोटे साँप, तेल की शीशियाँ, झोले में भर रहा था। सब्जियाँ...फलों के छिलके, हड़बड़ाते हुए दुकानदार उठा रहे थे। हलवाई की दुकान पर छोटा लड़का ऊँघता हुआ बर्तन माँज रहा था। दूसरा भट्ठी की राख साफ कर रहा था। एक साँड़ लँगड़ाता हुआ जा रहा था। एक बूढ़ा खंभे से चिपका घाव की मक्खियाँ उड़ा रहा था। कोने में एक जवान औरत दूसरी बूढ़ी औरत के सर की जूँ बीन रही थी। एक बच्चा चूहे की पूँछ को रस्सी से बाँधकर उछाल रहा था। सब जीवित था। मृत्यु कहाँ थी? कहाँ थी अविनीश भाई की मृत्यु?

''देख।'' अचानक अविनीश भाई ने मेरी बाँह दबाई। ''वह आ रही है।''

''कौन?''

''मृत्यु।''

मैंने दाई तरफ देखा जिधर अविनीश भाई इशारा कर रहे थे। सड़के के एक ओर सुंदर लड़की धीरे-धीरे हमारी तरफ आ रही थी। हाथों में दबी किताबें छाती से चिपकाए...गोरा रंग...खुले बाल...चमकदार फरफराते कपड़े...और कपड़ों के बीच पेट का थोड़ा-सा खुला हिस्सा। सफेद मुलायम...धीरे-धीरे हिलता, साँस लेता...एक छोटे खरगोश जैसा।

''कौन...यह लड़की?'' कुछ देर मैं उसे देखता रहा फिर धीरे से पूछा मैंने।

''हाँ।''

''यही तुम्हारी मृत्यु है?''

''हाँ।''

''कैसे?''

''उसे देखते ही मेरे प्राण निकल जाते हैं।'' अविनीश भाई धीरे-से हँसे।

''तो तुम रोज इसको देखने के लिए बैठते हो?'' मैंने हैरानी से पूछा।

''हाँ।''

''धत्।'' मैंने मुँह बनाया।

वह लड़की हमारी सामने से निकली। सर घुमाकर उसने एक बार अविनीश भाई को देखा फिर पास की गली में चली गई।

''चलो...छत पर चलते हैं।'' अविनीश भाई चबूतरे से उतर गए।

''अब वहाँ क्या है?'' मैंने ऊबते हुए कहा-''वह तो गई।''

''गई नहीं...चलो।''

हम दौड़ते हुए छत पर आए। मैं अपने गुप्त स्थान से पतंग लेने के लिए लपका।

''नहीं...पतंग रहने दे अब।'' अविनीश भाई ने रोका, ''मेरे साथ बैठ जा और चुपचाप देख।'' अविनीश भाई ने उसी मुँडेर पर मुझे अपने साथ बैठा लिया।

सामने घरों के बीच एक छत पर कमरे के बाहर कुछ लड़कियाँ खड़ी थीं। उनमें वह भी थी। अलग सी, दीवार पर झुकी।

''अरे वही है यह तो...और हमें देख रही है।'' मैं चिल्लाया।

''हमें नहीं सिर्फ मुझे।'' अविनीश भाई मुस्कराए।

''उसे पता है?''

''क्या?''

''यही कि तुम उसे देखने के लिए रोज बैठते हो।''

''हाँ।''

''उसे पता है कि वह तुम्हारी मृत्यु है?''

''नहीं।''

''फिर?''

''फिर क्या?''

''कब तक ऐसे बैठोगे?''

अविनीश भाई कुछ नहीं बोले।

''छत पर क्या है?'' मैंने उँगली उधर दिखाई।

''नाच सिखाने का स्कूल है।''

मैं चुप हो गया। मैं उसे बिल्कुल साफ देख पा रहा था। तेज हवा में उड़ते उसके खुले बाल...गोरा रंग...। उसने एक बार अविनीश भाई को देखा फिर अंदर चली गई।

''वह क्यों चली गई?'' मैंने पूछा।

''उसकी क्लास शुरू हो गई और हमारी क्लास खत्म'' अविनीश भाई ने मुझे ढकेला। मैं मुँडेर से कूदकर उतरा और अविनीश भाई के साथ लटक गया।

तोते फिर घरों को लौट रहे थे। आज पतंग नहीं थी इसलिए मैंने उन्हें फँसाने के लिए अविनीश भाई से नहीं पूछा।

अब शाम को अविनीश भाई के आवाज देने से पहले ही मैं तैयार रहता। कभी खुद ही उनके पास चला जाता।

''चलो अविनीशी भाई...मृत्यु आती होगी?''

अविनीश भाई खिलखिला पड़ते।

''यू टू...ब्रूटस।''

हम उसी तरह चबूतरे पर बैठते रहे।

''हम कब तक इस तरह बैठते रहेंगे?'' एक दिन मैंने पूछ लिया।

''क्यों?''

''कुछ होता ही नहीं। बस आओ...यहाँ बैठकर देखते रहो...फिर छत पर बैठो, देखते रहो। इस तरह देखने से क्या मिलता है तुम्हें? न पतंग उड़ाना न घूमना...।''

''तू भी तो देखता है।'' अविनीश भाई ने जेब से एक मीठी गोली निकालकर मुझे दी।

''वह तो तुम दिखाते हो इसलिए देखता हूँ...मुझे क्या।'' मैंने गोली मुँह में रख ली।

''तुझे अच्छी नहीं लगती।''

''लगती तो है।'' मैं झेंप गया। ''पर इससे क्या होता है।''

''इसी से होता है...इतनी सुंदर कोई लड़की देखी है तूने कभी?'' मैं चुप हो जाता। सच यही था कि उसके पेट का वह हिस्सा मुझे भी अच्छा लगता था। मन करता था...मुँह चिपका दूँ उसमें...या चबा लूँ।

''एक काम कर मेरा।'' अविनीश भाई ने जेब से एक कागज निकाला।

''आज वह आए तो जाकर उसे यह दे देना।''

''क्या है यह?''

''चिट्ठी।''

''नहीं।''

''क्यों?''

''मारेगी।''

''नहीं मारेगी।''

''तो तुम दे दो न।''

''मुझे मुहल्ले में सब देखेंगे...तुम बच्चे हो...कोई कुछ नहीं कहेगा।''

''पर उसने पकड़ लिया तो?''

''बस हाथ में देना और भाग जाना।''

''कहाँ?''

''घर।''

मैंने कागज मुट्ठी में दबा लिया।

''एक गोली और दो।''

अविनीश भाई ने जेब से एक गोली और निकालकर मुझे दी। मैंने उस गोली को भी मुँह में रखा और चुपचाप उसका इंतजार करने लगा। थोड़ी ही देर में वह आती दिखाई दी। उसी तरह...कंधों तक खुले बाल, फरफराते कपड़े।

''चल तैयार हो जा।'' अविनीश भाई ने मुझे चबूतरे से ढकेल दिया। कागज मुट्ठी में दबाकर मैं खड़ा हो गया। दौड़ शुरू होने के पहले वाली मुद्रा में। मेरी साँस तेज चलने लगी...बदन फूलने-पिचकने लगा। धीरे-धीरे वह मेरे सामने आ गई।

''दौड़।'' अविनीश भाई फुसफुसाए।

मैं दौड़ा और बिल्कुल उसके सामने जाकर खड़ा हो गया। वह अचकचा कर रुकी और मुझे देखने लगी। मैं पहली बार इतनी पास से उसे देख रहा था। लाल शर्बत में घुला, गुंथा हुआ आटा हो जैसे। खुले बालों के बीच चौड़ा माथा...आँखों में वही जो माँ की आँखों में होता है। हल्के सुनहरे रोओं वाला हाथ...बगल से आती कच्चे दूध की गंध के गुच्छे...और बिल्कुल पास उसके पेट का वह हिस्सा...बिल्कुल जिंदा..एक छोटा खरगोश...धीरे-धीरे काँपते हुआ...गर्म साँस छोड़ता। मैं बिल्कुल उसके पास था। मेरा चेहरा उस तक आ रहा था...इतना पास कि मैं उसे छू सकता था; उसकी गर्मी महसूस कर सकता था। मैं सम्मोहित-सा उसे देखता रहा...जैसे अभी दौड़ेगा वह खरगोश। इतना सुंदर भी कुछ हो सकता है?

''क्या है?'' वह थोड़ा झुकी और धीरे-से बोली...हल्की फुसफुसाहट-सी। चौंककर मैंने हाथ का कागज बढ़ा दिया।

''क्या है यह?'' उसने कागज ले लिया।

''पता नहीं।'' मैंने कहा और मुट्ठी भींचे पूरी ताकत से दौड़ता हुआ घर तक भागता चला आया। अविनीश भाई को पलटकर देखा भी नहीं।

कुछ ही देर में अविनीश भाई भी दौड़ते हुए आए।

''क्या हुआ?'' मैंने भय से पूछा, ''कुछ बोली?'' मैं अभी तक हाँफ रहा था। भय...उत्तेजना से। अविनीश भाई ने मुझे कसकर चिपका लिया।

''चल, छत पर चलकर देखें कि क्या हुआ?''

हम छत पर आ गए और उसी मुँडेर पर बैठ गए। सामने वह खड़ी थी...उसी तरह। हम उसे...वह हमें देखती रही।

धीरे-धीरे अँधेरा उतरने लगा। तोते रोज की तरह चीखते हुए पेड़ों को लौटने लगे...वह खड़ी रही। फिर अँधेरा गहरा हुआ...रात हुई...आस-पास सितारे निकले और चाँद चमकने लगा...वह खड़ी रही। फिर धीरे-धीरे हवा तेज होती गई...जाती हुई सर्दियों की पागल हवा में पेड़ चीखते हुए अपने पत्ते नोच-नोचकर फेंकने लगे...वह खड़ी रही। परिंदों ने पेड़ों में सर छुपा लिए...घरों के चिराग एक-एक करके बुझते गए...वह खड़ी रही। सूरज डूबा, सूरज उगा...फूल खिले...फूल मुरझाए...ऋतुएँ आईं, ऋतुएँ गईं...कई जन्म हुए कई मृत्यु...वह खड़ी रही।

सुबह मेरी आँख खुली तो मैं बिस्तर पर था। पता नहीं कब तक हम बैठे रहे...कब मैं छत पर सो गया...कब अविनीश भाई मुझे गोद में उठाकर बिस्तर पर डाल गए।

दूसरे दिन शाम को मैं फिर निश्चित समय पर तैयार हो गया। उत्सुकता और रोमांच से भरा। अविनीश भाई की आवाज नहीं आई। मैं ही ऊपर उनके कमरे में चला गया। अविनीश भाई पलंग पर लेटे थे।

''अरे...चलना नहीं क्या?'' मैं सिरहाने बैठ गया।

''कहाँ?''

''चबूतरे पर...मृत्यु के आने का समय हो रहा है।''

''अब उसकी जरूरत नहीं है बंटू...'' अविनीश भाई ने मेरी तरफ करवट बदली।

''क्यों?''

''वह नहीं आएगी...आज उससे दूसरी जगह मिलना है।'' अविनीश भाई ने मुझे थपथपाया। मैंने एक बार अविनीश भाई को देखा फिर उठा और नीचे चला आया।

अब मेरे पास करने के लिए कुछ नहीं था। अचानक मैं एकदम खाली-खाली-सा हो गया। हवा से जमीन पर दौडते पत्ते की तरह। दिशाहीन...उद्देश्यहीन...ढकेला जाता हुआ।

धीरे-धीरे मैं अकेला ही गली के बाहर आकर चबूतरे पर बैठ गया। ऊँचे पेड़ की पत्तियाँ हवा में काँप रही थीं। एक कौआ उस पर बैठा चीख रहा था। सामने सड़क पर सब कुछ वैसा ही था। वही ठेले वाले...गाय...जूतों का ढेर लगाए मोची...कूड़े के ढेर...बहती नाली...सामान बेचते फुटपाथ पर लोग। सामने साँडे का तेल बेचने वाला बैठा था। चादर बिछाए, अजीब-अजीब जड़ी-बूटियाँ...सूखे निचुड़े हुए गिरगिटान...साँप...रेंगने वाला कोई और गिलगिला जानवर...किसी डिब्बे से साँप...और गले में पतली रस्सी बाँधे गिरगिटान। छड़ी से वह उन्हें छूता तो वे फुकारते...उछलते। तेल निकाले हुए निचुड़े सूखे को छूता तो वह वैसा ही पड़ा रहता। सामने ढेर में एक सफेद रंग का मोटा-तंदरुस्त साँप था। कुंडली मारे...बीच-बीच में जीभ निकालता। वह आदमी उसको छड़ी से छूता हुआ चीख रहा था, ''यह रेत का साँप है...बहुत भयानक...कभी काटता नहीं। चुपचाप मनुष्य की छाती पर बैठ जाता है और अपने जहर से आदमी की साँसें जहरीली करता रहता है। आदमी को पता भी नहीं चलता कि कब उसके अंदर पूरा जहर फैल गया और कब वह मर गया।'' मैं जुगुप्सा और भय से उसे बहुत देर देखता रहा।

धीरे-धीरे अँधेरा उतरने के साथ भीड़ छटने लगी। सड़क किनारे के लैंप पोस्ट जलने लगे। ठेले वालों ने सब्जियाँ समेटी और लौटने लगे। खाली होती सड़क, ऊपर

से गिरते पीले अँधेरे में गुँथे उजाले से ढक गई। अँधेरे के साथ तेज हवा चलने लगी। अब सामने कुछ भी नहीं था। खाली सड़क...अँधेरा और कहीं-कहीं काँपती परछाइयाँ। रिक्शे पर बैठी बिल्कुल नंगी एक पगली जा रही थी। तनी छातियाँ लिए...खिलखिलाती। रिक्शे वाला बदहवास रिक्शा दौड़ा रहा था...किसी अँधेरे कोने की ओर। साँडे वाले ने सब साँप गिरगिटान समेट लिए थे। मेरे ऊपर उदासी छाने लगी। धीरे-धीरे पंजों से रेंगती ऊपर चढ़ती। मैंने पाँव झटके...फिर धीरे-से उठा और थका-थका सा लुढकता हुआ घर आकर सो गया।

फिर मैं अकेला ही पतंग उड़ाने लगा। अविनीश भाई अकसर शाम को घर पर नहीं होते। रात को भी देर तक लौटते। कभी जल्दी आते भी तो किताबें लेकर बैठ जाते। छत की पतंगबाजी...गंगा किनारे घूमना...खंडहरों की सैर, सब धीरे-धीरे बंद होने लगा।

अविनीश भाई मुझे अकसर बेचैन से दिखते। कभी मैं उनके कमरे में पहुँचता तो मुझे लगता जैसे वह मेरी उपस्थिति से ही असहज हो गए हैं।

''तुम जाओ...मुझे कुछ सोचना है।'' अविनीश भाई कहते।

''पर क्या?'' मैं दुलार से उनसे चिपक जाता। ''मृत्यु के बारे में सोचते हो?''

अविनीश भाई मुस्कराते, ''तुम पढ़ो जाकर।''

धीरे-धीरे खाली दोपहर के लंबे होते दरख्तों के सायों में मैं अकेला घूमने लगा। शाम को जब शहर की पुरानी...बूढ़ी...बदरंग दीवारों के कोनों दरारों से अँधेरा टपकने लगता और कुहासे की ठंडक के साथ छोटे-छोटे घरों की छतों से धुआँ उठता और किसी दूसरे घर की मुँडेर पर गुच्छा बनकर बैठ जाता...मैं अकेला चुपचाप उसे घूरता रहता। किसी पुराने खंडहर की टूटी दीवार के सहारे धूप में, किसी बुर्ज की सीढ़ियों पर सूखी घास की मैं अकेला नोचता रहता। कभी कोई चमगादड़ चीखता ऊपर से निकलता तो मैं बहुत देर तक खाली आँखों से उसे देखता रहता।

अविनीश भाई से बहुत कुछ पूछना होता, बहुत कुछ बताना। पर अविनीश भाई नहीं मिलते। कभी मिलते तो मैं उन्हें पकड़ लेता।

''अविनीश भाई...गणित का एक सवाल नहीं निकल रहा।''

''हो जाएगा...कोशिश करो।'' अविनीश भाई कहते।

''अविनीश भाई आँख में आँसू कहाँ से आते हैं'' ...या ''अविनीश भाई फूल हरे रंग का क्यों नहीं होता'' ...या और कुछ। अविनीश भाई कभी-कभी झुँझला जाते। मैं तब सहम जाता। ऐसा भी हुआ कि गली में मैं और अविनीश भाई आमने-सामने हुए और अविनीश भाई इस तरह निकल गए जैसे मुझे देखा ही नहीं। बिखरे बाल...आँखें सूजी...होंठ सूखे...बहुत तेज चलते हुए। मैं तब रुआँसा होकर बहुत देर तक उन्हें पीछे से देखता रहता।

''क्या वह सचमुच अविनीश भाई की मृत्यु है?''

उस रात वसंत का चाँद था।

खाना खाकर मैं लट्टू नचा रहा था। अचानक अविनीश भाई की आवाज सुनाई दी...बहुत दिन बाद। मैं बाहर आँगन में आया। छज्जे पर अविनीश भाई खड़े थे।

''क्या कर रहे हो?'' उन्होंने पूछा

''लट्टू नचा रहा हूँ।''

''चलो घूम आएँ।''

''नहीं...'' मैंने मुँह घुमा लिया। ''लट्टू नचाऊँगा।''

''मैं आ रहा हूँ।''

अविनीश भाई नीचे आए...मेरे सर पर एक हाथ मारा और हाथ पकड़कर बाहर घसीट लाए। लंबी गली को पार कर हम फिर सड़क पर आ गए। हम चुपचाप सड़क के एक ओर चलने लगे। मैंने कुछ नहीं पूछा कि कहाँ जाना है।

''नाराज है मुझसे?'' कुछ देर बाद अविनीश भाई खुद ही बोले।

''नहीं।'' मैंने सर हिलाया।

''मुझे पता है तू नाराज है। तुझसे मिल नहीं पाता। तू अकेला घूमता है। वह जब बड़ा होगा तब समझाऊँगा। चल...गुस्सा थूक दे...'' अविनीश भाई ने मेरे बालों में हाथ फेरा। अविनीश भाई का इतना दुलार बहुत था मेरे लिए। मेरा मन हल्का हो गया। मैंने हाथ पकड़ लिया अविनीश भाई का।

कुछ देर चलने के बाद हम शहर के पीछे वाली सुनसान सड़क पर आ गए थे। पूरी सड़क दिन भर के टूटे पीले पत्तों से भरी थी। दोनों ओर के पेड़ों की नंगी शाखों से चाँदनी गिर रही थी। सफेद...ठंडी, खाली सड़क पर परछाइयों के जाले बुनती। पता नहीं कैसी हवा थी वह...पागलों की तरह भागती तो बदन कभी सिहर जाते, कभी हल्के आनंद से देर तक काँपते रहते।

अविनीश भाई चुप थे। मैं उसी तरह उनका हाथ पकड़े चल रहा था। अचानक मुझे वह चमकदार साँप याद आया।

''तुमने सांडे वाले का साँप देखा है?'' मैंने अविनीश भाई का हाथ हिलाया।

''नहीं।''...अविनीश भाई बोले।

''अजीब है। चमकता है बहुत...रेत की तरह। आदमी को काटता नहीं...बस उसकी छाती पर बैठकर साँसों को जहरीला कर देता है। क्या जीभ है उसकी। बाहर निकालकर हवा में घुमता है। मरने वाले को पता भी नहीं चलता।''

''ऐसा ही यह जीवन है बन्टू।'' अविनीश भाई धीरे-से फुसफुसाए और मेरे गले में हाथ डालकर मुझे सटा लिया। मैंने सर उठाकर देखा। वह सामने देख रहे थे...कुछ सोचते हुए। धीरे-से बोले फिर-

''तू छोटा है अभी, पर मेरी एक बात याद कर ले। मेरे बाद कभी समझेगा। संसार का सबसे बड़ा रणक्षेत्र मनुष्य के अंदर है। अनवरत कोई न कोई भयानक युद्ध चलता रहता है वहाँ। हर युद्ध में सैकड़ों-लाखों, खून से लथपथ शव रोज गिरते हैं। सपनों के शव...भावनाओं, विचारों, आकांक्षाओं के शव। सब कुछ है वहाँ। भयानक उन्माद है...अपरिमित आनंद है...उत्सव है...मृत्यु है...जय...पराजय है। बाहर जो कुछ भी दिखता है, सब अंदर की इस सृष्टि की छाया है। सत्य अंदर की यही सृष्टि है। ...और कितनी विराट, कितनी रहस्यमयी है यह। सैकड़ों जंगल पल रहे हैं वहाँ। अंधी गुफाएँ हैं...उबलते ज्वालामुखी हैं...जाले हैं...सुरंगें है...। हम जीवन भी बस इस जगत का सूत्र ही ढूँढ़ते रहते हैं, पर उसे कभी पकड़ नहीं जाते। हर क्षण बदलता...नष्ट होता है यह। इसे समझने की कोशिश में ही हम एक-दूसरे को निरंतर कोई न कोई घाव देते या अपना कोई घाव चाटते ही रहे हैं। इन छायाओं को पकड़ने, इन छायाओं के बीच जाने को वास्तविकता समझने का भ्रम पाले। अपनी मृत्यु तक इसी तरह बल्कुल खाली हाथ पहुँचते हैं सब।'' एक साँस लेकर चुप हो गए अविनीश भाई।

मैं स्तब्ध-सा सुन रहा था। अविनीश भाई जैसे खुद से ही बोल रहे थे। बहुत देर तक सन्नाटे का एक सूखा निचुड़ा हुआ टुकड़ा हमारे साथ चलता रहा।

एक मोड़ पर पहुँचकर अविनीश भाई रुक गए। मैं भी।

''क्या हुआ?'' मैंने पूछा। ''हम कहाँ जा रहे थे?''

''पुल पर।''

''फिर रुक क्यों गए।''

''वह यहीं आएगी।''

''कौन?''

''मृत्यु।''

''वह आएगी?'' मैंने थोड़ा हैरान होकर पूछा।

''हाँ।''

''फिर हमें क्यों लाए?''

''तुम हमारा कवच बनते हो। नैतिक और सामाजिक दोनों...तुम्हारा होना एक पारिवारिक दृश्य पैदा करता है, इसलिए।''

तभी एक रिक्शा रुका और वह उतरी। मुझे देखकर मुस्करायी फिर मेरे गालों को छुआ।

''पहचानते हो हमें?'' वह बोली।

मैं झेंप गया।

उसने मुझे अपने साथ चिपका लिया। हम तीनों फिर चुपचाप सड़क के एक ओर चलने लगे। चलते-चलते मेरा मुँह अकसर उसके पेट से चिपक जाता।

जिसे मैं चुपचाप देखता था। अचानक ही वह खरगोश मेरे बिल्कुल पास था आज। मैं उसे छू रहा था...उसकी गंध पी रहा था। कोमल, स्निग्ध, चिकना और चमकदार था वह...किसी भी सुंदर चीज से सुंदर। जीवित भी था जैसे अभी बोल देगा...हिलता...काँपता। चलते हुए जब मुँह उससे छू जाता तो मैं सिहर उठता। हल्का गर्म...खुशबू छोड़ता हुआ था वह। मैं उससे चिपका सर से पाँव तक एक तरह सुख में डूबा हुआ चल रहा था।

सड़क के दोनों ओर बने बंगलों की दीवारें खत्म हो चुकी थीं। उनके अंदर से छनकर आती रोशनियाँ भी। अब कुछ नहीं था सिवाय हमारे, खाली सड़क और चाँद के। एक भारीपन हमारे साथ था। हम तीनों जैसे अपने-अपने कंधों पर अपनी कोई गोपनीय दुनिया लिए चले जा रहे थे...एक-दूसरे से बिल्कुल असंपृक्त। बीच-बीच में कभी मैं सर उठाकर अविनीश भाई को देख लेता...कभी मृत्यु को।

थोड़ी देर में पुल दिखने लगा। दूर तक फैला-खाली-खाली सा। कभी-कभी

कोई गाड़ी उस पर से निकलती तो पूरा पुल थरथरा जाता। दोनों तरफ पैदल चलने वालों की अलग जगह बनी थी। रेलिंग के पास कुछ दूर चलने के बाद हम रुक गए। रेलिंग से चिपककर...उस पर झुके हुए।

नीचे गंगा बह रही थी। ठंडी सफेदी में झिलमिलाती। तेज हवा से उसका पानी शोर कर रहा था। सामने धार में एक नाव बह रही थी...धीरे-धीरे लकड़ी से नाव को धकेलता एक बूढ़ा माँझी था। एक बहती लाश पर बैठे गिद्ध उसको नोच रहे थे। एक ओर रेती पर कुछ फसलें खड़ी थीं। कुछ नावें उलटी पड़ी थीं। कुछ कच्चे घर चमक रहे थे। चार बाँस लगाकर बनाई हुई कपड़े की छतें हवा में फड़फड़ा रही थीं। दो-तीन लकड़ी की खाट पड़ी थीं। जिन पर लोग सो रहे थे। सब कुछ साफ...एक तिलस्मी सफेदी में डूबा था। चाँद बिल्कुल हमारे ऊपर था। पूरा पुल...नदी...सृष्टि सब उसके जादुई फंदों में कसा था। शांति थी...भरी, सिहरन पैदा करती। सब कुछ दिव्य था। इस लोक से परे...इतर।

अविनीश भाई ने जेब से सिगरेट निकालकर जलाई और रेलिंग पर झुक गए। मृत्यु ने फिर मुझे चिपका लिया। मैंने सर घुमाकर देखा। वह खरगोश अब चाँदनी में चमक रहा था। सहमते हुए मैंने धीरे-से उस पर उँगली रखी। उसकी खाल काँपी। मैंने चुपचाप अपनी नाक खाल के उस टुकड़े में धँसा दी। गंध को अंदर तक निगलते हुए। चुपचाप देर तक मैं उसे निगलता रहा। किनारे पर ऊँचे मिट्टी के टीलों से कभी कोई टुकड़ा नदी में गिर पड़ता तो सब एक झटके से टूट जाता। वह सब मेरे अंदर उतर रहा था। नदी...चाँदनी...खरगोश। बहुत देर हम ऐसे ही खड़े रहे।

अचानक खाल का वह हिस्सा धीरे-धीरे काँपने लगा। मैंने सर उठाकर देखा। वह रेलिंग पर झुकी थी। उसके एक हाथ पर अविनीश भाई का हाथ रखा था और वह धीरे-धीरे हिल रही थी। मैं एक झटके से अलग हो गया। वह रो रही थी। अविनीश भाई को शायद मालूम नहीं था। मैं घूमकर अविनीश भाई के दूसरे हाथ की तरफ खड़ा हो गया। घबराकर अविनीश भाई को हिलाया मैंने। अविनीश भाई ने मुझे देखा। मैंने उसकी तरफ इशारा किया। अविनीश भाई ने सर घुमाकर देखा उसे-''पागल मत बनो।'' अविनीश भाई धीरे-से फुसफुसाए।

उसने अविनीश भाई के तरफ मुँह घुमाया। सचमुच रो रही थी वह। उसके होंठ धीरे-से फैले।

''डरो मत...ये आनंद के आँसू है...गले तक पूरा आनंद भरा है।'' वह बोली,

''कितना सुंदर है सब''...उसकी आँखें आधी बंद थीं, ''देखों,'' चाँद की ओर इशारा किया। ''मुझे पता है यह सब इसकी साजिश है।''

मैं भय और हैरानी से उसे देख रहा था। उसकी आवाज अचानक बदल गई थी-जैसे कोई दर्द से कराहते हुए बोलता है। अपनी हथेली पर रखी अविनीश भाई की हथेली उसने अपने दोनों हाथों में पकड़ ली। उसे पागलों की तरह चूमा। अपनी आँखों से छुआया...जैसे माँ पूजा की माला के दानों को छुआती थी।

अविनीश भाई चुपचाप उसे देख रहे थे। उसने अविनीश भाई की हथेली अपने गले पर रख ली।

''इस क्षण...इसी क्षण...क्या तुम मेरा गला दबा सकते हो।'' वह फुसफुसाई। उसकी आँखें लगभग बंद थी...होंठ खुले थे। बदन काँप रहा था। अविनीश भाई मुस्कराए...और मैंने देखा कि अविनीश भाई ने उसका गला दबाना शुरू किया। मैं भय से रोने और चीखने को हो रहा था। पर वह हँस रही थी। अविनीश भाई उसके गले पर अपनी उँगलियाँ कसते जा रहे थे। धीरे-धीरे उसके गले की नीली नसें मुझे दिखने लगीं। पर वह वैसी ही शांत थीं। कोई पीड़ा-कोर्ठ छटपटाहट नहीं। उसी तरह आनंद से बंद आँखें, होंठों पर मुस्कराहट। मुझे लगा कि वह अब किसी भी क्षण मर जाएगी। अचानक अविनीश भाई ने अपना हाथ हटाया और झुककर उसके गले का वह नीला हिस्सा चूम लिया।

''तुम पागल हो।'' वह फुसफुसाए।

''और तुम कायर।'' वह खिलखिलाई और एक झटके से अविनीश भाई से लिपट गई। उसने अविनीश भाई के गले की खाल अपने दाँतों में दबा ली। अविनीश भाई हल्के से कराहे। वह उसी तरह लिपटी थी उनसे, जैसे पूरा खून चूस लेगी उनका...बोटी निकाल लेगी उनकी। उसके दाँत अविनीश भाई के गले में धँसते जा रहे थे। अचानक चीखकर अविनीश भाई ने एक झटके से उसे अलग कर दिया। वह अलग हुई तो मैंने देखा उसे। वह हाँफ रही थी। बाल खुलकर उसके चेहरे पर आ गए थे। चाँद पूरी तरह उसके चेहरे पर था और उसकी रोशनी में उसकी आँखें भयानक तरीके से चमक रही थीं, जैसे शिकार को देखकर शेरनी की आँखें चमकती हैं। होंठ खुशी से फैले थे...।

''...जंगली...।'' अविनीश भाई दर्द से बुदबुदाए।

''हाँ...तुम्हारी जंगली।'' वह पागलों की तरह खिलखिलाकर हँसने लगी। मुझे

लगा जैसे वह अभी एक पल में रूप बदल लेगी–किसी जादूगरनी की तरह अपनी असली सूरत में आ जाएगी...जैसे कहानियों में कोई दुष्टात्मा रूप बदलकर किसी का खून चूस लेती है, उसी तरह उसके चेहरे की नसें सूजी हुई थी। मेरे अंदर का सारा खून बर्फ बन गया था। डर से मेरे पाँव काँपने लगे थे। मैंने भय से इधर-उधर देखा। कोई नहीं था। पूरा पुल सन्नाटे में डूबा था। सफेद कफन ऐसी चाँदनी से ढका था सब कुछ। मैंने चुपके से देखा। मेरा खरगोश भी।

मुझे पता भी नहीं कि कब ऐसा हुआ, पर वह खरगोश अब अकसर मेरे साथ रहने लगा था। कभी मेरी पलकों पर, कभी उँगलियों की पोरों पर और कभी नसों में बहते खून के अंदर। रात होती...सपने आते और वह फुदकने लगता...कभी चाँद पर, कभी फूल के गुच्छे पर। रास्ते में चलते हुए वह कभी किसी सूखे टूटे पत्ते पर बैठ जाता...कभी किसी पत्ती की नोक पर टिकी ओस की बूँद में होता और कभी मेरी आत्मा की सलवटों पर।

मृत्यु धीरे-धीरे मेरे अंदर भी उतर रही थी।

एक दिन वह मेरे स्कूल के बाहर मिली मुझे। उसका चेहरा धूप से लाल था। हल्के पसीने में डूबा। माथे पर कुछ बाल चिपके थे। मैंने उसे देखा। वह मुझे ही ढूँढ़ रही थी। मुझे देखकर एकदम से वह मेरे पास आई।

''क्या हुआ...अविनीश कहाँ है?'' उसने पूछा।

मैं चुपचाप उसे देखता रहा।

''दो दिन से मिला नहीं...''

''पता नहीं...मैं भी नहीं मिला उनसे।'' मैंने कहा।

अचानक वह रुँआसी हो गई। उसका चेहरा फूल गया। आँखें धीरे-धीरे भींगने लगीं। ''वह आया क्यों नहीं?''...वह बुदबुदाई। ''ऐसा तो नहीं होता।''

''हमें नहीं पता।''

''अच्छा रुको।'' उसने पर्स खोलकर एक कागज कलम निकाला। ''तुम उसे यह चिट्ठी देना।'' वह कागज पर कुछ लिखने लगी। मैंने इधर-उधर देखा। नीम के नीचे हम खड़े थे। स्कूल तेजी से खाली हो रहा था। बच्चे घरों को लौट रहे थे।

''लो।'' उसने कागज मोड़कर मेरी जेब में ठूँस दिया, फिर पर्स से मीठी गोलियों का एक पैकेट निकाला। ''यह भी लो।'' वह धीरे से मुस्कराई। मैंने सर हिलाया, ''अरे

लो।'' उसने मेरी जेब में वह गोलियाँ भी ठूँस दीं और धीरे से झुककर मेरा गाल चूम लिया।

घर आकर मैंने बस्ता फेंका और सीधे ऊपर अविनीश भाई के कमरे की ओर भागा। अविनीश भाई पलंग पर लेटे थे। कंबल में दुबके। पूरे कमरे में अँधेरा था...सिर्फ ऊपर के रोशनदान से थोड़ी सी रोशनी अंदर गिर रही थी। आहट सुनकर अविनीश भाई ने आँखें खोली। हल्के अँधेरे में मैंने उनके चेहरे को देखा। लाल हो रहा था...जैसे कोई चीज अँगारे पर तप रही हो। मुश्किल से आँखें खोल पा रहे थे अविनीश भाई...

''क्या हुआ?'' पलंग पर चढ़कर मैंने उनका माथा छुआ। भयानक तरीके से गर्म था–''तुम्हें तो बहुत तेज बुखार है।''

''हाँ।'' अविनीश भाई ने मेरे कंधे का सहारा लिया और थोड़ा उठ गए...अधलेटे से।

''खिड़की खोल जरा।'' उन्होंने इशारा किया। मैंने उठकर खिड़की खोल दी। दोपहर बाद की धूप का बड़ा सा टुकड़ा अंदर कूद आया।

''स्कूल से सीधे आ रहा है क्या?''

''हाँ।'' मैंने जेब से चिट्ठी निकालकर अविनीश भाई को दी।

''क्या है?''

''उसी ने दी है।''

''स्कूल आई थी?''

''हाँ...तुम उससे दो दिन से मिले नहीं...इसलिए।''

''कैसे मिलता...हालत देख रहा है।''

मैंने फिर उनके माथे पर हाथ रखा, ''नीचे माँ को बताया?''

''हाँ।'' अविनीश भाई हँसे। ''वह देख'', उन्होंने कोने की मेज की ओर इशारा किया। वहाँ शीशी में दवा...कैपसूल रखे थे। ''सब ले रहा हूँ।''

''मैं खाकर आता हूँ।'' मैं उठ गया।

''हाँ...फिर जरा सर दबाना मेरा।''

अविनीश भाई लेटे और कंबल में दुबक गए।

दूसरे दिन वह फिर मुझे स्कूल के बाहर मिली। उसी तरह धूप में खड़ी, पसीने से

भीगी।

मुझे देखते ही तेजी से मेरी ओर आई।

''क्या हुआ...चिट्ठी दी तुमने?'' वह बोली।

''हाँ...बीमार हैं अविनीश भाई...बुखार है।'' मैंने कहा।

''बुखार।''...वह बुदबुदाई। ''सुनो...एक काम करोगे मेरा।'' ...उसने मेरा चेहरा फिर अपने हाथों में दबा लिया...बिल्कुल झुक गई मेरे ऊपर, ''मुझे ले चलोगे अविनीश के पास।'' उसकी गर्म साँस मेरे चेहरे पर टपक रही थी।

''...पर तुम्हें भी तो घर मालूम है।''

''नहीं...तुम साथ चलो...मेरे अच्छे राजा।'' उसने मेरा माथा चूमा और मुस्कराई।

''चलो।'' मैं भी मुस्कराया।

वह अचानक रुकी, ''कोई पूछेगा तो क्या कहोगे?''

''क्या कहूँ?''

''कह देना तुम्हारी टीचर हूँ।''

मैंने सर हिलाया। वह मेरे साथ स्कूल के रिक्शा पर बैठ गई। एक हाथ बढ़ाकर उसने मुझे घेरे में ले लिया। मैंने उसे देखा। वह चुप थी बिल्कुल...आँखें गीली-सी थीं...जैसे कोशिश करके आँसू रोक रही हो। बाल हवा में उड़ रहे थे...वह होंठ दबा रही थी...उसके होठों के नीचे की खाल काँप रही थी। मैंने सर घुमा लिया। भीड़-भाड़ वाली सड़क से हमारा रिक्शा गुजर रहा था।

''घर में कौन होगा?'' उसने धीरे-से पूछा।

''अविनीश भाई की माँ, बहन...छोटा भाई। उनके पिता नहीं होंगे।'' मैंने अपनी सहज बुद्धि से उसको आश्वस्त करने के भाव से यह जोड़ दिया।

वह इस बात से कुछ आश्वस्त भी हुई, फिर चुपचाप सामने देखने लगी। कुछ देर में रिक्शा गली के सामने रुका। हम उतर जाए। उसने मेरा हाथ पकड़ लिया...कसकर। मुझे लगा उसकी हथेली पसीने से भीग रही है। भय या घबराहट से वह बेचैन थी...। वह इस तरह क्यों डर रही है, मैं समझ नहीं पाया।

अविनीशी भाई के कमरे में जाने के दो रास्ते थे। एक तो सीधा अविनीश भाई के घर से और दूसरा मेरे घर के आँगन के छोटे दरवाजे से। अविनीश भाई के घर से जाने पर नीचे उनके घर के सब लोग मिलते। मेरे घर के आँगन से कोई नहीं। चुपचाप छोटे फाटक से होकर सीढ़ीयाँ चढ़कर ऊपर अविनीश भाई के कमरे में पहुँच सकते थे।

''चुपचाप चलें?'' मैंने पूछा।

''तुम ऐसा कर सकते हो?'' उसने मुझे देखा।

''हाँ...हमें कोई नहीं देखेगा।'' मैं धीरे से फुसफुसाया।

उसने राहत की एक लंबी साँस ली।

''आओ।'' मैंने उसका हाथ पकड़ा और अपने घर का दरवाजा खोलकर झाँका। मेरे आने के समय माँ दरवाजा खुला छोड़ देती थी। आँगन खाली था। माँ रसोई में मेरे लिए खाना गर्म करती होती थी। मैंने उसका हाथ खींचा और तेजी के साथ लगभग उसे घसीटता हुआ छोटे फाटक से ऊपर की सीढ़ियों पर आ गया। वह हाँफ रही थी। सीढ़ियों पर ठिठककर गहरी साँसे लेने लगी। सीढ़ियों पर अँधेरा भी था। हमेशा रहता था। हम अभ्यास से दौड़ते हुए चढ़ जाते थे।

''धीरे-धीरे आओ।'' मैं फुसफुसाया। उसने मुझे फिर चिपका लिया और मेरे सहारे से धीरे-धीरे चढ़ने लगी। पुराने तरह की अँधेरी सीलन भरी वैसी सीढ़ियों पर दबे पाँव हम चुपचाप चढ़ने लगे। कुछ सीढ़ियाँ चढ़ने के बाद बाएँ हाथ पर दरवाजे में अविनीश भाई का कमरा था। कमरे के दरवाजे पर मैंने हाथ रखा। अंदर कल की ही तरह ऊपर के रोशनदान से हल्की रोशनी गिर रही थी। अविनीश भाई लेटे थे। दरवाजे पर रुककर मैं फुसफुसाया।

''अविनीश भाई।''

अविनीश भाई ने मुझे देखा और उठ गए।

''आ।'' उन्होंने हाथ का इशारा किया। मैं दरवाजे से हट गया। वह एकदम से अविनीश भाई के सामने आ गई। अविनीश भाई उछलकर बैठ गए। वह वहीं दरवाजे पर खड़ी अविनीश भाई को देखती रही। एक क्षण के लिए कमरे में सन्नाटा छा गया। अँधेरे में रोशनदान से आती हल्की रोशनी काँप रही थी। तेज साँसें उछल रही थीं। उसकी...अविनीश भाई की और बेवजह मेरी भी...

वह चुपचाप अविनीश भाई को घूर रही थी। अविनीश भाई की दाढ़ी बढ़ गई थी। बाल उलझे थे। चेहरा सूख गया था। होठों पर पपड़ी जमी थी। आँखें दर्द से थोड़ी बंद सी थीं। मैं उसे देख रहा था। अब वह फिर बदल चुकी थी। उस तरह घबराती...चौंकती

और काँपती हुई नहीं थी। उसके चेहरे पर एक लाजवाब मजबूती आ गई थी। आँखें बिल्कुल जमी थीं अविनीश भाई पर। धीरे-धीरे पाँव बढ़ाती वह अविनीश भाई के पास आई...कुछ क्षण चुपचाप खड़ी रही।

''मुझे छुओ।'' वह धीरे से बोली। उसकी आवाज, जैसे कोई साँप झाड़ी में सरसराता हुआ निकल गया हो।

''छुओ।'' उसने फिर कहा। वह एकदम पास आ गई अविनीश भाई के। अविनीश भाई ने हाथ बढ़ाकर उसकी हथेली पकड़ ली। अविनीश भाई के छूते ही वह जैसे पागल हो गई। अविनीश भाई के हथेली अपने हाथों में दबाकर वह उनकी उँगलियाँ चबाने लगी...चूमने लगी...पुल की तरह अपनी आँखों से छुआने लगी। फिर एकदम से वह अविनीश भाई पर गिर पड़ी। बेजान...लाश जैसी। उसकी आँखों से आँसू बह रहे थे।

मैं चुपचाप सहमा-सा दरवाजे की आड़ में हो गया। बस्ता अभी तक मेरी पीठ पर लदा था। मैं भी कमरे में था, वह यह भूल चुकी थी। बस...बेसुध-सी अविनीश भाई की देह पर हाथ फेर रही थी। अविनीश भाई थके, पस्त, चुप लेटे थे। वह खेल रही थी उनसे। जहाँ चाहती, जैसे चाहती। उनके बालों से, देह से, उन्हें सहलाती... चूमती...काटती...रोती हुई। उसके बाल खुलकर चेहरे पर बिखर गए थे। थोड़ी देर में वह हाँफने लगी।

''बैठ जाओ।...कोई आ सकता है।'' वह बुदबुदाए।

वह एकदम से सामान्य होने लगी। पलंग पर बैठकर अपने बाल बाँधने लगी। आँसू पोंछे उसने। मैं दरवाजे के पीछे खड़ा सहमा-सा चुपचाप उसे देख रहा था। रोशनदान की धूप उसके चेहरे के एक हिस्से पर गिर रही थी। गले के नीचे वह अँधेरे में डूबी थी, जैसे एक कटा हुआ सर हवा में तैर रहा हो-धूप में चमक रहा हो।

''सुबह से कुछ खाया तुमने?'' अविनीश भाई ने पूछा उनसे।

''नहीं।'' उसने सर हिलाया।

उसके होठों पर पपड़ी जमी थी...सूखी चटकती हुई।

मुझे लगा उसने शायद पानी भी नहीं पिया है।

''कुछ खाओगी?'' अविनीश भाई ने फिर पूछा। ''बंटू ले आएगा।''

''नहीं।'' वह उठ गई। ''मैं चलूँगी''...उसने धीरे से सर झुकाकर कहा, ''तुम्हें

देख लिया...बस।''

अब वह फिर बदल चुकी थी। संयत...शांत और समझदार सी लगती हुई। अविनीश भाई पलंग से उतर गए और मेरे पास आए।

''इसे बाहर पहुँचा दो।'' धीरे-से कहा उन्होंने। मैंने सर हिलाया। अविनीश भाई ने उसके कंधे पर हाथ रखा और मुस्कराए-

''कल मैं आऊँगा।''

उसने एक बार अविनीश भाई को देखा फिर सर झुका लिया। मैंने उसका हाथ पकड़ा और सीढ़ी से चुपचाप उसी तरह छोटे दरवाजे से निकालकर बाहर छोड़ आया।

आँगन उसी तरह खाली था।

पतझर के बाद की नंगी शाखों पर नए पत्ते आ चुके थे। दिन लंबे, उबाऊ और धूल भरे होते थे। रात का आसमान साफ, असंख्य तारों से चमकता रहता था। मेरी परीक्षाएँ शुरू होने वाली थीं। मैं किताबों में डूबा रहता। अविनीश भाई भी किसी बड़ी परीक्षा की तैयारी में जुटे थे। रात-दिन पढ़ते।

इस बीच दो-तीन बार वह मुझे स्कूल के बाहर मिली। अब वह तभी मिलती जब उसे अविनीश भाई के घर जाना होता। उसका भय धीरे-धीरे दूर हो गया था। पत्र देने या कुछ कहने की अपेक्षा वह सीधे मिलने ही आ जाती। मैं उसे अविनीश भाई के घर पहुँचाने का माध्यम बन गया था। उसी तरह स्कूल के रिक्शे पर हम बैठते, फिर अपने घर आकर मैं चुपचाप दरवाजा खोलता और ऊपर कमरे तक भी छोड़ने नहीं जाता। अब सीढ़ियों पर चढ़ने में उसे मेरे सहारे की जरूरत भी नहीं होती। उन अँधेरी, घूमती, सीलन भरी, पुरानी सीढ़ियों पर वह हमारी तरह अभ्यास से चढ़ने लगी थी। अकसर वह ज्यादा देर तक रुकने लगी थी। कभी-कभी मैं ऊपर देखने जाता तो अविनीश भाई के कमरे का दरवाजा बंद मिलता। मैं चुपचाप लौट आता। अविनीश भाई ही थोड़ी देर बाद ऊपर से मुझे आवाज देते...इशारा करते। वह सीढ़ियों से नीचे आती और मैं उसे घर के बाहर निकाल देता। कभी वह पहले से मुझसे तय कर लेती या अविनीश भाई से बता देते कि आज दोपहर को सोना मत, दो बजे वह आएगी। मैं भयानक लू और धूप में आँगन में घूमता रहता। माँ अंदर चीखते-चीखते सो जाती, पर मैं कर्त्तव्यबोध और उत्तरदायित्व के महत्त्व को समझता हुआ झुलसता रहता। बिल्कुल धीरे से कोई दरवाजा खटखटाता। मैं दौड़कर दरवाजा खोलता। वह धूल से भरी...पसीने से नहाई...सुर्ख चेहरा लिए खड़ी होती। थोड़ा सा सर ढके। मैं उसे जल्दी से सीढ़ियों पर ढकेल

देता...उस लंबी खाली दोपहर में वह बहुत देर तक अविनीश भाई के साथ रहती।

मैं कितनी ही देर खाली आँगन में घूमता रहता। एक नई तरह की बेचैनी से छटपटाता। मेरी उदासी के साथ-साथ चुपचाप फुदकता बस एक छोटा खरगोश होता।

उस दिन दोपहर से ही आसमान का रंग बदल गया था।

मृत्यु चुपचाप आई थी और हमेशा की तरह आज भी अविनीश भाई के कमरे में चली गई थी। माँ मुझे बाद में एक रिश्तेदार के घर पकड़ कर ले गई, इसलिए लौटने में देर हो गई थी। अँधेरा होने से पहले ही हम लौट आए थे। अभी समय था। तोते लौटे नहीं थे, इसलिए मैं छत पर पहुँच गया था। लेकिन जैसे ही पहुँचा वैसे ही एक तरफ से आसमान भूरा होना शुरू हो गया था...और देखते ही देखते भयानक आँधी उठने लगी। क्षणभर में ही आकश की पतंगे उतर गई थीं। मैं चुपचाप बड़ी...खाली छत पर बैठा आँधी देख रहा था। अद्‌भुत था सब मेरे लिए। चारों तरफ एक विशाल रेत का बवंडर उठ रहा था। रेत की दीवार बनती...मेरी तरफ दौड़ती और पार हो जाती। कागज के टुकड़े...मिट्टी के कण...पेड़ों के पत्ते...सब आसमान तक उछल रहे थे। टीनें खड़खड़ करतीं...खिड़कियों के खुले दरवाजे चीखते...हिलते। काँपते पेड़ जैसे वहशी हो गए थे। अँधेरे में सब कुछ भयानक, रहस्यमयी और तिलिस्मी लग रहा था। मेरे अंदर एक खालीपन उतरने लगा। ठंडा...भारी और धीरे-धीरे नसों में लहू के साथ रेंगता हुआ। मैं वही मुँडेर पर लेट गया। धूल से ढका पूरा आकाश मेरी आँखों के आगे था...एक पर्दे में छुपता-निकलता। कुछ ही क्षणों में बिजली चमकने लगी...बादल गरजने लगे। मैं हैरान सा देख रहा था वह जादू...वह दुनिया। आकाश पर तड़तड़ाती एक लकीर चमकती और आर-पार हो आती...। आकाश का वह हिस्सा एक विराट चमक से भर जाता...हिस्सों में बँट जाता। बादल एक दूसरे से टकराते, चीखते। चारों तरफ भयानक सन्नाटा था...धूल थी...बिजली की चमक थी...बादल थे।

कुछ ही देर में बूँदें गिरने लगीं। आँधी की धूल उसके नीचे थम गई। सब कुछ साफ और नई महक में भर गया। तेज हवा के साथ मेरा पूरा शरीर बारिश से ढकने लगा। उस अँधेरी रात में छत पर अकेला लेटा मैं बारिश में भीग रहा था। मेरे चारों ओर सब कुछ कँपाने वाला, जादुई और सुंदर था। तेज हवाएँ...भयानक पानी और आकाश पर कौंधता पीला फूल। धीरे-धीरे मेरी देह सुन्न होने लगी। एक बर्फ की नदी उतरने लगी अंदर। बारिश की बूँदों से और अधिक उफनती...गहरी होती। धीरे से आँख बंद कर ली मैंने। एक विराटता थी चारों ओर। अनन्त...असीमित। उस महाशून्य में धीरे-धीरे मैं नष्ट हो रहा था। नष्ट हो रही थीं मेरी संज्ञाएँ...चेतना...मैं स्वयं...मेरा होना...। सब

कुछ खत्म हो रहा था।...बस एक अँधकार था...तरल...कँपता। उस अँधकार में कौंधता एक सफेद टुकड़ा...एक छोटा खरगोश...। चमकदार...हल्के सुनहरे रोओं वाला जिंदा साँस लेता...गर्म। उस पर रुकी चाँदनी...कभी बारिश की बूँदें...कभी धूप। कटता...बढ़ता। कभी पूरी देह बनता हुआ...कभी कोई माँस-पिंड...। कभी घाटी...कभी पर्वत। नंगा...निर्वसन...बिल्कुल साक्षात। मैं छू सकूँ...चबा सकूँ...इतनी दूरी पर...मेरी बेसुध...सुन्न देह पर नाचता...फुदकता...मुझे रौंदता...मुझे चूमता...काटता...एक गंध के गुच्छे में डूबा।

धीरे-धीरे मेरी साँस रुकने लगी।...एकदम से छटपटा कर उठ बैठा मैं।...कुछ गहरी साँसें ली मैंने...फिर चारों ओर देखा। बारिश उसी तरह थी। मैं जहाँ लेटा था वहाँ पानी भर चुका था। हवा रुक गई थी। अब न बिजली थी न बादलों का शोर। एक भयानक सन्नाटा था चारों ओर। अँधेरे में डूबा...गीला सहमा-सा। मेरा सर भारी हो रहा था...बदन टूट रहा था। लड़खड़ाते हुए मैं उठा। मुँडरे से कूदा और छत से उतरकर नीचे सीढ़ी पर आ गया। अँधेरी, चौड़ी सीढ़ियों पर मैं दीवार का सहारा लेकर उतर रहा था। अविनीश भाई के कमरे के आगे से निकलता तो दरवाजा बंद था। मैं एक क्षण रुका...। मृत्यु तो दोपहर को आई थी...इतनी देर कभी नहीं रुकती थी...फिर...? एक दरार से रोशनी की लकीर बाहर गिर रही थी। काँपते हुए मैं आगे बढ़ा और चुपचाप दरवाजे की दरार से आँख चिपका दी।

मृत्यु अंदर लेटी थी...नंगी...सफेद बिल्कुल। अविनीश भाई झुके हुए मेरे खरगोश को चूम रहे थे। उसी साँप की तरह...कुँडली मारे। उनकी जीभ घूम रही थी उस पर। मेरी चीख निकल गई। मैं लड़खड़ाकर पीछे हटा। देह का खून जम गया था। पसीने में डूबा मैं देर तक हाँफता रहा फिर दौड़ते हुए नीचे उतर आया।

पूरी रात वह साँप मेरी आँखों में नाचता रहा...जीभ निकाले एक खरगोश को कुंडली में दबोचे।

अगली दोपहर फिर भयानक सन्नाटा था। मृत्यु फिर आई। मैंने दरवाजा खोला। वह पसीने में भीगी थी...धूप से लाल। मुझे देखकर मुस्कराई वह। बीच के छोटे वाले दरवाजे से हम अंदर आए। सीढ़ियों पर अँधेरा था। एक क्षण ठिठके हम फिर वह ऊपर जाने लगी। अचानक मैंने उसका हाथ पकड़ लिया। उसने मुस्कराकर मुझे देखा। मैंने आँखें झुकाकर उस खरगोश को देखा। वह साँस ले रहा था...मुझे बुला रहा था। मैं जानता था कि वह मेरा है...उसकी चाँदनी...बारिश...धूप...सब मेरा था। मैंने धीरे-से उसे अपनी मुट्ठी में जकड़ लिया। एक क्षण वह काँपा...जैसे मेरी पकड़ से छूटना चाहता

हो। मैं उसे देखता रहा फिर मैंने अपने होंठ उस पर दिए। ...उसे चूमा और अपने होंठ वहीं घिसता रहा। वह एकदम चौंकी फिर धीरे-से उसने अपने हाथों से मेरा सर पकड़ा और अपने पेट में धँसा लिया...उस गंध के गुच्छे में मेरी साँस रुकने लगी। वह धँसता जा रहा था मेरे अंदर। छटपटाकर मैंने सर उठाकर देखा। उसकी आँखें चमक रही थीं...जैसे उस रात पुल पर थीं। उसी आनंद से भरी...उसके होंठ हल्के खुले थे...हल्के से कराह रही थी वह। वह बदल रही थी...जादूगरनी की तरह। मुझे लगा कि बस अब वह मेरे गले में अपने दाँत धँसाने वाली है।... ''तो यह खरगोश मेरा ही है''...मैं बुदबुदाया ''सिर्फ मेरा'' ...मैं एकदम से उससे अलग हुआ और उछलकर दरवाजे से बाहर निकल आया। पूरी ताकत से दौड़ता हुआ मैं गली के बाहर सड़क पर आ गया। रुककर मैंने खूब गहरी साँसें लीं...और फिर उसी चबूतरे पर बैठ गया।

सामने साँडे वाला उसी तरह साँप...गिरगिट बिछाए बैठा था। मैंने देखा, आज रेत का वह साँप और साँपों के बीच बिल्कुल निचुड़ा...सूखा पड़ा था।

प्रियवंद

जन्म : 22 दिसंबर, 1952

प्रकाशन : वे कहाँ कैद हैं, परछाईं नाच, छुट्टी के दिन का कोरस (उपन्यास) एक अपवित्र पेड़, खरगोश, फाल्गुन की एक उपकथा (कहानी संग्रह)

सम्मान : कथाक्रम सम्मान

तिरिया चरित्तर

—शिवमूर्ति

''विमली! ए विमली!'

'एकदम्मै मर गई का रें...'

जोर लगाते ही बुढ़िया को खाँसी आ जाती है।

''यह हरजाई तो खटिया पर गिरते ही मर जाती है।'' —बुढ़िया खटिया के पास जाकर विमली को झिझोड़ने लगी, 'मरघट लै चलो का रे?'

हड़बड़ा कर उठती है विमली और आँख मींजते हुए झोंपड़ी के बाहर चली जाती है।

लौटती है तो चूल्हे पर 'चाह' का पानी चढ़ाकर बकरी दुहने लगती है।

सात साल पहले, जब पहली बार उसने भट्ठे पर मजूरी करना शुरू किया था, नौ-दस साल की उम्र में, तो कमाई के शुरुआत के पैसों से इस बकरी की माँ को खरीद कर लाई थी वह। बाप के लिए 'चाह' का इंतजाम! और अब तो उसके बाप को चाह की ऐसी आदत पड़ गई है कि बिना 'चाह' के उसका लोटा ही नहीं उठता। इसी चाह के चलते बाप-बेटी को बुढ़िया की 'बोली' सुननी पड़ती है।

माँ-बाप को चाह का गिलास पकड़ाकर जल्दी-जल्दी नहाती है वह! रोटी सेंकती है। माँ-बाप के लिए ढक कर और अपनी रोटी बाँधकर निमरी बकरी का कान पकड़कर बाहर निकल जाती है।

आज भी निकलते-निकलते देर हो गई। रोज रात में सोते समय सोचती है कि

सवेरे चार बजे ही उठेगी। लेकिन दिनभर ईंट ढोने से थका शरीर! आँखों की पलकें जैसे चिपक जाती हैं। आपस में। रोज पाँच-छह बज जाते हैं। माँ को रोटी-पानी के काम में वह लगाना नहीं चाहती...

दरअसल माँ-बाप के लिए लड़का बन कर रहती है विमली! क्या-क्या नहीं सहा-सुना उसके माँ-बाप ने उसके लिए! वह नहीं चाहती कि उसके माँ-बाप लड़के के अभाव को लेकर दुखी हों। किस लड़के से कम है वह? 15-16 रुपए रोज कमाती है बाप को जांगर पेरने वाला काम क्यों करने दे? बाप का मन होता है तो गाँव के किसी किसान के गाय-भैंस का पगहा बर देता है। टोना झाड़-फूँक देता है। किसी की बहन-बेटी, नाते-रिश्तेदारों के घर हाल-चाल लेने चला जाता है बस! हल्का-फुल्का काम!

गाँव के पश्चिम में आधा किलोमीटर पर बहती है विसुई नदी! अर्धचंद्राकार! और नदी के उस पार खान साहब का भट्ठा! काला धुँआ फेंकती दोनों चिमनियाँ दूर से ही दीखती हैं।

नदी के दोनों किनारों पर कठजामुनों का जंगल दूर तक चला गया है। धारा की ओर झुकी झाड़ियाँ। और उस पार दूद-दूर तक फैला है बाँस और सरपत! पहले लोग दिन में भी इस खादर में घुसने से डरते थे। खासकर औरतें! ...साही सियार, नीलगाय, लकड़बग्घे, भेड़िये! ...और यदा-कदा गाँव के कच्चे मांस पर नजर गड़ाए गाँव के भेड़िये!

पर जब से भट्ठा खुला, यह खादर गुलजार हो गया है। आधे से अधिक गाँव वालों की जीविका अब इसी भट्ठे के सहारे चल रही है।

विमली 'निमरी' बकरी को कठजामुनों के जंगल में हाँकती है और तेज कदम बढ़ाती भट्ठे की ओर चल पड़ती है।

कुइसा बोझवा का मन काम में लग नहीं रहा है। एक 'झुकान' में पचास हजार ईंटों की बोझाई करके मूंड़ी उठाने वाला बोझवा है कुइसा! लेकिन आज!

वह रह-रह कर 'कनमनाता' और और गाँव की ओर से आने वाली पगडंडी पर नजर दौड़ा कर जंभाई लेता है।

गनेशी टोकता है, ''का बात है कुइसा भाई? मन नहीं लागत का?''

कुछ जवाब नहीं देता कुइसा! बंडी की जेब से चुनौटी निकालकर तंबाकू मलने लगता है।

ट्रैक्टर पर ईंट लदवाता बिल्लर कूट करता है, ''कुछ लाल-पियर नाहीं देखात का हो काका?''

लाल! पियर! यानी लाल-पीला!

सुनकर सचमुच लाल-पीला होना लगता है कुइसा! तंबाकू पटक कर बिना किसी को दिए चुपचाप मुँह में दबा लेता है। ऐं!

बिल्लर की बात हमेशा चिढ़ाने वाली होती है।

लेकिन नहीं! सचमुच लाल साड़ी नजर आ जाती है कुइसा को।

विमली भट्ठे के पास पहुँच गई है।

कुइसा की आँखों में चमक आ जाती है।

मुँह से रस या राल? तंबाकू की या...?

पास आते ही कुइसा आँख तरेरता है, ''अब तेरा आने का टैम हुआ है? दस बजने वाले हैं। चलते समय घड़ी देखा था?''

विमली कुइसा की आदत जानती है। बिना मसखरी किए उसका खाना हजम नहीं हो सकता। वह भी आँख तरेरती है, ''जेतना काम करेंगे ओतने न मजूर मिलैगी। तब काहे तोहार छाती फाटत है? और घड़ी देखै अपनी बहिनी का सिखाओ।''

सभी हँसने लगते हैं। कुइसा मुस्कराता है।

कुइसा कहता है कि विमली के आने से भट्ठे पर 'उजियार' हो जाता है। उसके जाते ही अंधियार!

...और अंधियार होते ही 'रतौंधी' शुरू हो जाती है। कुइसा को। विमली अगर रात में भट्ठे पर रहे तो कुइसा रात में भी बोझाई कर सकता है।

पहला खेप लेकर आती है विमली! एक पल खड़ी रहती है। कुइसा जान-बूझकर उसके सिर से ईंट नहीं उतारता!

''लेव पकरौ! गुरुआत अहीं!''

कुइसा की नजरें उठती हैं। वह मुस्कराता है।

अब यह कुछ 'मुराही' करेगा। विमली ताड़ती है और कुइसा के पैरों के पास ईंटें गिरा कर मुस्कराती मिठऊ गाली देती भागती है।

बस इतने का ही तो भूखा है कुइसा।

अपनी-अपनी पसंद! कुइसा को औरतों की गालियाँ, और मिल जाए तो धक्का खाना पसंद है। अगर चार औरतें मिलकर उसे नदी में डुबोनले लगें तो भी वह इंकार नहीं कर सकता!

कुइसा की इस आदत से परिचित हैं भट्ठे के मजदूरनें। सब मिलकर ऐसा कुछ करती कहती रहती हैं कि कुइसा का मन लगा रहे।

पचास के पेटे में पहुँच रहा है कुइसा। दर्जनों भट्ठों पर बोझवा मिस्त्री रह चुका है।

भट्ठे का काम हाथ में लेने के पहले देख लेता है—कौड़िहा मजदूर सिर्फ राँची के ही हैं या लोकल भी। सिर्फ राँची-बिलासपुर के लेबरों वाले भट्ठे पर एक दिन नहीं रह सकता कुइसा। दस-पाँच लोक मजदूरनें जरूरी हैं—देखने लायक!

सिर से ईंट उतारते हुए गरम साँस और तन का परस!

कुइसा के इस 'लोभ' से वाकिफ हैं खान साहब! तभी तो इस भट्ठे पर वह तीसरा सीजन बिता रहा है।

दरअसल भट्ठे को ही कुइसा घर-द्वार मानता है। जोरू न जाता! गौना आया तो कुइसा पर भट्ठा मिस्त्री बनने का भूत सवार था। पूरा का पूरा सीजन भट्ठे पर बिताता। आखिर दो साल इंतजार करने के बाद उसकी औरत चली गई किसी और का घर बसाने। तब से हर साल 'लगन' के महीनों में कुइसा बरदेखुओं का इंतजार करता है। भट्ठे का नशा तो प्राण के साथ ही जाएगा।

कुछ देर बाद विमली के सिर से ईंट उतारते हुए फिर मुस्कराता है कुइसा, "बहुत दिन हुए डरेवर बाबू नहीं आए!"

"बड़ी याद आवत है डरेवर बाबू की?" एक लड़की बोलती है।

सभी जानते हैं कि कुइसा विमली को चिढ़ा रहा है।

"इनके बहनोई हैं डरेवर बाबू! याद काहे न आए।" विमली जाते-जाते बोलती है!

कुइसा की सुस्ती फिर दूर हो जाती है।

लेकिन दोपहर में औरतों के झुंड के साथ नदी किनारे पीपल के पेड़ के नीचे सुस्ताते-खाते हुए विमली को सचमुच डरेवर बाबू की याद आती है। लगता है एक युग बीत गया डरेवर बाबू को देखे हुए।

कुइसा मिस्त्री झोंपड़ी में लेटा बारहमासा गा रहा है दुपहरिया काटने के लिए। औरतों-लड़कियों का झुंड नाना प्रकार की कथाओं-उपकथाओं-अफवाहों और गोपनीय कृत्यों-कुकृत्यों का पिटारा खोलकर बैठा है। उन सबकी सम्मिलित हँसी-खिलखिलाहट कुइसा के कानों में पहुँचती है तो उसे बारहमासा का पद भूल जाता है।

जाड़े की दोपहर कितनी जल्दी-जल्दी उतरी है। विमली को आज अपनी माँ को लेकर बाजार जाना है—डॉक्टर के पास! 'अधकपारी' की दवा कराने। इसलिए दोपहर ढलते ही उसने काम बंद कर दिया है। निमरी बकरी का कान पकड़कर वापस लौटती विमली नदी के पेटे में उतरती है तो सामने बिल्लर ट्रैक्टर धोता हुआ दिखाई पड़ता है।

विमली को आता देखकर खीस निकालते लगता है।

हमेशा हँसता-हँसाता रहने वाला लड़का है बिल्लर! अठारह-उन्नीस की उम्र! महतारी न बाप! इस गाँव में अपनी बहिन के घर रहता है और खान साहब के ट्रैक्टर की कलिंजरी करते-करते ड्रायवर बन गया है। दु:ख-तकलीफ की झाँईं पास नहीं फटकने देता। फक्कड़ और मसखरा।

ऐसे आदमी की हँसी का साथ देने में कोई बुराई नहीं समझती विमली! वह भी मुसकराती है।

"आज हाफ-डे काहे कर दिया डरेबराइन?"

बिल्लर के बात करने के ढंग से थोड़ा चिढ़ती है विमली। अकेले में थोड़ा डरती भी है। पाजी है। इसकी आँखों में शेतानी चमकती है?

"तोहार जीभ बहुत चलै लाग बिलरू? हम डरेबराइन हैं?"

फिर हँसता है बिल्लर! और जब विमली ट्रैक्टर की सीध में पहुँचती है तो एक बाल्टी पानी ट्रैक्टर के मडगार्ड पर इस अंदाज से फेंकता है कि आधा पानी उछल कर विमली के ऊपर पड़ता है जाकर!

"तनी देखि के बिलराहू! अंखियां फूटि गई हैं का?" विमली मुड़कर आँख तरेरती है तो वह खी-खी करके हँसने लगता है।

पानी का छींटा पड़ने से भड़की बकरी उथले पानी में कूदती उस पार चली गई है। विमली थोड़ा सा धोती ऊपर उठाए धार पार करने लगती है।

"परदेसी का 'टरक' बहुत मन भाया है। जाति बिरादरी का एक दम खियाल नहीं। ट्रैक्टर की ताकत टरक से 'बेसी' होती है विम्मल; कहो तो कौनों दिन लड़ा के

दिखा देई।''

उस पार पहुँचकर पीछे मुड़कर मुसकराती है विमली तो बिल्लर बोनट से उछलकर नदी के दह में कूद पड़ता है।

ऊपर टीले पर चढ़ते-चढ़ते विमली को बिल्लर की गीत सुनाई पड़ता है।

...अरे, टुटही मंड़इया के हम हैं राजा,
करीला कुजारा थोरे मा,
तोर मन लागै न लागै पतरकी,
मोर मन लागल बा तोरे मा,...

यानी राजा तो हम भी हैं भाई! लेकिन टूटी-फूटी झोंपड़ी के राजा! थोड़े में गुजारा करने वाले। डरेवर बाबू की तरह भारी मुँह-दिखाई तो नहीं दे सकते... लेकिन ऐ पतरकी! पतली कमर वाली तिरिया! तेरा मन मेरे पर आए न आए। मेरा मन तो तेरे पर ही लगा हुआ है।

आय-हाय! क्या गोली दागी है बिलराहे ने! वह फिर मुड़ कर देखती है। बिल्लर हंस रहा है और ट्रैक्टर के बोनट पर पैर से ताल दे-देकर नाच रहा है।

ह...राऽऽऽऽऽऽ मी!

बिजली की तेल!

माई की 'अधकपारी' के लिए बिजली का तेल मंगाया है विमली ने। कलुआ का मामा बिजली विभाग में काम करता है, उसी से।

मामा कहता है, ''ट्रांसफार्मर का तेल! तेल से होकर बिजली गुजरती है तो तेल में बिजली जैसा गुन भर जाती है।''

सचमुच बिजली जैसा असर करता है-विमली की माई कहती है बाजार के डॉक्टर तो पानी का पैसा लेते हैं। जेब काटने को तैयार! विमली की माई को डाक्टरी दवाई नहीं 'सहती'।

महतारी-बाप का जितना ध्यान विमली रखती है उतना तो इस गाँव में किसी का लड़का भी नहीं रखता। लड़के का ध्यान आते ही उसकी माँ पतोहू और गाँव की कुटनी-घर फोड़नी औरतों को सरापने लगती है। उसका बेटा विमली से दस साल बड़ा था। लेकिन पतोहू ने आते ही उसे अपने बस में कर लिया। गाँव की औरतों ने आग में

पलीता लगाया था और आने के छह माह के अंदर पतोहू लड़के को लेकर अलग हो गई थी। उसी साल दीवार के नीचे दबने से विमली के बाप के दोनों हाथ बेकार हो गए थे। घर में खाने के लिए अन्न का एक दाना नहीं था। बाप की दवाई के लिए पैसा कहाँ से आता? पतोहू के जेवर सास के पास ही रखे थे जमीन में दबाए हुए। उसी में से एक थान गिरवी रखना चाहती थी बुढ़िया। सुनते ही अगिया-बैताल हो गई थी पतोहू। बिना पानी पिए तीन दिन तक इसी बात पर लड़ती रही थी। सात पुस्त को गरियाती रही थी। लड़के ने सिर उठाकर एक बार भी उसे मना नहीं किया। तीसरी रात झोंपड़ी खोदकर गहने ढूँढ़ निकाले थे पतोहू ने और उसके बेटे को लेकर अपने मायके चली गई थी, जैसे बकरे को गले में पगहा लगाकर ले जाए कोई।

तीन दिन तक घर में चूल्हा नहीं जला था। बूढ़े के हाथों पर 'पलस्तर चढ़वाना तो बहुत ही जरूरी था लेकिन पूरे गाँव में खोजने पर भी कोई दस रुपया या एक मन अनाज देने को तैयार नहीं था। सरपंच जी की घरवाली पर ज्यादा जोर समझती थी विमली की माई। विमली दो साल से उन्हीं के घर पर रह कर चौका-बासन गोबर-झाड़ू कर रही थी। मजूरी के नाम पर दोनों टेम की रोटी और सपरंच जी की बिटिया का उतारन फराक, चड्ढी।

लाख पैर पकड़े विमली की माई ने कि बिना पेट में कुछ गए सबेरे दोनों बूढ़ा-बूढ़ी उठने लायक नहीं रहेंगे-सरपंच की औरत ने साफ कह दिया बिना कोई चीज गिरवी रखे कानी कौड़ी नहीं दे सकती वह! ...और गिरवी रखने की चीजें लेकर पतोहू मायके जा चुकी थी...विमली टुकुर-टुकुर माँ का रोना देख रही थी।

रोते-रोते खाली हाथ वापस लौट आई थी विमली की माई-कए घंटा रात बीते। दोनों बूढ़े-बूढ़ी तीसरी रात को भी खाली पेट लेटे।

लेकिन पहर रात बीते आई थी विमली। नौ साल की बच्ची! फराक में दोपहर की बनी दो मोटी रोटियाँ छिपाए हुए। एक विमली का हिस्सा और एक सपरंच जी की दोनों भैंसों का। भैंसों के हौदे में न डालकर वह रोटियाँ लेकर माँ के पास दौड़ी आई थी और किसी को संदेह न हो इसलिए उसे दौड़ते हुए ही वापस भाग जाना था।

रात भर लगा था निर्णय लेने में विमली को। और सवेरे वह अपनी झोपड़ी में लौट आई थी, ''नहीं करना उसे ऐसी जगह गोबर झाड़ू, जहाँ माँगने पर भीख भी नहीं मिल सकती।''

''नहीं करना? फिर क्या करेगी? गरीबी में आटा गीला करेगी? कम से कम

अपना पेट तो पाल रही है। यहाँ तो तीन दिन से चूल्हा रो रहा है।''

''अपना ही क्यों? सबका पेट पालेगी वह! भाई भाग गया तो क्या? वह लड़का बनकर रहेगी। नया-नया भट्ठा खुला है गाँव में। काम की अब क्या कमी है?... कौन कहता है कि आदमी-लड़के ही काम कर सकते हैं भट्ठे पर? राँची की मजदूरनें औरतें नहीं हैं? वे किसी से कम काम करती हैं? तब वह क्यों नहीं कर सकती? कितनी बार तो बुलाने आ चुका है भट्ठे का मुंशी गाँव की औरतों-लड़कियों को। वह कल से ही भट्ठे पर नाम लिखा देगी... जितनी ईंट ढोओ उतना पैसा। ठेके पर!''

कुछ अटपटा सा लगा विमली की माई को। दुनिया की बात वह नहीं जानती लेकिन यहाँ पर तो अभी तक आदमी लोग ही जाते हैं। भट्ठे पर। औरतों का जाना...

लेकिन विमली की माई चुप भी हो जाए तो क्या सारा गाँव चुप रह जाएगा। सबसे पहले सरपंच की घरवाली ने ही मुँह बिचकाना शुरू किया, ''हुंह! सठिया गई है क्या बुढ़िया? अच्छे भले खाते-पीते घर में पड़ गई थी लड़की। जूठा-कुठा, खाकर, घूरे पर सोकर भी चार साल में बाछी से गाय हो जाती। अब भट्ठे पर 'टरेनिंग' देंगी बिटिया को। सयानी हो रही है ना। इस घर का गल्ला खा-खा कर उमर से पहले ही मस्ती चढ़ रही है। ले 'टरेनिंग'। बहुत लोग 'टरेनिंग' देने के लिए 'लोक' लेने को बैठे हैं वहाँ।''

विमली के बाप को चढ़ाया सबने, ''दुनिया भर के चोर-चाई का अड्डा है भट्ठा। लौंडे-लपाड़े! गुंडे-बदमाश! रात-बिरात आते-जाते रहते हैं। नौ-दस साल की लड़की छोटी नहीं होती, आन्हर हो गई है बुढ़िया। ईंटा पथवाएगी। 'पाथेगा' कोई ढंग से। तब समझ में आएगा।''

विमली के बाप का तो दिमाग ही गरम हो गया था 'बोली' सुन-सुनकर। नाक कटवाने पर तुल गई हैं दोनों माँ-बेटी ...नहीं करवाना उसे हाथ पर पलस्तर। खुला ही रहेगा। भूखों ही मरेगा लेकिन ...हाथ ठीक होता तो गला दबा देता माँ-बेटी दोनों का।

लेकिन विमली की माई ने शाम को हुक्का गुड़गुड़ाते हुए थिर मन से समझाया था, ''जलते हैं तो जलें सब। सारा गाँव जले। वह सबके जले पर नमक छिड़कवाने का इंतजाम कर देगी। इस बार हफ्ता बंटने पर वह एक बोरा नमक लाएगी खरीद कर। जिसको अपने जले पर छिड़कवाना हो आकर छिड़कवा जाए ...मेरी बिटिया जनम भर दूसरे की कुटौनी-पिसौनी, गोबर-सानी करे। फटा उतारा पहिरे। तब इनकी छाती ठंडी रहेगी...एक टूका रोटी के लिए दूसरे का लरिका सौंचाए... भट्ठे पर कौन बिगवा (भेड़िया) बैठा है। सबेरे से साँझ तक काम करो। फिर अपने घर। एहमा कोन

बेइज्जती? ई गाँव के लोग केहू के चूल्हा की आग बरदास नहीं कर सकते जैसे इनकी छाती पर जलती है। इनहीं लोगन के चलते हमार सोना जैसन बेटवा हाथ से निकरि गवा... तू लूल तो भवे हो, अन्हरौं होई गए हौ का? कुछ सोचौं समझों!''

विमली का बाप तो एक दो दिन में चुप हो गया लेकिन पंद्रह-बीस दिन बाद विमली का ससुर दौड़ा आया। साल भर पहले ही तो विमली का विवाह हुआ था। उसके ससुर को पतोहू के भट्ठे पर काम करने पर सख्त एतराज था। अभी तो खैर लड़की छोटी है लेकिन चार साल में सयानी हो जाएगी तब... विमली की माँ ने किसी तरह समधी को भी समझा बुझा कर वापस किया था।

और अब आकर देखे कोई! आधे गाँव की बिटिया पतोहू भट्ठे पर मजूरी कर रही हैं। शुरुआत किया था विमली ने।

बाप के गुस्से से बचपन से परिचित है विमली। उसका गुस्सा ठंडा होता है 'मछरी' या कलिया से। विमली जानती है, और तीसरे चौथे उसका इंतजाम कर देती है।

झोपड़ी में था क्या पहले। टूटी चारपाई तक नहीं थी। बासन के नाम पर फूटठा तवा! टूटी कड़ाही! एक कठौता! दो कठौती! दस जगह से पिचकी अलमुनिया की भदेली। विमली ने धीरे-धीरे पूरी गृहस्थी जोड़ी है। उसके बाप-भाई पाँच साल में भी झोपड़ी पर नई छाजन नहीं डाल पाए थे। वह हर दूसरे साल छाजन बदलवाती है। विमली की ही कमाई से उसका बाप फिर से हाथ वाला हुआ है।

बाप की रजाई अलग। माई की अलग। कहीं आने-जाने के लिए कमरी! बाजार में हुई नीलामी से बाप के लिए मलेटरी वाली जर्सी लाई खरीद कर। माई की तंबाकू और खैनी कभी घटने नहीं पाती। बाप की धोती! कुरता! अंगोछा!

छह-सात साल क्या होते हैं? लेकिन इतने ही समय में एक-एक करके तीन चार थान गहने बनवा लिए हैं विमली ने। उसका बाप चुपचाप टंटी में रुपया लेकर शहर जाता है और कभी पायल, कभी ऐरन, कभी कमर-करधनी!

सचमुच लक्ष्मी है उसी बेटी!

आज फिर विमली को नहाने में देर हो रही है। राबिस से फटे पैर। आधा घंटा तो एड़ियाँ रगड़ने में लग जाता है। लाख तेल मले। दवा लगाए।

आज फिर डरेवर बाबू आने वाले हैं।

आज फिर लाल साड़ी पहनकर जाएगी विमली।

डरेवर बाबू को लाल साड़ी बहुत पसंद है।

लाल साड़ी पहनते हुए विमली मुस्कराती है। उसके हाथ का बना मुर्गा तो अब सारी दुनिया खाना चाहती है। लेकिन वह इतनी फालतू तो नहीं।

शुरू-शुरू में डरेवर जी के लिए भट्ठे पर खाना बनाने का जिम्मा उस पर पड़ा तो बड़ी खुश हुई थी वह। लेकिन उसका 'कारन' दूसरा था। तब वह बहुत छोटी थी। खाना बनाने, बर्तन माँजने, चौका लगाने आदि में वह आराम से चार घंटे गुजार देती थी। खान साहब खाना बनाने की मजूरी पाँच रुपए अलग से देते थे। पाँच रुपए तब दिन भर की दिहाड़ी के बराबर होते थे। लेकिन खुशी का असली कारण था चार घंटे के लिए ईंट ढोने से फुरसत! एक खेप में बारह ईंट की लदनी! दोपहर भर में ही गरदन अकड़ जाती थी।

खान साहब होशियार आदमी हैं। उनके भट्ठे से कोई नाराज होकर नहीं जा सकता। कहाँ 'खान' का भट्ठा और कहाँ डरेवर बाबू का उतना मोटा जनेऊ! उससे तो उसकी निमरी बकरी बाँधी जा सकती है। तो हर ऐरी-गैरी जगह तो वे खा नहीं सकते। बड़ी सफाई चाहते हैं।

और जितनी देर में मीट-मुर्गा तेयार होता है, खान साहब कोयले का दाम जुटाने के जुगाड़ में लग जाते हैं। बिना कोल-एजेंट का पिछला बकाया दिए, बिना ब्याज के, आधा पूरा दाम देकर कोयला लेना कम जीवट काम तो है नहीं!

वह भट्ठे पर पहुँची तो अभी डरेवर जी का टरक नहीं आया था। कुइसा मिस्त्री दूर से ही देखता है और काम छोड़कर खड़ा हो जाता है। कमर सीधी कर ले थोड़ा।

विमली के पहुँचते ही टोकता है, "आज तू फिर माँग टीका लगाकर आई! लाख बार कहा कि इसका 'चोन्हा' हमें बरदास नहीं होता।"

"बरदास नहीं होता तो आँख फोड़ लो" वह आँख उलटकर मुस्कराती है।

बिल्लर कहता है, विमली खान साहब के भट्ठे की 'हेड-लाइट' है।

हाथ-पैर धोकर वह भंडारे में घुसती है।

लहसुन, धनिया, अदरक, प्याज, मिर्च, हल्दी! भले खुद कलिया-मुर्गा नहीं खाती लेकिन कौन सा मसाला कितना डालना है, कैसे पकाना है? इसे कोई विमली से सीखे।

मसाला तैयार करते-करते मुंशी जी मुर्गा कटवाकर दे जाते हैं।

डरेवर बाबू की याद से ही सारे शरीर में गुदगुदी लगती है। पहले वह डरेवर बाबू

से ज्यादा बात नहीं करती थी। खाना बनाकर बाहर निकल जाती थी और पांडे खलासी खिलाता था। एक साल पहले उस बार आए डरेवर जी तो दाहिनी कलाई में कसकर रुमाल बाँधे थे-तेल में भीगा हुआ। पांडे खलासी चलाकर लाया था टरक। हाथ में मोच था या कहीं दब गया था। अंदर-अंदर खून जम गया था।

"थोड़ी-सी पिसी हल्दी तेल में गरम कर देना विमली। मालिस करना पड़ेगा" डरेवर बाबू ने कराहते हुए कहा था।

हल्दी-तेल की कटोरी पकड़ते हुए पता नहीं क्या था डरेवर बाबू की आँखों में कि वह बोल पड़ी थी, "लाइए मैं कर दूँ मालिस।"

डरेवर बाबू बच्चों की तरह चुपचाप मालिस कराने लगे थे।

"पंजे को जरा जोर से दबाइए जमीन पर। हाँ ऐसे।"

"अरे एतना सी-सी काहे करते हैं? बहुत 'दरद' होता है?"

वह फिक् से हँसी तो डरेवर बाबू का सारा 'दरद' दूर हो गया था।

पुराने रुमाल की पट्टी बाँधते-बाँधते कहीं कुछ अपने मन के कोने में भी बाँध लिया था विमली ने उस दिन।

इंजन की आवाज कानों में पड़ती है तो उसका दिल धक-धक करने लगता है।

छी-ई-ई-छक्क!

इंजन बन्द होने से पहले जोर से छींकता है ट्रक! सब लड़कियाँ कहती है- छिंकनहवा टरक! बहुत पहले शुरू-शुरू में बगल से ईंट लेकर गुजरते हुए ऐसे ही छींका था तो चौंकने से दो ईंटें उसके पंजे पर गिर पड़ी थीं। बड़ी देर तक रोती रही थी वह।

ऐसे क्यों छींकते हैं सारे टरक? एक दिन वह डरेवर जी से पूछेगी।

दाहिना फाटक खोलकर उतरते हैं डरेवर जी।

फूल छाप लुँगी! लम्बी नोक वाला जूता। बड़ी-बड़ी काली मूँछें! नीली बनियान! काला शरीर! भरा हुआ! गले में पतली सी सोने की सिकड़ी।

भंडारे में झाँक कर हँसते हैं, 'राम राम भाई।'

"राम-राम!" वह धीरे से जवाब देती है। हँसती है। कितनी हँसी छूटती है। बेबात की हँसी। आगे के दोनों दाँतों में सोना मंढ़वाया है डरेवर जी ने। हँसते हुए कितना

अच्छा लगता है।

डरेवर जी कुछ कागज पत्तर लेकर खान साहब के पास चले जाते हैं।

टरक को दुल्हन की तरह सजा कर रखते हैं डरेवर जी। एक बार बहुत पहले उसने झाँक कर देखा था अंदर गोरी-गोरी खूबसूरत मेमों की छापी चारों तरफ बीच में बैठते हैं डरेवेर जी।

पांडे खलासी, अंदर झाँककर सूँघता है, ''मुर्गा तैयार!'' फिर हँसता है।

''कहो पांडे भाय?''

भाय कहने से बहुत खुश होता है पांडे। भाय माने भाई नहीं। दोस्त? यार? साथी? गुइयाँ? नहीं। इसके अलावा कुछ। इससे थोड़ा बारीक।

पांडे भाय मुँह फैलाकर हँसता है। सुती से काले दाँत! डरेवर बाबू के आगे के जिन दोनों दाँतों में सोना मढ़ा है, पांडे के वही दोनों दाँत टूटे हुए हैं-झरोखा।

पहले वह कहती थी पांडे चाचा? चाचा सुनकर पांडे का मुँह लटक जाता था।

उल्टी रीति है इस टरक की भी। बाकी टरकों के खलासी लौंडे होते हैं डरेवर बूढे! और इस टरक के...

नहाकर रसोई में घुसते हैं डरेवर बाबू-उघारे बदन! विमली चूल्हे से सटा कर पीढ़ा और पानी रखती है।

खाना और तपाना साथ-साथ।

छाती के बाल कितने लम्बे घने और काले हैं डरेवर बाबू के। शरीर से पके कैथ की महक आ रही है। वह जोर से साँस खींच कर पके कैथ की महक सूँघती है।

खाने की थाली आगे सरकाती हुई वह पूछती है, ''चमरौधा जूता टरक के आगे काहे लटकाए हैं? अंदर रखने की जगह नहीं है?''

हँसते हुए डरेवर जी, ''ई जूता नहीं पनही है। ट्रक में नजर लगाने वालों के लिए। चौराहे के मामा के लिए।''

मामा की बात तो उसे नहीं पता, लेकिन नजर-टोना!

''तब तो घरवाली को नजर से बचाने के लिए घर के सामने भी पनही टाँगते होंगे?''

''पहले घरवाली का जुगाड़ लगाओ तो न जूता पनही टांगेंगे।''

ऐ! भिटहुर जैसे हो गए और घरवाली का जुगाड़ नहीं। उसे जाने कैसा लगा। तकलीफ हुई? अच्छा लगा? कुछ ठीक पता नहीं। लेकिन डरेवर बाबू के उसने ज्यादा ध्यान से देखा और एक साथ दो-तीन रोटियाँ निकालकर थाली में डाल दी।

कहते हैं पहले घरवाली का जुगाड़ लगाओ। जैसे मुझे ही लगाना है जुगाड़।

''मुर्गा बहुत मारू बनाती है विम्मल! खाती नहीं हो तो इतना अच्छा बना कैसे लेती हो?''

विमली कोई जवाब नहीं देती। चबुरी बाँध कर चुपचाप सुरुआ उड़ेलने लगती है कटोरी में।

'खाली मसाले का कमाल नहीं हो सकता यह? जरूर तम अपने पास का कुछ डालती हो इसमें।'

विमली जोर से हँसती है। खुलकर!

''बात बनाना बहुत आता है आपको।'' विमली डरेवर जी की आँखों में झाँकती है।

यह आदमी तो आँखों से ही हँसता है, धत्त!

डरेवर जी लुँगी के अंदर से एक पैकेट निकालकर विमली की तरफ बढ़ाते हैं। वह हाथ नहीं बढ़ाती तो उसके बगल में रख देते हैं।

''ई का है?''

''घर ले जाकर देखना।''

''कुछ लाया मत करिए। माई नाराज होती है।''

''माई कैसे देखेगी इसे। अंदर पहनने की चीज'' डरेवर जी इशारे से बताते हैं तो विमली का मुँह लाल हो जाता है-भक्क!

''हर बात माई से बताने की आदत रहेगी तब तो आगे चलकर बड़ी परेशानी होगी।'' डरेवर जी हँसते हैं।

''अच्छा अब चुपचाप खाकर भागिए। अभी पांडे जी अगोर रहे हैं।''

''झरिया धनबाद घूमने कब चल रही हो? इस बार बिना साथ लिए नहीं जाऊँगा।''

विमली भौहों में हँसती है और पांडे के खाने की थाली लेकर बाहर निकल जाती है।

खाने के बाद विमली के आँचल में ही हाथ-मुँह पोंछने का मन करता है डरेवर बाबू का। लेकिन...

झरिया! धनबाद!

डरेवर जी हर बार उसे झरिया धनबाद चलने का न्योता देते हैं। गाँव और बाजार छोड़कर कभी बाहर नहीं गई है विमली! बनारस! झरिया! धनबाद! सबके बारे में सिर्फ सुनती है। लेकिन कल्पना की आँखों से जो झरिया दिखाई पड़ता है वह कम सुंदर नहीं है! झर! झर! झरता हुआ झरिया। बनारस। कितना रसदार गन्ने जैसा और धनबाद में उतना धन न होता तो कैसे अपनी टरक दुल्हन की तरह सजाते डरेवर जी?

विमली को लगता है कि थक जाने पर 'टरक' का हाथ-गोड़ भी मींजते होंगे डरेवर जी और पांडे खलासी मिलकर। धत्त!

जाने के पहले एक लोटा पानी माँग कर पीते हैं डरेवर जी। प्यास उनकी आँखों बसी है।

धूल उड़ाते जाते ट्रक को बड़ी देर तक खड़ी देखती रहती है विमली। ट्रक के आगे दोनों ओर काली लंबी चोटी-सी लटकती रहती है। जैसे हाथ हिलाकर बुलाती हो, चलो विमला, झरिया धनबाद!

'चीज' लाकर परेशानी में डाल गए डरेवर बाबू। अगली बार पूछ कर दाम दे देगी जरूरी।

जूठे बर्तन धोते हुए उसकी आँखों में एक बार फिर डरेवर जी की प्यासी आँखें कौंध जाती हैं। सूखे होंठ चाटते हुए डरेवर जी।

...टोपी वलवा पियासा चला जाए,

हमारे लगे दुई गगरी...

प्यासा ही चला जा रहा है टोपी वाला छैला!

जबकि मेरे पास दो-दो घड़े हैं-व्यर्थ!

मकर संक्रांति।

अघोरी बाबा के मठ का मेला। कई कोस दूर से लोग आज के दिन 'खिचड़ी' चढ़ाने आते हैं मठ पर।

झोंकाई के अलावा आज भट्ठे का सारा काम बंद है। सारे मजदूर स्त्रियाँ बच्चे

ट्रैक्टर-ट्रॉली पर लदकर जा रहे हैं मेला देखने।

बिसुई के बिलकुल कंठ पर है बाबा का मठ।

मकर-असनान! खिचड़ी-दान और मेले की मौज।

पीपल के पेड़ के नीचे, काली मंदिर के सामने बकरा कटेगा। काली का परसाद। भट्टे के मजदूरों ने ही बनाया है यह काली मंदिर। ईंट लादकर जाने वाला हर गाड़ीवान या ट्रैक्टर वाला हर खेप में दो ईंटें गिराता है मंदिर के नाम पर। दो-दो ईंट के दान से बना मंदिर। मेहनत भट्ठा मजदूरों की और सीमेंट-सरिया खान साहब का। बालू का दान दिया है बिसुई नदी ने। काली की मूर्ति देखे। कितना विकराल रूप। खान साहब ने ही मंगाई है। 'खान' साहब के पड़दादा जब 'सिंह' साहब से 'खान' साहब हुए तो उनकी कुलदेवी यह काली उनके गर्भ-गृह में भूमिगत हो गई थीं। उन्हीं की पुनर्स्थापना।

बहुत जाग्रत देवी हैं। बड़ा 'जस' है। कुइसा मिस्त्री भी इस साल होली पर बकरा चढाएँगे-कहीं से एक घरवाली का जुगाड़।

खाना तैयार करने और बलि के कर्मकांड के लिए पाँच-छह औरत मर्द रुके हैं मंदिर पर! बाकी सभी मेले!

मजदूरनों की मेट है विमली। वह ट्रॉली के बीच में गोल बनाकर बैठी है।

गोरे, साँवले, काले आबनूसी चेहरे। जूड़े में फूल और लाल रिबन! बेवजह हँसती हैं सब। सफेद दाँतों की पंक्तियाँ।

ट्रैक्टर पर बैठा कोई बोलता है, "ऐ! गाना शुरू करो।"

कितने गीत, भजन, कीर्तन, साहर, नटका, दादरा, खेमटा याद है विमली को, कोई हिसाब नहीं।

विमली के गीत का तुरंत असर होता है। राँची वाली दो-तीन लड़कियाँ उठ कर नाचने लगती हैं। चलती हुई ट्रैक्टर ट्रॉली में घेरा बनाकर नाचती लड़कियाँ! क्या बात है!

लेबरों ने ढोल-कनस्तर सँभाल लिया है। गाने की आवाज ढोल-कनस्तर और ट्रैक्टर के शोर में डूब जाती है। सिर्फ कोलाहल! हँसी!

कुइसा भी ट्राली में ही बैठना चाहता थे। लेकिन बिल्लर ने उन्हें ट्रैक्टर के मडगार्ड पर बैठा दिया-उनके पद के अनुसार। वे बार-बार मुड़ कर ट्रॉली की आरे देखते हैं। तभी कोई कूट करता है-"काका! झुलनी लिए हो?"

झुलनी! पता नहीं इस शब्द से कितनी चिढ़ है कुइसा को। और कैसे हैं लोग कि हँसने-बोलने के मौके पर भी डंक मारने से नहीं चूकते।

दरअसल खान साहब के भट्ठे पर आए थे कुइसा तो कुछ आस लेकर आए थे। खान साहब के मुंशी ने झाँसा दिया था कि आपकी जाति-बिरादरी बहुत है हमारी तरफ। लड़कियों की कौन कमी। एक छोड़ दस घरवालियाँ रखो।

इसी विश्वास पर पहले साल कुइसा 'लगन' भर गाँव-गाँव घूमे। दिन भर भट्ठे पर बोझाई और रात किसी गाँव में। बहुत गाँजा बीड़ी तंबाकू बरबाद कराया लोगों ने। सबसे बताते-पतोहू के लिए झुलनी तो मेरी माँ ही गढ़ा गई थी मरने के पहले।

जेब में ही रखते थे झुलनी। प्लास्टिकी की डिबिया में, लाल मखमल में लपेट कर। निकाल कर दिखाते। इसके अलावा पाँच बिगहा जमीन है। पाँच सौ की पगार। घरवाली हो जाए तो भैंस लाते कितनी देर लगेगी?

आखिरी मिली एक घरवाली। उसका जीजा साली के लिए दूसरा वर खोज रहा था। बहुत छुपाकर सारा मामला तय हुआ क्योंकि 'साली' के 'बियहा' को पता लगने से सारा मामला खराब हो सकता था।

कई थान गहना, साड़ी, चादर, चप्पल। सिंगार-पटार का सामान...सब लेकर गए कुइसा। तय था कि लड़की का जीजा बाजार में लेकर आएगा लड़की को और वहीं से पहना-ओढ़ाकर विदा कर दिया जाएगा।

विदा कराते-कराते शाम हो गई। अघोरी बाबा की मठिया पर नदी पार करते-करते अंधेरा हो गया... कितना धीरे-धीरे चलती है दुल्हन! ज्यों-ज्यों अंधेरा घिरता जा रहा है, पीछे की ओर पिछड़ती जा रही है।

इस पार आकर इंतजार करने लगे कुइसा... कहाँ गई दुल्हन! थोड़ी देर बाद वापस नदी के पेटे में खोजने के लिए लौटे। कहीं कोई नहीं। किनारे, पानी की धार के पास रेत पर एक पोटली सी पड़ी थी। उठाकर देखा-नाच में जनाना का 'पाठ' करने वाले नचनिया लड़के सीने पर ब्लाउज के नीचे दो छोटी-छोटी गेंद सी बाँध लेते हैं-वही। इस धोखे में सारी जमा-थमा निकल गई थी कुइसा की।

तब से झुलनी कहने पर आग लग जाती है उनके बदन में।

एक पेड़ के नीचे ट्रैक्टर खड़ा कर देता है बिल्लर!

चारों तरफ भीड़ ही भीड़। रंग-बिरंगे लोग। रंग-बिरंगे कपड़े। कपड़े जो सालों-

साल मेले के इंतजार में गगरी या गठरी में कैद रहते हैं।

दूर-दूर के बिछड़े लोग बिछड़े दिल मिलेंगे मेले में, जो उस तरह खुल्लम-खुल्ला नहीं मिल सकते। कितने मिलने वाले रात आठ बजे की रेलगाड़ी पकड़कर भाग जाएँगे दिल्ली लुधियाना।

जितने लोग उतने सपने। उतनी चींजें...क्या लें, क्या छोड़ें?

विमली ने ठुड्डी पर 'तिल' गोदाया है और कलाई पर...सीताराम!

सीताराम? भगतिन हो गई?

किसी को क्या पता कि सीताराम उसके आदमी का नाम है। कितने जतन से पता लगाया है उसने अपने आदमी का नाम?

अनजाने अनदेखे आदमी का नाम? सीताराम!

वापस भट्ठे पर पहुंचते-पहुँचते एक घंटा रात बीत जाती है। फिर काली मंदिर की पूजा! नाच-गाना! भोज! पहर रात तक। खान साहब ने बिल्लर को सौंपा-जिन औरतों-लड़कियों के साथ उनके घर का कोई आदमी नहीं है उन्हें घर तक छोड़ना उसके जिम्मे।

आखिर में पड़ती है विमली की झोपड़ी। थोड़ा हट कर। अकेली रह जाने पर बोलती है, "अब तू जा रे। मैं चली जाऊँगी अकेले।"

"चल-चल। अभी कुछ हो-हवा जाए तो?'

"हो-हवा क्या! कोई बिगवा बैठा है रास्ते में?"

"तेरे लिए बिगवों की कमी है? तू जहाँ रहेगी वहीं बिगवा पैदा हो जाएँगे।"

"बिगवा आएगा तो टाँग पकड़कर चीर न डालूँगी।"

"तेरा बाप बैठा अगोरता होगा। कनकनाता होगा। उसका वश चले तो झोपड़ी के सामने से सबका आना-जाना बंद कर दे। साइकिल की घंटी बजाने से चिढ़ता है।"

सहसा सरपताही से कोई जानवर निकलकर भागा। आगे-आगे चलती विमली चौंक कर ठिठकी तो बिल्लर उसकी पीठ से सट गया आकर।

पूस माघ का जाड़ा। बादल छाए हुए हैं। बदली के चाँद की उजास।

"ए बिलरु। बड़ी बदमाशी सूझती है-हट!"

"अरे-अरे। मनई जैसा चल।"

''बदमाशी' पर उतर आया है बिल्लरवा। पहले से शंका थी विमली को।

''डरेवर बाबू की देह महकती है और मेरी गंधाती है?''

''रमकल्ली के भतार! न तू हमार बियहा हो, न डरेवर बाबू। खबरदार।''

अरे एकदम 'सनक' गया है?

विमली के दाँत कलाई में धंस गए हैं बिल्लरवा की। बाप रे! बिल्लर की चीख निकल जाती है।

अकिल गुम हो गई है बिल्लर की-एक पल में हँसती खिलखिलाती अगले ही पल एकदम 'कटही'! सोचती क्या है! चाहती क्या है! और बोलती क्या है!

आँखें कुछ और बोलती है! जीभ कुछ और!

'मूढ़' जैसा आगे-आगे चलने लगा है बिल्लर! विमली पीछे-पीछे। मुड़ते ही सावधान हो सकती है!

उदास हो गया बिल्लर! एकदम चुप!

कुछ देर बाद बेवजह हँसती है विमली! खनखनाती हुई हँसी, ''नाराज न हो बिल्लर! बदमाशी नहीं करनी चाहिए रे।''

जादूगरनी! बिल्लर सोचता है-कोई जादू सिद्ध है इसको!

विमली का बाप उसके इंतजार में झोपड़ी के बाहर चिलम-पर-चिलम फूँकता आग तापता बैठा बुढ़िया को गालियाँ दे रहा है। इतना रात में उसे बिल्लर के साथ आया देख भड़क उठता है-''अब जाकर तेरा लौटने का 'टेम' हुआ है? खबरदार जो कल से घर के बाहर कदम रखा। हाथ गोड़ तोड़ दूँगा। इतनी-इतनी रात तक मेला देखेगी तू?''

बिल्लर 'तसा' पर हाथ सेंकते हुए बोली बोलता है, ''गोदना गोदवाने गई थी बुढ़ऊ! एक पहर रात बीतते ही 'परान' निकल रहे हैं। बिदा कर दोगे तो कैसे चैन पड़ेगा?''

वह बोली बोल सकता है। इस गाँव का साला जो है।

विमली का मन होता है-झाड़ू लेकर मुँह पीट डाले इस बिल्लरवा का। लेकिन बाप के गुस्से को देखकर चुपचाप झोपड़ी में घुस जाती है।

माँ की रजाई में घुस कर बताती है, ''रतौंधी की गोली लाई हूँ माई, तेरे लिए मेले से। अंधेरा होने के एक घंटा पहले एक गोली रोज...''

अभी तक माँ से ही चिपक कर सोती है विमली रात में! अकेले उसे नींद नहीं आती।

माँ बड़ी देर तक बेटी को तमाम ऊँच-नीच, इज्जत आबरू की बात समझाती है। इतनी-इतनी रात तक घूमना! उसके बाप का बिगड़ना अकारण थोड़े है।

''सुनते हैं कोई डरेवर जी आते हैं। कोई सर-सामान रुपया-पैसा नहीं छूना! खबरदार! परदेशी की प्रीत! नहीं लगाना!''

विमली को बच्चा क्यों समझती है उसकी माँ! दुनिया भर की भूखी नजरों की भाखा पढ़-पढ़कर वह कब की पंडित हो गई है-बुढ़िया को कौन बताए।

जिस बात की लोग चर्चा करें, शंका करें, बस उसी से बचना चाहिए, यह समझ तो अपने आप आ जाती है। कब आ जाती है, खुद विमली को भी नहीं पता। माँ क्यों इतना डरती है?

जो बात जितनी अच्छी लगे उसमें उतना ही खतरा! बस इतनी सी बात!

बुढ़िया चुप होती है, जब विमली का हुंकारी भरना बंद हो जाता है।

रतौंधी होने से क्या हुआ? बुढ़िया विमली को मन की आँखों से देखती है। मन की आँखें बहुत तेज हैं बुढ़िया की। वह विमली के एक-एक अंग के बाढ़ का हिसाब रखती है। पराया धन। जब तक जिसकी अमानत उसको न सौंप दिया जाए...

सो गई लड़की! खटिया पर गिरते ही मरती है। अब बुढ़िया विमली के एक-एक अंग को टटोल-टटोल कर पढ़ रही है-सीना! पेट! कूल्हे! आखिर दुनिया भर के लौंडे-लपाड़ों के बीच दिन काटती है उसकी बेटी!...

विमली साँस खींचे माँ के हाथ के स्पर्श अनुभव करती है-चुपचाप! गुदगुदी रोके नहीं रुक रही है।

दूसरे दिन ही खबर फैलती है-बिल्लर ने विमली को जलेबी खिलाई है मेले में।

और जलेबी का दाम!

बिल्लरवा रात में अकेले गया था विमली को पहुँचाने।

सुना है बिल्लर ने भी विमली से कलाई पर पट्टी बँधवा ली रात में। जैसे पारसाल डरेवर बाबू ने बंधवाई थी।

विमली को आता देख नदी के दह में कंटिया लगाए बैठा दस-बारह साल का कलुआ गाने लगता है...अब ना खाबे ठोंगा की जलेबी मोरी माई रे।

तब भी वह नहीं समझती।

भट्ठे पर सभी कूट हँसी हँसते हैं। दोपहर में कुइसा निरगुन गाता है-

''नैहर में दाग पड़ा हो मोरी चुनरी... नैहर मा...''

पता नहीं क्या आग लगाई है बिल्लरवा ने? या किसी और ने। जाने कैसे मेले की खबर उसकी ससुराल तक पहुँच गई। उसका ससुर दौड़ा आया है...सुनते हैं उसकी पतोहू ट्रैक्टर पर बैठकर मेला देखने जाती है...जलेबी! ...आधी रात तक बाहर! कोई 'धर्मशाला' है उसकी पतोहू? कि पंचायती हंडा? जो चाहे 'खिचड़ी' पका ले। बिना गौने का 'दिन धराए' वापस नहीं जाएगा वह?

''देखिए समधी भाई! बात को समझिए! ना-नुकूर करने में इज्जत नहीं है। चावल 'सिरजा' जाता है, 'भात' नहीं। चावल भात बना नहीं कि दूसरे दिन ही सड़ने लगता है। लड़की 'सयानी' हुई तो भात हो गई। उसे तो ससुराल भेजने में ही इज्जत है।

सीझा-सुलझा आदमी मालूम होता है विमली का ससुर! पाँच पंच के बीच में बोलना आता है। चावल! भात! कायल होने के अलावा रास्ता क्या है?

लेकिन पहिले 'टेवा' में ही तो हामी नहीं भर सकती किसी लड़की की माँ। लोग कहेंगे लड़की माँ-बाप पर भारी पड़ रही थी। किवाड़ की आड़ से बात कर रही है विमली की माँ, ''एक बार तो समधी को लौटना ही पड़ेगा।''

समधिन की बात है तब तो मानना ही पड़ेगा ठीक है। जल्दी ही वह दुबारा टेवा लेकर आएगा।

माघ बीतते-बीतते सूरज का रोब-दाब बढ़ने लगता है।

दोपहर बाद ईंट ढोने के बाद सारी औरतें लड़कियाँ नदी के दह में 'बोह' ले रही हैं।

गौने की चर्चा चल जाने के बाद विमली को रोज एक-दो बार ससुराल का सपना आता है। बात करते-करते अचानक कहाँ खो जाती है। जगाने पर जागती है, बात-बात पर हँसने खिलखिलाने की आदत कहाँ गई?

अपने आदमी को देखने की कौन कहे, उसके बारे में कुछ सुना भी नहीं है विमली ने। ज्यादा नहीं, कुल तीन कोस दूर है उसकी ससुराल। अघोरी बाबा के मठ से तो दो

ही कोस। लेकिन कभी मेला देखने के बहाने या बाजार-हाट भी नहीं आया इस तरफ! सुनती है-कलकत्ता गया है, कमाने-धमाने! उसका हाथ अनायास कलाई सहलाने लगता है-सीताराम! लेकिन जब भी कल्पना में सीताराम की कोई छवि देखना चाहती है विमली, डरेवर बाबू के सोने मढ़े दाँतों से फटती हँसी छा जाती है सामने! पके कैथ की गंध!

धत्त।

सहसा वह जागती है-डरेवर जी इंतजार में बैठे होंगे। खाना बनाकर नहाने आई तो नहाती ही रह गई।

वह पानी से निकलकर जल्दी-जल्दी कपड़े बदलती है।

पीढ़े पर बैठते हुए मुस्कराते हैं डरेवर जी, ''हम तो समझे, नदी से सीधे अपने घर चली गईं तुम?''

''भूल गई! बड़ी देर हो गई?''

डरेवर जी उसे ध्यान से देखते हैं-चेहरे का तेज दिनों दिन बढ़ता जा रहा है, शरीर गदराता जा रहा है। कितनी चमकती है देह!

डरेवर जी फिर एक बंडल बढ़ाते हैं विमली की तरफ-साड़ी, बिलाउज, पेटीकोट!

''ई का है?''

''पहना जाता है।''

''सो तो ठीक है लेकिन ईं सब काहे लाते हैं आप? कौने पद से?''

''अब पद-वद तो तुम्हीं समझो।''

''हम समझते हैं तबै न कहते हैं डरेवर जी, हमारा आपका नाता साहेब सलामत का है। हँसी-ठिठोली का! चीज-बतुस के लेन-देन मा तो कमरी भीज जाएगी। बहुत गरु, बहुत गाढ़ पकड़ लेगी। हल्का बोझ ही अच्छा होता है डरेवर बाबू, जेतना आसानी से उठ जाए। इसको रखिए अपनी घरवाली के लिए।''

''तुम तो कभी-कभी पुरखिन बन जाती हो-'' डरेवर जी बात को रसेदार बनाए रखना चाहते हैं।

रसेदार बात और रसेदार मुर्गा, दोनों बहुत पसंद है डरेवर जी को।

''ई हमारा 'चीन्ह' है विमला! 'चिन्ह' को लौटाने का 'मतलब' समझती हो?''

बड़ी-बड़ी आँखों से सीधे-आँखों में ताक रही है विमली। उसको एकदम बुद्धू समझते हैं क्या? समझते हैं क्या? 'मतलब' की बात समझाते हैं? खूब समझती है वह 'मतलब' की बात! 'मतलबी' कहीं के!

वह बात बदलना चाहती है, ''आज खान साहेब से काहे झक-झक कर रहे थे कोयला उतरवाते समय?''

''खान साहेब हेला के सार हैं। रुपए में तीन अठन्नी भेजना चाहते हैं। कोई कितने दिन घाटा-उधारी सहेगा?''

''इतना खाने-पीने का इंतजाम करते हैं-मुर्गा-मछली!''

''मुर्गा-मछली से भट्ठा चलता है कि कोयले से? सच तो यह है कि मैं तुम्हारा मुँह देखने के लालच में चला आता हूँ इतनी दूर, पंद्रह-सोलह हजार का कोयला लादकर। वर्ना मुँह इधर करके तो मैं...! बस तुम्हारे कारन! तुम्हारे कारन यह आदमी मुझे चूना लगाता जा रहा है।''

'हमारे कारन काहे?' विमली की जबान ऐंठ जाती है-''हमारा आपका कौन नाता? जेतना दिन यहाँ आ रहे हैं, भेंट मुलाकात बदी है, हो रही है! नहीं तो आप अपने रास्ते चले जाएंगे हम अपने।''

कितनी 'बेदरदी' बात कह दी विमली ने। डरेवर जी बिसूरते रह गए बड़ी देर तक।

''एतना 'गोस्सा' काहे करती हो विमला। एक दिन तुम्हारे बप्पा के पास चलना है।''

''ऊ काहे?''

''कुछ माँगना है।''

''क्या?''

''तुम्हें!''

जोर से हँसी विमली! सुनकर सारा घाटा, सारी उधारी बिसर गई डरेवर बाबू की।

बहुत-बहुत लड़कियाँ देखी है डरेवर बाबू ने! बंगाल, बिहार और यू.पी. में। लेकिन ऐसी लड़की! जितनी नजदीक उतनी ही दूर! दूर नजदीक साथ-साथ हत्तेरे की।

डरेवर जी कुछ सोचते हुए लोटा लेकर बाहर निकलते हैं।

कितने भरम में पड़ जाती है आदमी की जाति! दो बात हंस बोल लेने से। कलकत्ते वाले उसके आदमी को क्या पता कि कितने 'जतन' से सँभाल कर रखी है विमली ने उसकी अमानत! पके आम के पेड़ की रखवाली जैसा कठिन काम! कितनी निगाहें हैं, पके आम के पेड़ पर!

बिल्लर की बहिन रमकल्ली आज दोपहर से ही घुसी है विमली की झोपड़ी में। एक 'बात' लेकर आई है वह। बिल्लर और विमली दोनों के फायदे की। विमली के महतारी-बाप के तो और भी फायदे की।

सुनते हैं विमली का आदमी तीन साल से घर नहीं आया कलकत्ते से। रुपया-पैसा भी नहीं भेजता बाप के पास। दिहाड़ी मजदूरी करता है। गुन का न सहूर का। अगर विमली की माई विमली को बिल्लर के साथ विदा कर दें... उन लोगों की जाति में यह कोई अनोखी बात नहीं है। महतरी-बाप के मर जाने से बचपन में शादी नहीं हो सकी वरना सौ लड़कों में एक लड़का है बिल्लर। डरेवरी करता है। चार पैसा कमाता है। राम जानकी जैसी जोड़ी रहेगी दोनों की। गाँव में ही झोपड़ी खड़ी कर दी जाएगी। आँख के सामने रहेंगे दोनों। विमली के माँ-बाप चाहें तो घर-जमाई बनकर रहने के लिए भी तैयार हो जाएगा बिल्लर। लड़के की कमी भी नहीं खलेगी। नहीं तो विमली के जाने के बाद कौन है एक रोटी बना कर देने वाला दोनों को? लड़के वाला चाहेगा तो बिल्लर 'लगत' का हरजाना भी देने को तैयार है।

सोचने लायक सलाह देकर चली गई रामकली! दोनों बूढ़े-बूढ़ी शाम तक सलाह करते रहे। किसी तरफ से कोई बुराई तो नजर नहीं आती इसमें। लड़के वाले चाहेंगे तो पंचायत में जो 'जुरमाना' 'लगत' के रूप में देना पड़ेगा उसे भी दे देगा बिल्लर। उन दोनों के दिमाग में पहले क्यों नहीं आई इतनी अच्छी बात?

''लेकिन विमली मानेगी तभी न!''

''विमली से पूछने की क्या बात है इसमें?'' विमली का बाप बिगड़ता है, ''उसे तो अपने दूल्हे की सूरत भी याद नहीं होगी। बचपन की शादी! बच्चों के खेल जैसी!''

रात में खा-पीकर सोते समय बात का मुँह पूरी सावधानी से धीरे-धीरे खोलती है बुढ़िया।

''लेकिन मेरा विवाह तो तू पहले ही कर चुकी है रे! फिर दूसरा घर करने की काहे सोच रही है?''

''वह लड़का तो कई साल से घर नहीं आया बेटी!''

''लेकिन जिंदा तो हैं। चिट्ठी-पत्री लिखने पर, वक्त-जरूरत क्यों नहीं लौटेगा? मेरवा 'वियहा' है वह। क्या सोचेगा?''

''बिल्लर जाना सुना, अच्छा लड़का है। अच्छा कमाता-धमाता है।''

''तो क्या मेरा आदमी लूला-लंगड़ा काना है?''

''सो तो नहीं। लेकिन सुनते हैं नौकरी-चाकरी ठीक नहीं है। घर भी पैसा कौड़ी नहीं भेज पाता।''

''हो सकता है अपने खाने भर को ही कमाता हो।''

''तब तुझे क्या खिलाएगा? क्या सुख देगा?''

''यह आज सोच रही है। पहले क्यों नहीं सोचा? क्या जरूरत थी बचपन में ही किसी के गले से बाँध देने की।''

''आज सोचने में क्या हर्ज है?''

''आज सोच सकती है अगर उसमें कोई खराबी हो। कम पैसे से ही कोई खराब हो जाता है, छोटा हो जाता है। वियाह तूने लड़के से किया था कि पैसे से? मेहनत करेगा आदमी तो एक रोटी कहीं भी मिलेगी। आदमी को अपनी मेहनत पर रीझना चाहिए कि दूसरे के पैसे पर रे?''

विमली उठ कर बैठ जाती है खटिया पर, ''कल को कोई दस बीघे वाला लड़का आ जाएगा तो तू कहेगी कि मैं उसी से साथ बैठ जाऊँ।''

सहसा उसे याद आता है-झोपड़ी के कोने में नया हुक्का और तंबाकू से भरी हाड़ी रखी देखी है उसने। तंबाकू में सने चोटे की गंध पूरी झोपड़ी में फैल रही है।

बिल्लरवा की बहिन दे गई यह सौगात? उसके बदन में आग लग जाती है। वह माँ को पकड़ कर झिंझोड़ने लगती है, ''दस रुपए के हुक्के तंबाकू पर तूने अपनी बिटिया को रांड समझ लिया रे? बोल! कैसे सोच लिया ऐसा? जिसकी औरत उसे पता भी नहीं और तू उसे दूसरे को सौंप देगी? गाय बकरी समझ लिया है?''

''चुप-चुप-चुप! हल्ला मत कर रांड!''

इस बार आया विमली का ससुर तो गौने का दिन तय करके ही वापस गया। दो दिन तक रुका था।

कुइसा मिस्त्री ने सुना तो अबोला रह गया। अंधियार करके चली जाएगी विमली

भट्ठे पर। पाँच सौ रुपए तनख्वाह पाता है वह। पाँच बिगहा खेत! विमली का आदमी तो सुनते हैं झल्ली ढोता है कलकत्ते में। क्या सुख देगा जनाना को? दो-तीन बार वह गया विमली के बाप के पास, चिलम पीने के बहाने। कुछ मन-मुँह मिले तो बात आगे बढ़ाए। लेकिन कितनी जलती हुई आंखें है बूढ़े की। बात करने जाइए तो घायल होकर लौटिए। आँखों से ही दाग देता है।

काम से मन उखड़ने लगा है कुइसा का। कभी 'लचारी' गाते हैं कभी बारहमासा-

लागे मास अगहन
जाय गोरी कै गवन
काटैं सैंया संग चयन
मोरे बालमुआ...

''लेकिन गोरी का 'गवन' तो माघ में पड़ा है कुइसा भाई?''

''माघ-फागुन का जाड़ा तो और भी गुलाबी होता है गनेशी भाय!''

ठाट-बाट से गौना लेने आया है विमली का ससुर! बाजा, तमाशा! आतिशबाजी!

चनवाडीह की नाच पार्टी। सौ-सौ ग्राम की गाँजे की पुड़िया। बक्सा भर कर दारू की बोतलें।

फिरी है सबके लिए, घराती हों चाहे बराती।

दोनों नशे इकट्ठे हुए तो बाजे के ताल पर बूढ़ा खुद घंटे भर नाचता रहा।

ए भाई! बूढ़ा काहे कहते हैं? चालीस बयालीस से ज्यादा की उमर नहीं। पहलौटी का लड़का था सीताराम। बीच की उमर में पैदा हुआ। घरवाली नहीं गुजरी होती तो अभी तक बेधड़क बाल-बच्चे होते रहते।

बीस साल तक खुद चूल्हा फूंकता रहा। अब जाकर तवा-कलछुल से फुरसत का समय आया है। नाचेगा नहीं?

गाँव भर की औरतें झोपड़ी के अंदर घेरा बना कर ससुराल से आई एक-एक चीज की पड़ताल कर रही है। हाथ की अंगूठी! नाक की नथ! दो थान सोने के? पायल! बिछुए और हबेल! तीन थान चाँदी के। विमली की जाति में इतना जेवर कम ही लोगों को मिलता है। दुलहिन के कपड़े लत्ते के साथ समधी-समधिन की पियारी धोती अलग से।

औरतें विमली के 'भाग' को 'सिहा' रही है।

बस एक साध रह गई। दुलहा नहीं देख पाई विमली का। उसे नौकरी से छुट्टी नहीं मिली... गाँव की औरतों को नाच भी बहुत पसंद आया।

बिल्लर कल से ही मेहमानों की सेवा में लगा है।

सबेरे बिदायी के समय खान साहब ने भी साड़ी भिजवाई। डरेवर जी ने एक चादर-और इक्यावन रुपए नगद दिए। पांडे खलासी ने ग्यारह रुपए।

लेने-देने में विमली का बाप भी समधी से उन्नीस नहीं रहा। घड़ी, सायकिल, रेडियो, पाँच कुंडा बतासा, एक बोरा लाई, पाँच मन सीधा (राशन), एक बोरा आलू, एक बोरिया नमक, दो किलो तेल, एक किलो घी, रजाई, गद्दा, पलंग। गिरते-पड़ते दो ऊँट की लदनी।

पहले माई का पैर पकड़ कर रोती है विमली! फिर बप्पा का! फिर सखियाँ! पड़ोसिनें! भट्ठे की मजदूरिनें!

निमरी बकरी आज सबेरे से ही पूंछ हिला-हिलाकर चिल्ला रही है। डोली में बैठने से पहले उसे भी पकड़कर भेंटती है विमली। डोली उठती है तो वह चीत्कार कर उठती है।

"आपन देशवा छोड़ाया मोरे बपई...

आपन दुअरिया छोड़इउ मोरी माई...

यह गाँव! यह देश! यह ढकुलाही, ये भीटे! कठ-जामुनों का जंगल! कल तक जिसे अपना समझती रही थी, आज हमेशा-हमेशा के लिए पराया कर दिया आपने बाप्प! अब कौन सबेरे आपको 'चाह' बना कर देगा?

मेरा दुआर! मेरा मोहार! मेरा चूल्हा! मेरी चक्की! सबसे नाता टूट रहा है। कौन उसकी बकरी को चारा देगा? रोज सबेरे उठते ही मैं तेरी 'दुआरी' लीपती थी माई! उसे काहे छुड़ा दे रही है बिना कसूर?

सारे सपने, सारा पुरुषार्थ! छोड़ देने के लिए?

तिरिया जनम काहे देहु रे विधाता?

डोली पर पड़े 'ओहार' की फांक से झाँककर देखती है विमली। यह छूटी बिसुई! यह बुढ़वा पीपल! काली जी का मंदिर! खान साहब का भट्ठा! दोनों चिमनियाँ रोज की तरह धुँआ उगल रही हैं।

डोली देख कर राँची वाली औरतों का दल पल भर को रुक जाता है-विमली की डोली!

ट्रक खड़ा है। खलासी पांडे उघारे बदन घुटने तक लंबा अंडरवियर पहने हाथ में बाल्टी लिए ट्रक धोने को तैयार खड़े डोली को देख रहे हैं। डरेवर बाबू उठे हुए बोनट के आगे खड़े देख रहे हैं।

अरे या मोरे चाचा!

आपन छंहिया छोड़ाया मोरे चाचा।

खान चाचा अपने आफिस से बाहर निकल आए हैं। आँखें भर आई हैं। जैसे उनकी अपनी लड़की विदा हो रही हो। जहाँ भी रहे, सुखी रहे।

विमली उतर कर भट्ठे की मिट्टी को माथे से लगाना चाहती है।

लड़के और लड़की का 'फरक' आज ही मालूम पड़ा है विमली के बाप को। डोली की दिशा में ताकते हुए उसकी आँखों से झर-झर आँसू झर रहे हैं।

आज अचानक आया बुढ़ापा, बिना बताए।

दूर तक जाकर, विमली के रोने की आवाज के साथ ही डोली भी अदृश्य हो जाती है।

जब से पतोहू का गौना लाया है, बिसराम का भाव बढ़ गया है।

चाल, ढाल, पहनावा-ओढ़ावा, दाढ़ी-मोछ, सब टिच्च! दो कुट्ठा जमीन रेहन रखकर बादशाही खर्चा शुरू किया है। दिन भर झोपड़ी के सामने गांजे की महफिल लगा रहा है। एतना ठाट! काहे भाई? देखने वालों को अजगुत-अजगुत लग रहा है। कहीं कोई भेद? अभी तक तो यही चर्चा थी कि लड़के को गौने में क्यों नहीं बुला कर लाया बिसराम। लाख बाप से झगड़ा कर गया था लेकिन यह तो उसी का गौना था... फिर पतोहू के आने के तीसरे दिन ही बहिन को क्यों बिदा कर दिया? क्या इस डर से कि पतोहू को बिगाड़ देगी। 'बोलका' बना देगी।

इस टोले की औरतों की सूँघने की ताकत अभी इतनी कमजोर नहीं हुई है। लत्ता आग पर पड़ता है पीछे और चिरायंध औरतों की नाक में पहले पहुँच जाती है।

यहाँ तो सीधे आग लगी हुई है।

सुबह-शाम 'मैदान' आने-जाने के दौरान ही निर्विघ्न चर्चा का मौका मिलता है। इस बीच मनतोरिया की माई ने लाख कोशिश की, घुमा फिरा कर कोई 'सुराग निकालने की, लेकिन पतोहू कुछ बोलती ही न थी। एकदम गूंगी। बोलती थीं उसकी आँखें। लाल सूजी आँखें। टुकुर-टुकुर ताकती हुई। उतरा मुँह! थका चेहरा! कसाई की गाय!

तब मनतोरिया की माई ने तह तक जाकर भेद खोलने का निश्चय किया। बिसराम के इधर-उधर होने पर वह घुसी झोपड़ी में। दारू की गंध में डूबी झोपड़ी। खटिया के आस-पास बिखरे जली बीड़ी के टोंटे।

पतोहू तो बीड़ी पीती नहीं!

अचानक चीख निकल गई मनतोरिया की माई की। पैर पकड़ कर बैठ गई। तल्-तल् बहता खून! बिसरमवा दाढ़ीजार ने टूटी बोतल का कांच बटोर कर रख दिया था कोने में। दो अंगुल का घाव हो गया उसके पैर में। चोरी से न घुसी होती तो लाख-लाख गालियाँ सुनाती।

''नई-नई लालटेन खरीद कर लाया है भाई। जब चाहे धीमी करो, जब चाहे तेज! ढिबरी की बत्ती तो हुचक-हुचक कर जलती है।''

''पूरा विषधर है बिसरमवा!'' मनतोरिया की माई ने टोले की औरतों में ऐलान कर दिया है-'घमासान' मचाए हुए है।

लेकिन मरदों का मामला तो मरद लोग ही खुले आम निपटा सकते हैं। औरतें क्या करेंगी?

और उसी रात सारा भेद औरतों के बीच से मरदों के कानों तक पहुँच जाता है।

मरदों के लिए यह खबर इतनी खास नहीं। औरतों का तो काम है इधर से उधर लबर-लबर करना। और यदि बात में कुछ सच्चाई भी है तो इतनी 'अनहोनी' जैसा क्या है इसमें? गुनी आदमी है बिसराम। जानवरों की चोट, मोच, हारी-बेमारी में उसकी जरूरत पड़ती है हर घर को। फिर छोटे बड़े की इज्जत करने वाला। एकदम से तो उसके ऊपर ऊंगली उठाना ठीक नहीं... लेकिन बिल्कुल चुप रहना भी संभव नहीं है। रात में हर 'घरवाली' जानना चाहेगी-क्या कर रहे हैं टोले के 'मरद लोग?'

गाँजा-दारू का 'चानस' हाथ से बिल्कुल ही न निकल जाए इसका ध्यान रखते हुए शाम की बैठक में 'मरद' लोग बिसराम को तंग कर रहे हैं-

''बिसराम भाई आपकी खटिया रात में नहीं दीखती बाहर। एकाध बार मैं इधर से

गुजरा तो देखा दरवाजा सूना था।''

''काहे! तोहे पता नहीं आजकल बिगवा (भेड़िया) का कितना जोर है। आए दिन सुनाई पड़ता है किसी की बकरी ले गया! किसी का बच्चा! रमवापुर में महतारी के कोरा से तीन साल का लड़का छीनकर ले गया। राजा पट्टी में एक औरत से लड़की छीन रहा था... ऐसे में बाहर सोने लायक है? ...तुम बाहरै सो रहे हो? आया किसी दिन तो...''

अब क्या बोला जाए। बात करने में बिसराम को 'दाब' पाना आसान नहीं। और बिगवा का आंतक तो सचमुच चारों तरफ फैला हुआ है। औरतों ने अंधेरा होने के बाद छोटे बच्चों को लेकर बाहर निकलना बंद कर दिया है। दिशा मैदान जाना है तो झुंड बना कर जाओ। हाथ में हंसिया या कुल्हाड़ी लेकर। सुनते हैं औरतों या बच्चों पर ही ज्यादा जोर मारता है।

अब बच्चों को हाथ से छीन रहा है तो रात-बिरात सोते में हमला कर दे तो क्या अचरज? आदमी का खून अगर एक बार मुँह लग गया तो... सुनते हैं, आदमी का मांस नमकीन होता है... आदत लगी तो छूट नहीं सकती।

लेकिन 'बात' के जोर पर कोई 'पाप' पचा ले जाएगा?

''झोंपड़ी में तो पतोहू सोती है बिसराम भाई। उसमें तुम्हारा सोना।''

''झोपड़ी में तो मैं बीस साल से सोता आ रहा हूँ।''

''लेकिन अब बात दूसरी है। पतोहू के पास रात में, अकेले में... हम लोगों के कहने का मतलब...लड़के को भी नहीं बुला सके गौने में...तुम्हें अपने लिए झोपड़ी खड़ी करनी चाहिए। हम लोग भी आते हैं तो यहाँ पेड़ के नीचे बैठना पड़ता है...''

बिसराम गाँजे की चिलम एक 'खींच' में जलाता है-'लप्प'! नंगा करने पर आमादा हैं सारे के सारे लोग उसे।

''और लड़के को भी चिट्ठी लिख कर बुला लो। नहीं तो गाँव में तरह-तरह की बातें...''

''क्या तरह-तरह की बातें?'' बिसराम को गाँजा चढ़ चुका है। उसी का गाँजा पीकर उसी की जड़ खोदेगा कोई? वह दहाड़ना चाहता है-लड़का आए साला, चाहे उमर भर न जाए। पतोहू को 'खोराकी' से मतलब और ऐसी-ऐसी चार पतोहुओं की खोराकी तो बिसराम अभी अकेले 'पूर' सकता है।

लेकिन गाँजा उसका गियान नहीं हर सकता। वह चौधरी है। बात सँभालना जानता है, ''हम खुद इसकी फिकर में हैं भाई। बहुत जल्दी जा रहे हैं लड़के को लाने और दूसरी झोपड़ी की बात तो मैं खुद अगहन से सोच रहा हूँ, अब गन्ने की नई 'पात्ती' हो गई है तो दस पाँच दिन में... दस आदमी के बीच में 'नक्कू' बनाने वाला काम खुद मुझे नहीं सोहाता। लेकिन मुँह से ऐसी वैसी बात निकालने से पहले लोगों को सोचना चाहिए कि...''

''लोगों का मुँह कोई बंद नहीं कर सकता बिसराम भाई। पूरे ओले में चर्चा है कि बिसराम अंधेर मचा रहा है। बेटवा आएगा तो हाथ पैर तोड़ेगा।''

फिर लगने वाली बात। कलेजे में लपक उठती है बिसराम के। बेटवा के लिए पतोहुओं की कमी है उसे! अभी तीन मंडा खेत बाकी हैं। रेहन रख दे तो तीन हजार मिलेंगे। तीन पतोहुएँ! लेकिन...

''दूसरे के फटे में दुनिया पैर डालने को दौड़ती है भाई! कोई सीना चीर कर तो दिखा नहीं सकता! लेकिन कहा गया है ...बात करै जानि कै। पानी पियै छानि कै। हर मर्द की 'मौछ' होती है। इज्जत होती है।''

बात में वजन डालना जानता है बिसराम। और जहाँ 'मर्द' की मोछ का, 'इज्जत' का सवाल हो, जब तक कोई रंगे हाथ न पकड़ ले या जब तक 'जनाना' खुद मुँह न खोले, सुबह शाम की 'चिलम' दाँव पर रख कर कोई कितना नंगा करे किसी को।

मोछे अभी तक काली हैं बिसराम की। वह 'मोंछ' ऐंठता है।

लेकिन मोछ ऐंठने से क्या होगा? बिसराम का दर्द तो बिसराम ही जानता है।

शुरू-शुरू में तो नई पतोहू जैसा शरम लिहाज था। रीं-रीं करके रोना-हम बिटिया बराबर अही। आप बाप बराबर। रो-रो कर पैर छान लेती थी दोनों हाथों से। लगता था अब ढीली पड़ी कि तब। लेकिन बाद में तो बिल्ली जैसी खूंखार। वैसी ही गुर्राहट! पंजे मारना। हाथ झटकना। बिल्ली जैसे नाखून! सारा मुँह, नाक, कान नोंच लिया है। पूरा चेहरा 'परपरा' रहा है। जलन! ईंट-पत्थर ढोते-ढोते सारा शरीर लोहे का हो गया है ससुरी का। तीन दिन में तीन करम कर दिया। दोनों पैर सिकोड़ कर ऐसा सधा वार किया छाती पर कि बिसराम उतनी दूर जा गिरा खटिया से। तब से छाती और सिर में भयानक दर्द! अपने शरीर पर बड़ा गुमान था बिसराम को। क्या सचमुच 'जांगर' घट गया है?

जानवरों का बिना डिगरी का डाक्टर है बिसराम। बड़े-बड़े बैल-सांड रीढ़ की

हड्डी दबाकर बैठा देता है। काबू में करता है। आज तक कोई जानवर बेकाबू नहीं हुआ... और यह 'उदंत' बछिया! पुट्ठे पर हाथ नहीं रखने दे रही है... यह अंदर का दर्द किससे कहने जाए बिसराम? 'मोछ ऐंठने से क्या होगा? झूठी बदनामी हो रही है, सो अलग। लात खाकर उसके मन में भय समा गया है। आज की रात वह दूर से ही भौंकेगा।

''बड़ी सती सावित्री बनती है? सारा गाँव नहीं गंधवा दिया था तूने?''

''सारा नखड़ा घर में ही दिखाएगी तू?''

बोलना बंद कर दिया है विमली ने। रोना भी। जैसे गूंगी हो गई है।

''डरेबरवा के साथ गुलछर्रे नहीं उड़ती थी तू?''

''झरिया धनबाद की सैर करने मैं गया था?''

''और बनारस की ठंडई! हुंह, ठंडई! बड़ी पिलाई है साले ने। एक दम ठंडा कर दिया है।''

''एतना कपड़ा-लता, साड़ी-बिलाउज, गहना-गुरिया? सब बाप की कमाही है? लूले साले की? वह करेगा बेटी की दुकानदारी और तू यहाँ आकर...''

''अच्छा बता, कुइसा मिस्त्री से दो हजार रुपए में तेरी बिदाई का सौदा नहीं तया किया था तेरे बाप ने? उठा गंगा, मैं अंधा हूँ कि बहरा?''

''मेला देखेगी? जलेबी खाएगी? गंगा असनान करेगी?''

''डरेबरवा की दारू महकती है और मेरी गंधाती है? नाक बंद करती है? क्या-क्या बंद करेगी?''

''गुलछर्रा उड़ाएगा दूसरा और खेत रेहन रखा जाएगा बिसराम का?''

''मुझसे बोलने में भी पाप लग रहा है रे? तिरिया चरित्तर फैलाने से जान बचेगी? साली! कातिक की कुतिया!''

जैसे-जैसे छाती का दर्द बढ़ रहा है बिसराम का क्रोध भी बढ़ रहा है। मुंह में फिचकुर आ गया है। सारा शरीर काँप रहा है। पैर सकोड़ कर घुटने को अंकवार में बाँध कर, उसी में सिर गड़ाए बैठी है विमली। जैसे कोई साही दुश्मन के आक्रमण की आशंका में बैठी हो कांटा फुला कर! दूर से ही भूंक रहा है बिसराम। पास जाते ही एक कांटा तीर की तरह छूटेगा-सन्न!

जान सांसत में पड़ी है विमली की। किसी तरह पत-पानी के साथ मायके पहुँच पाती अगर...या उसका आदमी आ पहुँचता अचानक। नहीं तो हर रात जंगल की रात! एक रात-एक जुग। किसी से कहे भी तो क्या? क्या करेगा कोई सुन कर हँसने के सिवा? भरी पंयाचत में खड़ा होना पड़ेगा अलग। और ऐसे-ऐसे नंगा कर देने वाले सवाल पंचायत के चौधरी लोग, रस ले लेकर पूछते हैं कि ...उसे खूब पता है। नैहर तक बदनामी अलग से।

हाँ, मनतोरिया की माई से अपने आदमी का 'पता' मालूम करवाया है उसने। चिट्टी भी लिखवा दी है। चौथे दिन चिट्टी पहुँचेगी कलकत्ता। मायके भी खबर भिजवाई है-बप्पा को मालूम हो कि खबर पाते ही आकर लिवा चलें, देर हुई तो बिटिया की लहास की देखेंगे।

बप्पा और 'आदमी' की राह देखती विमली।

कुइसा मिस्त्री अपने गाँव चले गए-जिला बलिया!

हिसाब-किताब करने में आना-कानी की खान साहब ने, तो बिना हिसाब किए चल पड़े। बोलते थे अब गया-जगन्नाथ जी दर्शन करने जाएँगे इस साल। अगले सीजन में आएँगे कि नहीं? कह नहीं सकते। आदमी की जिनगी का कौन ठिकाना। दाढ़ी-मोछ के बाल पकड़ने लगे। गठिया बतास जोर पकड़ने लगा। माया का फंदा धीरे-धीरे काटना होगा...

''माया केरी पूतरी, तन तरकस मन बान!

तिरिया धावे रथ चढ़ी, पुरुखहिं करे निशान!

बिसराम के सुझाव में इधर काफी फरक आ गया है। उधर दो-तीन दिन बाहर पेड़ के नीचे खटिया बिछाकर सोया। फिर बाँस पाती आदि का जुगाड़ करके अलग मंड़ई खड़ी कर ली, छोटी-सी। अब उसी में सोता है। दिन का ज्यादा समय शिवाले पर गुजारता है। गंजेड़ियों की भीड़ जो बीच में उसके दरवाजे पर जमने लगी थी, अब फिर पहले की तरह शिवाले पर जमने लगी है।

पहले दिन बिसराम ने बाहर खटिया बिछायी तो अचरज के मारे विमली को सारी रात नींद नहीं आई। किवाड़ के अंदर से बिलारी बंद करके मूसल की टेक लगा दिया था। फिर भी दिल धड़क रहा था। बुढ़वा की मति का क्या ठिकाना? कोई नई चाल! जरा सी आहट पाते ही चौंक कर उठ बैठती।

बड़े सवेरे उठते ही खरहरा लेकर दुआर-मोहार बुहारता है। पहले दिन झाड़ू लगा कर जाने कहाँ से एक गिलास दूध लाया था और उसके हाथों में थमाते हुए बोला था, ''जरा एक गिलास 'चाह' बनाना बहू! सुनते हैं तेरे हाथ की चाह पिए बिना समधी लोटा नहीं उठाता था।''

कितनी मिठास थी आवाज! में। कितनी दुलार!

चाय का गिलास पकड़ाते हुए हाथ काँप रहे थे विमली के। आँखों में पानी। गिलास पकड़ते हुए बिसराम की आँखें नीची थीं-इतना बदलाव! कई दिन बाद एक दिन शाम का खाना खाते हुए खुद कहने लगा, ''मैं बहुत शर्मिंदा हूँ बहू! अगर तूने माफ नहीं किया तो नर्क में भी जगह नहीं मिलेगी मुझे। किशुनवा ओझा ने गाँजे में कोई बूटी मिलाकर पिला दिया था। मति भरिष्ठ कर देने वाली बूटी। उसी से हफ्ते भर सिर पर पाप सवार था और हफ्ते भर में मेरी मरजादा का नाश हो गया बिटिया! शिवाले के पुजारी बाबा ने विचार कर नाम खोला। कई दिन से मैं उनकी 'सरन' में बैठ रहा हूँ। किशुनवा को मैंने तीन साल में कितना गाँजा पिलाया होगा। और उसकी बदी इसी तरह दिया बेईमान ने। मुँह में कालिख लगाने का इंतजाम कर दिया था घटियारे ने। तेरी जैसी लक्ष्मी बहू न होती तो कहाँ मुँह दिखाते हम लोग। कल को मेरा बेटा लौटता तो किस घाट लगता? लक्ष्मी है बहू, तू लक्ष्मी है, जो अपना पानी और मेरी पगड़ी, दोनों बचा ले गई। मैं पापी...

आँखें भर-भरा गई थीं बिसराम की गला रुंध गया था। विमली को भी लगा कि वह 'भोंकार' छोड़कर रो पड़ेगी। किस जनम का बदला लेना चाहता था वह ओझा? विमली बड़ी देर तक बिसूरती रही थी। उसे लग रहा था जैसे जुगों की तपन के बाद धीरे-धीरे कलेजे में ठंडक पैठ रही है।

रात लेटे-लेटे देर तक सोचती रही वह। खान साहब कहते थे-सच्चाई को कोई छिपा नहीं सकता। सच्चाई को कोई दबा नहीं सकता। सच्चाई को कोई हरा नहीं सकता। सच्चाई आखिर सच्चाई होती है।

पास पड़ोस के लोगों को भी देखकर अचरज होता है कि सचमुच पानीदार आदमी है बिसराम। जरा-सा मजाक-मजाक में टोका-टाकी हुई और उसे बात लग गई। मरजादा वाला आदमी। चार दिन में अलग मंड़ई खड़ी कर दी। ऐसे ही तो जात-बिरादरी किसी को चौधरी नहीं मान लेती। किसी के खिलाफ मुँह खोलने के पहले हजार बार सोचना चाहिए और औरतों के कहने में आकर लोग उसे बेज्जत करने पर

आमादा था। ठीक ही कहते हैं–नाक न हो तो औरतें मैला खा लें।

दुआर–मोहार बहारने के बाद बिसराम ने बाहर से ही ऊँची आवाज में बताया, ''दोपहर में खाने नहीं आएगा वह आज। शिवाले पर सत्यनारायण की कथा कहवा रहा है। तब तक 'बरत' रहेगा। बहू अपना खाना–पीना कर ले। वह एक ही 'टेम' शाम को खाएगा। गंगा जल का छिड़काव करके झोपड़ी 'पवित्तर' करने और 'चरनामरित' ग्रहण करने के बाद।''

तब तो विमली भी रहेगी बरत! इतने बड़े संकट से उबार लिया सत्यनारायण सामी ने। उसके ससुर का दिमाग सही कर दिया। पहले पता होता तो वह चाह भी न पीती...सत्यनारायण जी की कथा घर में होनी चाहिए थी। पहले याद पड़ा होता तो जरूर कहती। अब तो जा चुका ससुर! उसका मन, शरीर स्थिर हो रहा है–ठंडा!

दोपहर तक मेहनत करके विमली ने पूरी झोपड़ी को लीपा है अंदर–बाहर। हफ्तों बाद चैन आया है उसके मन में। लग रहा है वह मालकिन है इस झोपड़ी की। अपने ससुराल की। उसका आदमी 'कमाने गया है' परदेस। बूढ़े ससुर के रोटी पानी का इंतजाम तो उसी के जिम्मे हैं। शाम होते ही वह खाना बनाने में लग जाती है।

कल ही उसका बाप आनने आएगा। मनतोरिया की माई ने बताया है। खबर न भेजती तो क्या करती? लेकिन अब तो न आए बाप तो भी कोई बात नहीं। चार दिन बना खिला दे ससुर को। उसके जाने के बाद तो फिर अपने ही हाथ से 'पाथना' होगा मोटी–महीन!

...जल्दी ही लौटेगी मायके से। अब तो यही उसका घर दुआर है। उसका आदमी भी किसी समय आ सकता है। चिट्ठी पहुँच गई होगी।

एक घंटा रात बीतते आता है बिसराम। एक हाथ में 'चरनामरित' की हांडी और दूसरे में पंजीरी का दोना।

ऐ! झोपड़ी लिपी पुती शुद्ध!

''मैं तो लक्ष्मी ही कह कर पुकारूंगा अब तुझे बहू। मना मत करना। ए ले गंगा जल की बोतल! हाथ–पाँव धोकर पूरी झोपड़ी में छिड़क दे। फिर परसाद 'ग्रहन' कर ले। हाँ! मैं तो वहीं ग्रहन कर चुका। भूख के मारे हालत खराब थी। यह परसाद तो तेरे लिए ही है।''

''ज्यादा है? एक लोटा चरनामरित ज्यादा है, सबेरे से ही बासी मुंह पड़ी है तू! और यह जरा सी पंजीरी!''

''अच्छा ज्यादा है तो थोड़ा सा ढक कर रख दे अपने बप्पा के लिए। हाँ, मैं तो बताना ही भूल गया कल ही तेरे बप्पा आ रहे हैं। लेकिन 'चरनामरित' तो पूरा पी ले। कल तक तो उसका दूध फट जाएगा।

''नहीं खाने की अब जगह ही नहीं रह गई बिल्कुल। मैं एक जरा एक चिलम... सबेरे से हाथ नहीं लगाया है चिलम को।''

बिसराम के बाहर जाने के बाद विमली परसाद को झोपछ़ी के बीचों बीच जमीन पर रखती है। जमीन से छुआ कर माथा टेकती है–हे प्रभु!

पंजीरी कितनी मीठी लग रही है। भगवान् का बास जो हो जाता है। और 'चरनामरित' तो सचमुच ही अमरित। एक गिलास अमरित!

'धक्का' जैसा लगता है विमली को। कहते हैं खाली पेट में अन्न पहुँचता है तो...अन्न में भी नशा होता हे... लेकिन इतनी सुस्ती। हाथ–पाँव ढीले पड़ते जा रहे हैं। वह खटिया पर लुढ़क जाती है–बस दो पल लेट ले।

गाँजे की चिलम चटकाकर झोपड़ी में घुसता है बिसराम। लाटलटेन की रोशनी में देखता है। कुतवा 'चरनामरित' की हाडी चाट कर वहीं जमीन पर फैल गया है। बिसराम धीरे से लात मारता है। कुतवा आँख खोल कर बेगाने ढंग से ताकता है। लड़खड़ाता हुआ बाहर तक जाता है और फिर लुढ़क जाता है।

'चरनामरित' और कुत्ता पीए? बंदे–बंदे की बात!

खटिया पर चित्त पड़ी है विमली, बेसुध!

बिसराम धीरे–धीरे हिला डुला कर देखता है। कोई हरकत नहीं। असर कर गई। गुरु ने बताया था–जो जानवर किसी तरह काबू में न आए उसके लिए–अफीम!

अफीम का चरनामरित या दूध का? पहचान सकते हैं आप–देखकर? सूंघकर? चखकर?

बिसराम के हाथ पैर में सनसनाहट लोने लगी है। वह झोले से तली हुई मछलियों की पोटली और बोतल निकलता है। दिल इतनी तेजी से क्यों 'धड़–धड़ा' रहा है? जैसे डाक गाड़ी का इंजन!

बत्ती तेज करके लालटेन सिरहाने टांग लेता है बिसराम!

अचानक विमली को लगता है उसके सीने पर वजनी पत्थर रख उठा है। लेकिन लाख कोशिश के बावजूद पलकें उठती नहीं। जैसे मनों बोझ लद गया हों।

ऐ! क्या हो रहा है? झोपड़ी हिल रही है या खटिया? मुँह नोच लेगी वह। आँख फोड़ देगी। लेकिन हाथ-पैर में जुंबिस क्यों नहीं होती?

बिसराम के शरीर में बाघ की ताकत आ गई है। डाक गाड़ी का इंजन-झक्! झक्! झक्!

बप्पा रे ए-ए! वह चीखना चाहती है लेकिन सिर्फ गों-गों करके रह जाती है। कोई वश नहीं। जैसे अतल समुंदर में डूबी जा रही हो।

एक युग बीत गया हो जैसे। विमली को ठंडक लगती है। आँखें खुल जाती हैं। शरीर अभी पूरी तरह वश में नहीं है। रजाई नीचे गिरी है। सिरहाने लालटने जलती जा रही है। कपड़े अस्त-व्यस्त! पूरा शरीर टूट रहा है।

खटिया से नीचे उतरती है वह। पैर सीधे नहीं पड़ रहे हैं। वह कपड़े ठीक करती है।

खाली बोतल नीचे लुढ़की पड़ी है। मछली के काँटे! बीड़ी के टोंटे! पूरा बंडल खतम किया है शायद! दीवार पर थूकी पान की चार-पाँच पीकें!

कुत्ते की चाटी 'चरनामृत' की हांडी औंधी पड़ी है, लालटेन रह रह कर भभक रही है।

चेतना आते ही उसे रुलाई छूटने लगी है-धोखा! छल! कहाँ-कहाँ से किन-किन खतरों से बचाती आई थी वह पराई अमानत! कितने बीहड़? कितने जंगल? कितने जानवर! कितने शिकारी! और मुकाम तक सुरक्षित पहुँच कर भी लुट गई वह! मेंड़ ही खेत खा गई छल से! ऐसी बेहोश कर देने वाली नींद आई कैसे? उसकी खुद समझ में नहीं आ रहा है।

अपनी आन-बान से जीने वाली 'मादा' यहाँ 'मिट्टी' कर दी गई जबरन! लाड़-प्यार से नाकाम? छुई-मुई, पढ़वैया लड़की है वह? कि चुपचाप जला दी जाएगी? मार दी जाएगी? उसके खून में मेहनत की आँच है। उसे कोई 'दासी' बनाकर रख पाएगा?

सहसा रुलाई गायब हो जाती है। बुझी-बुझी आंखों में चमक उभरती है। क्रमशः दीप्त होती चमक! बिल्ली की आँखों की चमक देखी है कभी अंधेरे में? नीली चमक! जलती आँखें!

झोपड़ी के एक कोने में खूंटी पर मिट्टी के तेल की बोतल लटक रही है। बोतल उतार कर वह ताखे से मासिच उठाती है और बिसराम की मंड़ई की तरफ लपकती है। उसकी आँखों में मंड़ई के अंदर खटिया पर बेसुध पड़ा बिसराम का काला अधनंगा शरीर नाच रहा है। युगों की भूख मिटा कर बेखबर सोया पड़ा तृप्त-संतृप्त दैत्य! खुले मुँह से बहती पीक की धार! गंदा तन-गंदा मन!

सारी गंदगी, बदबू, छल और धोखा जला कर राख कर देगी वह। और कोई राह नहीं।

अंधेरी मंड़ई! बाघ पर गिरते तेल की आवाज ने बताया-खटिया सूनी है। छूकर देखती है। कोई नहीं। कथरी सिरहाने रखी हुई है। कहाँ गया? निराश हाथों से बोतल और माचिस छूट जाते हैं। अब?

पौ फटनी लगी है। रुलाई बार-बार उमड़ कर गले में फँस रही है। तो क्या इसी नर्क में आगे भी? न अब एक पल भी नहीं रुक सकती वह यहाँ। अपने आदमी का पता उसके पास है और गौने में साथ लाए टिन के बक्से में उसकी गिरस्थी। झोपड़े में लौटकर वह जल्दी-जल्दी सब कुछ समेटती है और बाहर निकल पड़ती है। कैसा होगा कलकत्ता शहर? उस शहर में उसका आदमी? उसने तो कभी यहाँ का रेलवे-टेशन तक नहीं देखा। गाड़ी की सीटी और गड़-गड़ाहट से केवल दिशा का अंदाजा लगाती थी।

शिव हो! शिव हो!

इस बार आवाज ज्यादा साफ है।

पुजारी जी उठ कर झरोखे से झांकते हैं। सामने शिवाले की सीढ़ियों पर कोई छाया लेटी है। 'पट' खोलने के पहले वे आश्वस्त हो जाना चाहते हैं। इस गाँव के लोगों का विश्वास नहीं। मौका पाने पर दिन में ही लाठी लोटा तक पचा जाने को तैयार! रात की तो बात ही दूसरी है।

"कौन?"

जय शंकर! जय शंकर!

जानी पहचानी आवाज! पट खोल देते हैं। टार्च की रोशनी में देखते हैं-साष्टांग लेटा भक्त-बिसराम! बिसराम उठ कर पुजारी जी के चरण छूता है।

गद्-गद् है पुजारी जी! लंका में विभीषण! इस आदमी में भक्ति भाव कितनी

जल्दी कितने गहरे पैठ रहा है। सांझ को भी बार-बार भेजने पर 'परसाद' लेकर घर जाते-जाते नौ बजा दिए थे। फिर लगता है आधी रात से ही 'चरनों' में हाजिर हो गया। बड़ी देर से उनके उनहींद कानों में आवाज पड़ रही थी।

पुजारी जी बिसराम को उठाकर गले से लगा लेते हैं। फिर आकाश की तरफ देखकर रात का अंदाजा लगाने की कोशिश करते हैं। पौ फटने में अभी कुछ कसर है।

वे बाती जलाकर उजाला करते हैं।

बिसराम पुजारी जी की आसनी के पैताने बैठ कर अपने मन की दशा बताता है। शंकर भगवान के चरणों को छोड़कर और कहीं मन नहीं लग रहा है बाबा! बड़ी बेचैनी है। बहू को परसाद देकर सोने की कोशिश किया। लेकिन बड़ी देर तक नींद नहीं आई। जरा सी झपकी लगी थी तो बड़ा खराब सपना! देखा कि मेरी झोपड़ी के बीचों-बीच जमीन पर लक्ष्मी जी बिराज रही हैं। सोने के गहनों से लदी काया! कि अचानक कहीं से एक काली डरावनी सी राक्षसी काया! उन्हें घेर लेती है। लक्ष्मी जी 'अलोप' हो जाती हैं। बचता है खाली अंधकार! हड़बड़ाकर आँख खुली तो लगा कोई काली सी छाया मेरी झोपड़ी से निकल कर अंधेरे में समा गई है। तब से चित 'थिर' नहीं हो रहा है। लक्ष्मी का इस तरह घर छोड़कर जाना। क्या मतलब है इस सपने का?

पुजारी जी मंद-मंद मुस्कारते हैं, ''लगता है सांझ के गाँजे का नशा भक्त बिसराम के 'बह्मांड' तक चढ़ गया है। तभी ऐसी बेचैनी होती है। घबड़ाने की बात नहीं। धूनी-आरती के बाद 'जोग-मुद्रा' में बैठूँगा तो 'विचार' लगाऊँगा।''

आरती के घड़ी-घंटा, डमरू और शंख की सम्मिलित ध्वनि शिवाले पर गूँजी तो गाँव की सीमा छोड़ती विमली ने बक्सा नीचे रखकर दो हाथ जोड़कर सिर झुकाया- आगे तुम्हीं साथी-सहारे हो प्रभु!

आरती के बाद उपस्थित भक्तों के सामने आज पहली बार भक्ति भाव में तन्मय होकर कवित्त भजन सुनाया बिसराम ने-

बकरी पाती खाती है, ताकी खेंची खाल।
जे नर बकरी खात है, ताकी कौन हवाल।।

पुजारी ने भविष्यवाणी की कि साधना जारी रही तो भक्त बिसराम अच्छा 'भजनकी' बनेगा।

शिवाले पर बैठे-बैठे काफी समय तक किसी 'अनहोनी' का इंतजार करता रहा

बिसराम! अफीम का नशा टूटते ही कोहराम मचा सकती है। लेकिन एक घंटा दिन चढ़ने के बाद भी कहीं कुछ सुनाई नहीं पड़ता तो उसे अपना भय बेमानी लगने लगता है। घर लौटने में कोई हर्ज नहीं।

लेकिन झोपड़ी के पास पहुँचते-पहुँचते कदम अपने आप धीमे पड़ने लगते हैं। जाने पतोहू का कौन-सा रूप देखने को मिले? दिल धड़क रहा है... लेकिन क्यों? वह तो करीब-करीब सारी रात शिवाले पर बिता कर लौट रहा हैं शाम को आया तो परसाद देकर फिर लौट गया बिना खाए-पिए। अगर कोई ऐसी वैसी बात हुई है तो इसका मतलब पतोहू की मरजी से ही कोई घुसा होगा झोपड़ी में! जब तक यह अुंदर से दरवाजा नहीं खोलती कोई कैसे घुस सकता है। मायके से ही इस मायने में बदनाम रही है।

झोपड़ी का दरवाजा तो चौपट खुला है। सन्नाटा! चूड़ी तक की आवाज नहीं। वह अंदर झाँकता है। कोई नहीं! ऐ! बक्सा गायब है बहू का। कहाँ गई? वह बाहर निकलकर अलग-बगल और पिछवाड़े का एक चक्कर लगाता है? भाग गई? कहाँ गई होगी?

उसका आत्म विश्वास पूरा-पूरा लौट आया है। जोर से साँस खींच कर फेफड़ों से हवा भरता है। पतोहू का भागना तो गुस्सा करने की बात है। रात झोपड़ी में कुछ खटर-पटर सुनी थी उसने। किसी को निकलते भी देखा था। पर इतनी दूर तक नहीं सोच पाया...ओ! खाली हाथ नहीं, उसकी मेहयारू का गहना-गीठी भी खोदकर ले गई है। डेढ़ किलो चाँदी के गहने, दस चाँदी के रुपए-महारानी विक्टोरिया के जमाने के। एक सोने की मुहर! सब कुछ हांड़ी में रखकर जमीन में गाड़ा गया था। ...वह दौड़कर अपनी मंड़ई से कुदाल लाता है और झोपड़ी का एक कोना तेजी से खोदने लगता है। यहीं से ले गई खोद कर।

फिर कुदाल छोड़कर वह हाथ-पैर कीर धूल झाड़ता है और बाहर आकर 'हल्ला' करने लगता है ''दौड़ो रे भइया! अरे जगेसर भाई! ललई काका! ई तौ हरजइया निरधक करके भाग गई हो। हे भगवान! कहाँ दौड़ीं? केका गोहराई?''

का भवा? का भवा? एक-एक करके इकट्ठा होने लगे हैं टोले के औरत--मर्द-बच्चे! थोड़ी देर में पूरे गाँव में हल्ला हो जाता है।

''बिसराम की पतोहू भाग गई, किसी के साथ!''

''हाँ, बिसराम ने रात किसी को झोपड़ी से निकलते देखा था। सोचा बहू दिशा

मैदान के लिए निकली होगी।''

बिसराम लोगों को वह जगह दिखा रहा है जहाँ से गहना खोद कर ले गई है पतोहू! कुदाल अभी तक वहीं पड़ी है। गहने के अलावा दस चाँदी के रुपए और एक सोने की मुहर! तब तक लोगों की नजर दूसरे कोने पर जाती है। लालटेन अभी भी धीमी लौ में चल रही है... एक औरत के पैर में मछली का काँटा गड़ गया। खटिया के नीचे दारू की खाली बोतल। जली बीड़ी के अंजुरी भर टोंटे। पान की पीक से रंगी हुई दीवार। अब किसी को और कुछ बताने की जरूरत है? खुला खेल हुआ है रात भर! बिसराम ससुर शिवाला रखा रहे हैं और कथा सुन रहे हैं, यहाँ असली कथा हुई है रात-भर। इसकी खबर नहीं।

पूरा गाँव झोपड़ी के अंदर का दृश्य देख लेना चाहता है। एक निकलता है तो दस घुसना चाहते हैं।

दुआर पर रखे पुआल की गंजहर से टेक लेकर, दोनों हाथों से सिर थामे बैठा है बिसराम। सैकड़ों सवाल! जो भी आता है, नए सवालों के जवाब चाहता है।

टुकड़े-टुकड़े में किस्से के सिरे निकलते हैं दुखिया बिसराम के मुँह से। एक किस्सा हो तो बताए कोई! नैहर में तो इसके पीछे रोज एक किस्सा तैयार होता था। इतने किस्से पीछे छोड़कर आई थी कि बताने लगे तो पूरी रामायण बन जाएगी। जब तक तो इज्जत का ख्याल करके चुप रहता था बिसराम। अब क्या रह गया छिपाने को। एक डरेवर था टरक का। उसके साथ कई बार गई थी झरिया धनबाद घूमने। एक और छोकरा था। मेला घुमाने ले जाता था। एक मिस्त्री था, गहने गढ़ा-गढ़ाकर पहनाता था। बिसराम ने सोचा था, आँख ओट पहाड़ ओट। साथ छूट जाएगा तो सारा किस्सा अपने आप खत्म हो जाएगा। सपने में भी नहीं सोचा था कि लोग यहाँ तक धावा बोलेंगे। भगवान जाने कौन-कौन कब से आता था। नैहर से भाग जाती तो कम-से-कम बिसराम की और इस गाँव की नाक तो न कटती!

गाँव की नाक! इस तरफ तो किसी ने ध्यान ही नहीं दिया। गाँव की नाक काट कर भाग जाएगा कोई और गाँव के लोग चुपचाप देखते रह जाएँगे?

किधर गई होगी? नैहर? किसी के साथ भागेगी तो नैहर क्यों जाएगी गाड़ी पकड़ेंगे लोग, या बस। रेलवे-टेशन और बाजार की बसों की तलाश होनी चाहिए। अगर रात वाली गाड़ी से निकल गए होंगे तब तो गए हाथ से। अगर दसबजिया गाड़ी पकड़ने की ताक में होंगे तो बचके नहीं जा सकते।

बात ही बात में आठ-दस सायकिलें निकल आती हैं। दो गोल बन गई है। एक गोल बसों और टैक्सियों में खोजेगी, बाजार में। दूसरी रेलवे स्टेशन देखेगी। एक-एक सायकिल पर दो-दो, तीन-तीन लोग।

तब तक एक औरत की नजर बिसराम की मंड़ई में खटिया के नीचे लुढ़के मिट्टी के तेल की बोतल और तेल से गीली, माचिस पर पड़ती है। खटिया के बाँध और सिरहाने रखी कथरी पर मिट्टी का तेल गिरा है एक बार फिर पूरी भीड़ मंड़ई को घेरती है।

बिसराम भी उठ कर आ जाता है। इसका मतलब शंकर भगवान ने ही उसके प्राण बचाए! भोर में ही वह शिवाले पर नहीं गया होता 'आरती' करने तो इस समय उसकी जली हुई लहाश ही दुनिया देख रही होती। शिव हो! शिव हो!

ऐसी खतरनाक जनाना तो आज तक इस गाँव में नहीं आई थी भाई!

औरतों में चरित-चर्चा चल रही है, किस-किस औरत ने कब-कब गाँव की नाक काटने वाला काम किया था। किसको संदेह था इस औरत की बदचलनी पर।

गाय भैंसे खूंटे पर रंभा रही हैं। उन्हें खोलकर चराने ले जाने वाला कोई नहीं है। छोटे बच्चों को इस तमाशे में कोई रुचि नहीं, लेकिन उन्हें रोटी पानी देने वाला कोई नहीं है। गाँव में तरकारी भाजी सिर पर लादकर बेचने वाली मुराइनों का सौदा लेने वाला कोई नहीं है। सभी बिसराम के दरवाजे पर। दूरदराज घरों की औरतें बिसराम के टोले की औरतों की 'बकलेली' पर तरस खा रही है। इतनी बड़ी बात सूँघ नहीं सकी कोई। उल्टे बिसराम को भी बदनाम करने वाली उल्टी-सीधी खबर उड़ाती थी। मनतोरिया की माई।

''अरे, मनतोरिया की माई भी तो अपनी भरी जवानी में पूरे गाँव को न्योतती घूमती थी। अपना 'पच्छ' सभी को भाता है।'' डीजल की महतारी हाथ फेंककर अचानक आवाज ऊँची कर देती है।

''टोले वालों के ताने सुनते-सुनते बिसराम के दिल में घाव हो गया था। झूठा अकलंक। बेचारे ने रात-दिन एक करके अपने सोने के लिए अलग मंड़ई तैयार की।'' बाल विधवा बिजरा कहती है।

''वही तो गलती हुई।'' डीजल की महतारी चीख-चीख कर बोलती है-''न झूठा अकलंक मनतोरिया की माई लगाती न बिसराम दूसरी मंड़ई, छवाता, न बहू को खुल कर खाने का मौका मिलता, न आज गाँव की नाक आधे पर से कटती।''

डीजल की महतारी मनतोरिया की माई का नाम 'सानना' नहीं भूलेगी। जहाँ पिछले साल मनतोरिया के छोटे भाई का बियाह हुआ है वहाँ डीजल की शादी दो साल पहले से तय थी। इसी औरत ने डीजल का रिस्ता कटवा कर अपने भाई का रिस्ता जोड़ लिया। बियाह में मिली मुर्रा भैंस जब तक मनोतिरया की माई के खूंटे पर रहेगी डीजल की माई का कलेजा ठंडा कैसे हो सकता है? दस किलो दूध देने वाली भैंस। वह पूरे विश्वास के साथ दावा करती है कि बिसराम की पतोहू भगाने में मनतोरिया की माई का हाथ है। अभी खाना-तलासी ली जाए तो पतोहू गहना और 'गुंडा' समेत इसी के घर से बरामद हो सकती है लोग झूठ-मूठ टेशन-बाजार खोजने गए हैं।

मनतोरिया की माई अभी-अभी ही बिसराम के दरवाजे से गई है बहुत जरूरी-जरूरी काम निपटाने। पहुँचाने वालियाँ तुरंत उसके कानों में सारी बात पहुँचाती हैं। वह काम-धाम छोड़कर दौड़ती है। लेकिन डीजल की माई को भी झगड़ने का पुराना अनुभव है। आमने-सामने लड़ने का कायदा नहीं। कह खिसक जाती है।

बिसराम थोड़ी-थोड़ी देर बाद सिर उठाकर 'शिव हो, शिव हो' कहता है और फिर झुका लेता है। अब तमाशे में कोई दम नजर नहीं आता। लोग एक-एक करके खिसकने लगे हैं।

सहसा हवा के झोंके पर चढकर खबर आती है–पकड़ी गई पतोहिया रेलवे-टेशन पर। जाने कहाँ छिपी बैठी थी। गाड़ी आते ही लपक कर चढ़ी। गाड़ी से उतार कर ला रहे हैं लोग। खबर मिलते ही चौंक कर खड़ा हो जाता है बिसराम, ''खबरदार! जो मेरी डेहरी के अंदर कदम रखा हरामजादी ने।''

आगे-आगे मरी चाल से सिर झुकाए, हाथ में बक्सा लटकाए चलती पतोहिया और तीन तरफ से घेर कर चलते खोजी दल के सूरमा। पीछे-पीछे आधा गाँव। याद नहीं पड़ता कि ऐसा तमाशा पिछले कई बरसों में गाँव वालों को देखने को मिला हो।

झोपड़ी के दरवाजे पर हाथ पैर फैला कर खड़ा हो गया है बिसराम। अंदर का रास्ता हमेशा के लिए बंद। ससुर-पतोह का नाता खतम!

''सजुठारी हुई चीज। दागी जिंस। बाहर बैठाओ।''

''इसका भतार नहीं पकड़ में आया।'' बिसराम पूछता है, ''दूसरा कौन था साथ में?''

''और तो कोई नहीं था।''

''रहा कैसे नहीं। बगल में या सामने साँवला-सा नौजवान, मूंछ वाला?''

''हां-हाँ। सामने की सीट पर एक नौजवान बैठा था। मूंछ भी थी। पूछता था, क्यों पकड़ रहे हो औरत को?''

''वही-वही'' बिसराम बताता है। वही है डरेवर। पुराना यार इसका। उसको साले को काहे छोड़ दिया। इसके साथ उसका मूंड भी मूंड़ाकर गधे की सवारी...

पतोहू बीच दुआर पर बैठ गई है। गाँव की औरतें उसके गिर्द घेरा बनाकर बैठ रही हैं। एक बार फिर से मेला लग गया है। बिसराम हाथ जोड़कर गाँववालों के सामने सवाल रखता है। पाँच पंच बताएँ कि उसके लिए क्या हुकुम होता है। चार-चार अधेड़ बजुर्ग सलाह करते हैं। फिर तय होता है कि शाम को बिसराम के दरवाजे पर पंचायत बैठेगी पूरे गाँव की। उसी में तय होगा कि गाँव की नाक कटाने वाली जनाना को क्या सजा दी जाए।

सहसा बिसराम को कुछ याद पड़ता है। वह लपक कर पतोहू के बक्से की साँकल झटक कर उखाड़ लेता है, ''मेरी मेहरारू के गहने? अंदर की चीजे उलट-पलट डालता है। गहने कहाँ गए मेरे? रुपए? मुहर? वह पतोहू के बाल झिंझोड़ने लगता है।''

पतोहू झटके से उठकर खड़ी होती है, ''खबरदार। कुत्ता, दाढ़ीजार, जो दुबारा हाथ लगाया मेरी देह पर। कच्चा चबा जाऊँगी।''

बाप रे! सहम कर पीछे हट जाता है बिसराम। औरतों का झुंड पतोहू को खींच कर बैठा लेता है, जरा तेवर देखो। इतने में भी लाज शरम का लेश नहीं। पतोहू पागलों की तरह आँख फाड़ कर ताक रही है। बिखरे खुले बालों को सँभालने की जरूरत नहीं समझती।

बिसराम हट कर अपनी जगह पर बैठ गया है। पतोहू को ढूँढ़कर लाने वाले लोग जीत कर भी हरा हुआ महसूस करने लगे हैं। गहना रुपया तो ले गया डरेवर सारा! 'इज्जत' रात में ही ले लिया... उस समय किसी के दिमाग में आई नहीं यह बात। सारे के सारे नए लौंडे। लड़की पाकर ही 'बेहाल' हो गए।

गाँव की औरतें पतोहिया के मुँह से सारा 'असली किस्सा' सुनना चाहती है। कब से आता था डरेवर यहाँ? यहाँ छिपा कर रखती दिन में? एक औरत ने आँचल के खूँट में बंधा टिकस ढूँढ लिया। किसी पढ़वैया लड़के को बुलाओ तो पढ़ कर बताए।

पतोहू की तरफ से कोई जवाब न पाकर औरतों को चिढ़ हो रही है। आजकल की लड़कियों को महीना-खांड भी सबर नहीं। पैदा होते ही भतार चाहिए। इसी को कहते हैं, कलजुग, बहिनी।

विमली को आने के लिए आता उसका बाप साँझ का झुटपुट होते-होते गाँव की सिंवारी में पहुँचता है। खेतों में काम करने वाले एक छोड़ दस लोग उसकी बेटी की कलंक-गाथा सुनाने के लिए घेर लेते हैं। सुनकर कान बंद कर लेता है विमली का बाप। विमली की माँ सामने होती तो लात-जूतों के हीक भर मारने से शायद कलेजे की जलन कुछ ठंडी होती। विदाई से पहले वह इसी चिंता में रात-दिन डूबता उतराता था। विदा किया तो लगा छाती से पहाड़ टल गया। कौन जानता था कि भट्ठे पर सीखा 'गुन' यहाँ आकर दिखा देगी। डरेवर, साला, हरामजादा, एकरी बहिनी क...

अब क्या मुँह लेकर आगे बढ़े वह। कालिख पुता मुँह। ऐसी बेटी का मुँह देखने से भी 'महापाप' चढ़ेगा। अब कौन किसकी बेटी, कौन किसका बाप! पंच लोग आ गए पंचायत में तो सिर पर जूते रखवाएँगे।

अंधेरे का फायदा उठाकर वह उल्टे पैरों लौट पड़ता है।

अंधेरा होते ही गाँव के लोग पंचायत के लिए जुटना शुरू हो जाते हैं। तेरस का चाँद अंधेरे को चीरकर निकलता है, तब तक पंचायत जम जाती है। यह पंचायत जातीय पंचायतों से अलग है। जातीय पंचायत एक जाति की होती है। उसी जाति के पंच उसी के सरपंच। यह पंचायत हमारी है। पूरे गाँव-समाज की। इसमें सभी जाति के पंच हैं। एक-एक।

किसी और का मामला होता तो जातीय सरपंच बिसराम चुना जाता लेकिन आज तो वह फरियादी है। बोधन महतो जो बिसराम के स्वजाति हैं-सरपंच चुने गए हैं। डीजल का बाप खास पंच। शिवाले के पुजारी जी ने पंच बनना मंजूर नहीं किया। वे गृहस्थ नहीं है, बाल-ब्रह्मचारी हैं। लेकिन जरूरत पड़ने पर अपनी बात रख सकते हैं। इसके अलावा बाकी लोगों को भी सवाल उठाने और अपनी बात रखने की आजादी है।

बच्चे मर्दों के बीच में ही टाट पर इधर-उधर घुसे हैं। औरतें तनिक हटकर अलग गोला बनाकर बैठी हैं। लेकिन इतना सटकर कि एक-एक सवाल एक-एक जवाब साफ-साफ सुनाई पड़े।

चारों कोनों पर चार मशालची मशाल लेकर खड़े हैं। बीच में एक 'चलता' मशालची। जो भी बोलने के लिए उठता है, 'चलता' मशालची हाथ बढ़ाकर मशाल

बोलने वाले के चेहरे की तरफ कर देता है। पंचायत का मुद्दा जग जाहिर है फिर भी रिवाज के मुताबिक बिसराम पंचों के बीच में खड़ा होता है। कंधे पर पड़ा अंगोठा माथे लगाकर पंचायत को 'शीश' झुकाता है और अरदास करता है, ''पंचों। पंचायत के बीच में जो जनाना बैठी है, मेरी पतोहू है सो आप सभी जानते हैं। मेरा लड़का 'परदेश' है। गौना कराने की कोई जल्दी नहीं थी। लेकिन लड़की के बारे में इसके नैहर से जो खबर मिलती थी उसे सुन-सनुकर कान पक गए थे। यह सोच कर कि नैहर छूटेगा तो सब ठीक हो जाएगा, गौना करा लिया। यहाँ आने पर गलत-सही बात देखने पर टोका-टाकी शुरू किया तो मेरे टोले के लोगों ने मेरी ही गलती निकालना शुरू कर दिया। सो भी आप लोग थोड़ा-बहुत सुने होंगे। पाँच पंच की बात सुनकर मैंने अलग मंड़ई तैयार किया। लेकिन यहीं गलती हो गई। नजर से दूर होने का नतीजा हुआ कि पतोहू हाथ से बेहाथ हो गई। डरेवर के साथ पहली बार नहीं भागी है यह। मेरी मरी मेहरारु का गहना गुरिया हाथ से गया, इसकी चिंता नहीं है मुझको। जांगर रहेगा तो फिर कमा लूँगा। लेकिन इज्जत पर बट्टा लगा दिया, मेरे साथ-साथ गाँव की इज्जत पर, उसका क्या होगा? अब सारा मामला पंचों के सामने हैं जो चाहे उसको सजा दें। जो चाहे मुझको। हाँ मेरा कसूर है कि मैं कथा-कीर्तन में रमा रहा। इसे 'रखा' नहीं पाया। चौकीदारी नहीं कर पाया। वैसे ही हम ई जरूर कहेंगे कि कथा-कीर्तन के कारन ही मेरी जान बची गई। नहीं तो अब तक मेरी जली हुई लहास पंचों के बीच में होती।''

बिसराम हाथ जोड़कर अपनी जगह पर बैठ जाता है। थोड़ी देर के लिए सन्नाटा हो जाता है। सबकी नजर फिर एक बार औरतों की गोले में बैठी पतोहू की तरफ उठती है। लेकिन चाँदनी में ज्यादा साफ नहीं दीखता।

सरपंच बोधन महतो बोलते हैं, ''पतोहू को पंच के बीच में खड़ा किया जाए।''

दो-तीन औरतें बाँह पकड़ कर पतोहू को बीच में लाती है। मशालची मशाल आगे कर देता है। पतोहू सिर उठाकर खड़ी होती है, कोई लाज नहीं! कोई डर नहीं! सिर पर आँचल नहीं। पूरी पंचायत को ठोकर मारती नजरें! यह बात सबको खलती है।

''देखो लड़की। तुम पंच के बीच में खड़ी हो। पंच के बीच माने भगवान के बीच। यहाँ न कोई किसी का हितू है न मुद्दई। यहाँ जो भी बोलना होगा, सच-सच बोलना होगा। भगवान को हाजिर नाजिर जानकर बोलना होगा। मंजूर?''

स्वीकृति में सिर हिलाती है पतोहू।

''तुम घर से किसके साथ भागी। काहे भागी?''

''किसी के साथ नहीं। अकेले भागी। अपने आदमी के पास जा रही थी–कलकत्ता।''

''तब गहना रुपया किसको दे दिया सास का?''

''मैंने कोई गहना रुपया नहीं खोदा। यह सब झूठ है।''

''झूठ है? रात तेरे साथ कोई आदमी था झोपड़ी में। दारू पी गई। मछली खाई गई। क्या यह भी झूठ है?''

''यह सच है।''

''तो मिट्टी के तेल की बोतल और माचिस लेकर बिसराम की मंड़ई में गई थी, यह सच है कि झूठ है?''

''सच है।''

''क्यों गई थी?''

''गई थी इसे मिट्टी का तेल डालकर फूँकने।''

''काहे?''

''क्योंकि रात मेरी झोपड़ी में दारु पीने वाला, मछली खाने वाला और मेरे साथ मुँह कला करने वाला जानवर यही था। मैं इसे जिंदा जलाना चाहती थी लेकिन यह बच गया। अब मैं इसका माँस खाऊँगी।''

पतोहू बिसराम की तरफ लपकती है। थोड़ा हो–हल्ला होता है। लोग उसे पकड़ कर बैठा देते हैं। पंचायत में भनभनाहट होने लगती है।

बिसराम को अब डरने की जरूरत नहीं। वह हाथ जोड़कर खड़ा होता है।''पंचों से मेरी एक अरदास है। यहाँ पर शिवाले के पुजारी बैठे हैं पंच उनसे पूछ सकते हैं। रात–दस ग्यारह बजे तक तो मैं 'कथा' में व्यस्त रहा शिवाले पर। फिर घर आया। खाना खाकर जरा कमर सीधा किया। ठीक से झपकी भी नहीं आई और फिर सीधा शिवाले की सीढ़ियों पर जाकर पड़ गया। आधी रात को बाबाजी उठे तो मुझे सीढ़ियों पर पड़ा पाया। मैंने इसके साथ मुँह काला कब कर लिया? मछरी कहाँ बैठकर पकाया? दरवाजा तो यह अंदर से बंद करके सोती है? उसे कब कैसे खोल लिया? और यह सब हुआ तो इसने हल्ला–गुल्ला क्यों नहीं किया?

पुजारी जी ने सिर हिलाकर समर्थन किया।''दो–तीन घंटे मुश्किल से शिवाले से हटा होगा बिसराम। बल्कि सपने की चर्चा भी उसने किया था। सवेरे आरती कराया, भजन सुनाया। पंचों के लिए सचमुच सोचने की बात है।''

''तू झोपड़ी अंदर से बंद करके सोती है। बिसराम बाहर मड़ई में सोता है। फिर वह अंदर कैसे घुसा?''

''वह परसाद लेकर शाम को आया। मैंने परसाद 'ग्रहण' किया। फिर मुझे आलस आ गया। नींद आने लगी। मैं बिना दरवाजा बंद किए लेट गई।

''ताज्जुब की बात! लेकिन जब तेरे साथ गलत काम होने लगा तब भी तेरी नींद नहीं टूटी।''

''जरा सी टूटी थी लेकिन आँख खुलती ही नहीं थी। जैसे नशा चढ़ा हुआ था।''

''हुंह! नशा चढ़ा था। तो इतनी जल्दी उतर गया नशा! बताइए भला। यह विश्वास की बात है। औरत के साथ ऐसा–वैसा काम हो और उसकी नींद न टूटे। ऐसा कलजुगी बयान!''

''और मछली यहाँ पा गया बिसराम? वह तो दिन भी शिवाले पर था।'' इसका क्या जवाब दे पतोहू?

बाल विधवा बिरजा बैठ सोच रही थी अगर वह कह दे कि मछली का चिखना तो उसी से बनवाया था बिसराम ने। शिवाले से लौटते समय लेते हुए आया था–तो? अभी सारी पंचायत उलट जाएगी... लेकिन तब उससे भी तो पूछा जा सकता है कि कितने साल से वह बिसराम का चिखना बनाती रही है? आगे से चिखना बनाना बंद हो जाएगा सो अलग।

मनतोरिया की माई से नहीं रहा जाता। वह उठकर खड़ी हो जाती है–एक दम ठीक बोलती है पतोहू! मैं गवाह हूँ। एक दिन मैं खुद गई थी इसकी झोपड़ी में। वही दारू की बोतल। वही बीड़ी के टोंटे। पुराना पापी है बिसरमवा। महागीध। घटियारी शुरू से इसके मन में बसी है।''

''किसकी औरत है यह? जनाना की जात, बिना बुलाए कैसे कूद पड़ी बीच में। छुट्टा–छुट्टी है? कौन है इसका आदमी?''

कुछ लोग मनतोरिया की माई को डाँट कर बैठा देते हैं। फिर विचार–विमर्श होने लगता है। अगर शुरू से घटियारी की बात मान लें तो आज तक पतोहू ने मुँह क्यों नहीं खोला कभी?

बिसराम फिर भयभीत होता है। वह हाथ जोड़कर खड़ा होता है।

''पंचों। मेरी पतोहू को बिगाड़ने में इसी औरत का हाथ है। मनतोरिया की माई का। पतोहू से सवाल किया जाए कि क्या डरेवर वाला किस्सा झूठा है? कुइसा मिस्त्री का गहन-गुरिया गढ़ना झूठा है? ट्रैक्टर चलाने वाले लड़के के साथ मेला देखना झूठा है?''

फिर सवाल! सवाल पर सवाल।

पतोहू एक-एक सवाल का जवाब देती है। डरेवर भट्टे पर आता है। वह उसे खाना बनाकर खिलाती थी। इसके आगे और कोई बात नहीं। बिल्लर ट्रैक्टर चलाता था। मेला देखने वह अकेले नहीं भट्टे की सारी औरतों के साथ गई थी। कुइसा मिस्त्री की जनाना नहीं है। उसे जनाना की तलाश है। लेकिन उसके बाप के साथ कोई सौदा हुआ था उसकी जानकारी उसे नहीं है। गहना-गुरिया उसने अपनी कमाई से बनवाया है।

कुछ भी हो, लेकिन बदनाम रही है पतोहू मायके में, वह बात साबित होती है। फिर उसका बयान भी यकीन के काबिल नहीं कि नींद के मारे वह बिना किवाड़ बंद किए सो गई और 'ऐसी-वैसी' बात होने पर भी उसकी आँख नहीं खुली। और रात में ऐसी नींद में मतवारी हो रही थी तो सबेरे बताती। भागी काहे? बिसराम को मछरी कहाँ से मिल गई? गहने खोदे गए और पतोहू के पास नहीं मिले तो जरूर कोई साथ था जो लेकर भाग गया। गाड़ी में एक नौजवान ने टोका-टाकी भी किया था गाँव वालों के साथ।

रात आधी से ज्यादा बीत गई है। चंद्रमा सिर के ऊपर आ गया है। छोटे बच्चे महतारी के कोरे में सो रहे हैं। बड़े बच्चे टाट पर इधर-उधर पड़े हैं। सब इस लालच में जुटे थे कि पंचायत खत्म होने पर सबको गुड़ खाने को मिलेगा।

काफी देर बाद पंच इस नतीजे पर पहुँचते हैं कि पतोहू का ससुर पर लगाया गया आरोप बेबुनियाद है। पतोहू ने रात अपने यार को बुलाया था। उसके साथ दारू पिया। मछली खाई। मुँह काला करवाया। गहना खोदकर निकलवाया और सबेरे भागते-भागते ससुर को फूँक जाना चाहती थी कि पीछे कोई ढूँढ़ने वाला न बचे। अब इसकी क्या सजा दी जाए, यह सोचना है।

पुजारी जी बताते हैं-वेदों में कई तरह की सजाएँ लिखी है। लाल मिर्च की बुकनी भरने की सजा। लछिमन जी ने तो इससे छोटी गलती पर नाक कान दोनों काट लिए थे। अभी-अभी एक वेद वे हरिद्वार से लाए हैं। उसमें लिखा है-बालब्रह्मचारी की सेवा में भी 'परासचित' होता है।

सजा की तजवीज में हल्ला-गुल्ला तेज हो जाता है।

थोड़ी देर बाद पुजारी जी फिर कहते हैं कि अगर पहली गलती का ध्यान रखते हुए पंच सुधार का मौका देना चाहें तो छह महीने के लिए शिवाले पर झाड़ू लगाने की सजा देना काफी रहेगा।

लेकिन इधर किसी का ध्यान नहीं है। पुजारी जी को लगता है कि लोग जान-बूझ कर उनकी सुझाई सजा की तरफ ध्यान नहीं देना चाहते।

काफी देर तक 'विचार' होता है। अंत में बोधन महतो खड़े होकर फैसला सुनाते हैं, ''गाँव की नाक कटाने वाली, गाँव की इज्जत में दाग लगाने वाली जनाना को बेदाग नहीं छोड़ा जा सकता। अगर आगे थाना पुलिस तक बात जाती है तो भी गाँव के लोग उसे चंदा करके झेलेंगे लेकिन दागी जनाना को 'दाग' करके ही नैहर भेजा जाएगा।''

चारों तरफ सन्नाटा! कुत्ते तक चुप हैं।

''अब सवाल है कि दागा कहाँ जाए? तो, इसने अपने 'बियहा' अपने 'सोहाग' के साथ दगा किया है। जिस धन की इच्छा जान देकर भी करना औरत का धरम माना गया है उसे चिखना और दारू के नशे में फिरी में लुटा दिया है इस बदकार ने-बाहरी आदमी को। इसकी कोई माफी नहीं। इसके लिए तो ऐसी जगह दागना चाहिए कि न कहीं दिखाने लायक रहे न बताने लायक। लेकिन जुग-जमाना बहुत बदल गया है। सड़ा हुआ मामला भी थाना पुलिस में जाता है तो हजार से कम में बात नहीं होती। तो बदले जमाने में सोहाग से दगा की सजा है, सोहाग की निशानी, बिंदी-टिकुली लगाने की जगह, बीचोबीच माथे पर दगनी। जिंदगी भर के लिए कलंक-टीका।''

एक पल के लिए रुकते हैं बोधन महतो। ''किसी को कोई एतराज हो तो बोलो। सबको मंजूर?''

''तो आज अभी इसी पंचायत की बीच लोहे की कलछुल की डांडी लाल करके दागने का काम बिसराम के जिम्मे। पतोहू की निगरानी करने में चूक हुई, इसकी सजा।''

मनतोरिया की माई से फिर नहीं रहा जाता। वह फिर लपक कर बीच में आती है-ई अंधेर है। दगनी दागना है तो बिसराम और बोधन चौधरी के चूतर पर दागना चाहिए। कोई काहे नहीं पूछता कि बोधन की बेवा भौजाई दस साल काहे कुएँ में कूद

कर मर गई थी। गाँव की औरतें मुँह खोलने को तैयार हो जाएँ तो बिसराम की घटियारी के वह एक छोड़ दो 'परमार' दे सकती हैं। वही आदमी बेबस बेकसूर लड़की को दागेगा? और वही बोधन बड़का पग्गड़ बाँधकर दगनी की सजा सुनाएँगे? यही नियाय है? ई पंचायत नियाव करने बैठी है कि अंधेर करने?

मनतोरिया के बाप को इस बार सचमुच गुस्सा आता जाता है। इतने बड़े गाँव में वही सबसे कमजोर मर्द है जो उसी की जनाना भरी पंचायत में गचर-गचर बोले जा रही है? वह लपक कर औरत के बाल पकड़ता है और घर-घर घसीटते हुए पंचायत से बाहर ले जाता है।

अपने आदमी को क्या कहे वह? आदमी तो आदमी? हाथी-हाथी होता है। महावत-महावत। चाहे कितना ही कमजोर महावत क्यों न हो।

तब तक पतोहू उठ कर खड़ी होती है, "मुझे पंच का फैसला मंजूर नहीं। पंच अंधा है। पंच बहरा है। पंच में भगवान का 'सत' नहीं है। मैं ऐसे फैसले पर थूकती हूँ-आ-क्-थू...! देखूँ कौन माई का लाल दगनी दागता है।

वह पंचायत से निकल कर जाने लगती है। पल भर सन्नाटा रहता है। डीजल का बाप ललकारता है, 'सब लोग चूड़ी पहन लिए हैं?

फिर 'पकड़ो', 'पकड़ों' की आवाजें। कई नौजवान पीछे-पीछे दौड़ते हैं। थोड़ी देर में हाथ पैर चलाती पतोहू को सब बकरी की तरह गोद में उठाए हुए लाते हैं और बीच में बैठा देते हैं। कितनी मुलायम देह है।-गुदगुदा मांस! दाब के बैठो। फिर न भागे। डरेवर साला बच कर निकल गया।

पूरी पंचायत की तौहीन। पहले गाँव की नाक कटवायी, फिर पंचायत पर थूक दिया। हिजड़ों का गाँव समझ रखा है क्या?

डीजल का बाप एक नौजवान को लोहे की कलछुल और उपले लाने का हुकुम देता है। दाँव लगा तो मनतोरिया की माई की दगनी भी करके छोड़ेगा वह किसी दिन। दागने की सजा सुनकर औरतें एक-एक करके खिसकने लगती हैं।

दागने का काम नया नहीं बिसराम के लिए। जानवरों के 'जीभी' 'सहनी' रोगों में आए दिन जीभ और मसूढ़े दागता रहता है। लेकिन औरतों की दगनी। पहली बार मौका मिला है।

कलछुल लाल होते ही कई नौजवान पतोहू को हाथ-पैर और सिर पकड़कर लिटा

देते हैं? कस कर दबाओ। जो जहाँ पकड़े वहीं मांसलता का आनंद ले लेना चाहता है। नोचते-कचोटते, खींचते, दबाते हाथ। पतोहू जिबह होती गाय की तरह 'अल्लाने' लगती है। सोने वाले बच्चे जगकर रोने लगते हैं। जगे हुए बच्चे डर कर घर की तरफ भाग चले हैं।

लाल हांडी वाली कलछुल लेकर आगे बढ़ता है बिसराम। इतने दिनों दुहराई जा रही है महाभारत की कथा-भरी सभा में लाचार औरत की बेइज्जती!

इसके कारण भी कोई महाभारत होगा क्या?

काहे भाई। ई कोई रानी महारानी है?

मशालची मशाल नीचे झुकाता है। दागने का मन एकदम नहीं है बिसराम का, लेनिक 'करम' का भोग तो भोगना ही पड़ेगा।

छन्न! कलछुल खाल से छूते ही पतोहू का चीत्कार कलेजा फाड़ देता है। कूदती लोथ! मांस जलने की चिरायंध! चीत्कार सुनकर एकाध कुत्ते भौंकते हैं, एकाध रोने लगते हैं।

चीखते-चीखते बेहोश हो गई पतोहू! लोग पीछे हटते हैं।

पंचायत टूट रही है। हवा में भोर की ठंड आ गई है। पुजारी जी भारी मन से कहते हैं-तिरिया चरित्र समझना आसान नहीं। बाबा भरथरी ने झूठ थोड़े कहा है। तिरिया चरित्रम् पुरुखय भाग्यम्...

बीसों सिर एक साथ सहमति में हिलते हैं।

शिवमूर्ति

जन्म	:	11 मार्च, 195, सुल्तानपुर (उत्तर प्रदेश)
प्रकाशन	:	केशर कस्तूरी (कहानी संग्रह) त्रिशूल, तर्पण, आखिरी छलांग (उपन्यास)
पुरस्कार	:	कथाक्रम सम्मान

इस सदी के अंत में एक सपना

–राजेंद्र दानी

वह किसी राष्ट्रीय त्योहार का दिन था और दिन-भर देशभक्ति के गीत बजते रहे थे। शाम जब घिरी तो बहुत गहरे, डरावने काले बादल आसमान पर छा गए थे। बूंदा-बाँदी शुरू हो गई थी। रात होने तक शहर जाग रहा था, पर जाग का शोर नहीं था। उसी वक्त अचानक फ्रैंकलिन घबराए हुए आए थे और उन्होंने गिरीश को अत्यंत विचित्र और डरावनी बातें बतानी शुरू की थीं।

वे बोल रहे थे–''वह फुफकारता है तो रात के गहन सन्नाटे में उसकी आवाज दूर तक गूँजती है और मैं काँप जाता हूँ। अक्सर वह अंगडाई लेता रहता है और मजबूत छप्पर थरथराने लगता है। मैं सितार बजाने लगता हूँ तो उसकी जीभ लंबी होकर मेरे पास तक पहुँचने लगती है। मेरे हाथ डर से रुक जाते हैं। कभी-कभी रात में बिस्तर पर सरसराहट होती है। आँखें खुलने पर पाता हूँ वह बिस्तर पर है, ठीक मेरे बगल में। मेरे छटपटाकर उठने पर वह अदृश्य हो जाता है, जैसे रात की कालिमा में घुल जाता हो। लेकिन दूसरे ही पल वह म्याली पर नजर आता है। वह मुझे सपने में भी नहीं छोड़ता। अक्सर वहाँ किसी सुख-भरे वातावरण में वह अचानक चला आता है और धूल-भरी आँधियाँ चलने लगती हैं। तब वह बेहद लंबा हो जाता है, अंनत। कई बार मैंने उसके पंख लगे भी देखे हैं। वह रफ्तार में रहता है। कभी-कभी समय से आगे चला जाता है। वह बदलता रहता है। आप विश्वास नही करेंगे, वह जानकारियाँ नही लेने देता। किताबों, पत्रिकाओं और ऐसी अनेक चीजों से उसे सख्त नफरत है। मुझे इस सबके लिए उससे दूर जाना पड़ता है। भूलने की कोई तरकीब काम नहीं आती। गुनगुनाना शुरू करते ही वह तड़प उठता है और अपने चमकीले, मजबूत शरीर को म्याली पर

पटकने लगता है। म्याली चरमराने लगती है और मेरे होंठ एक-दूसरे से चिपक जाते हैं। मैं चिल्लाना भी चाहूँ तो वे खुलते नहीं। मेरी चिल्लाहट अंतड़ियों में दौड़ती रहती हैं। इस उछल-कूद में तेज दर्द उठता है और गले में आकर फंस जाता है। गला सूखकर फूल जाता है। घंटों यह हालत रहती है।''

इतना कहकर वे रुक गए थे। उनकी आँखों में गीलापन था। वे लगातार गहरी साँसें ले रहे थे। गिरीश हक्का-बक्का था। कुछ उनकी बातों पर और कुछ उनकी हालत पर। उनकी ऐसी हालत पहली बार देखी थी उसने। उनकी बातें जब तक चलती रहीं तब तक वह एक डरावने आश्चर्यलोक में था। एक अत्यंत अविश्वसनीय दुनिया थी वह। अपनी तत्काल प्रतिक्रिया के लिए वह असमर्थ था और उन्हें गहरी निगाहों से देख रहा था।

अपनी अब तक की जिंदगी में वह हमेशा ऐसे लोगों के काम आता रहा है। सहयोग-सहायता के लिए हमेशा तत्पर। वैचारिक रूप से भी ऐसे लोगों के साथ वह खुद को खड़ा पाता रहा है। फिर ये तो फ्रैंकलिन हैं जिनके लिए उसके अंदर न जाने क्यों एक खास लगाव है, ऐसा जिसमें अनेक भाव है। कोई समानता नहीं थी फिर भी यह था। अपनी समझ के चलते वह इसे दुर्लभ नहीं मानता था। अपनी सीमित वैभव की दुनिया अच्छी थी और सुहाती भी थी पर ऐसे लोगों के लिए वह जो कुछ भी करता था उसें कर्तव्य और गहरी संवेदना रहती है।

फ्रैंकलिन विशिष्ट थे। उनकी उम्र सत्तर की थी और बीस वर्षों से संपर्क था। वे कारीगर-मजदूर थे और शहर की सैकड़ों अट्टालिकाएं उनके हाथों की कला का अंजाम थीं। वे अकेले थे और उनका परिवार उनसे तालमेल न बिठा पाने की वजह से अलग हो गया था। वह समय के एक खास दौर में हुआ था और उस दौर में बूढ़े बढ़ गए थे। वे होश सँभालने की उम्र से मजदूरी करते आ रहे थे। यह सब तो था, लेकिन उनके साथ सितार भी थी। वे चित्रकारी में गहरी रुचि रखते थे और राजनीति को परहेज की तरह नहीं लेते थे। वे काले रंग के थे और पसीने से चमकते रहते थे। ईटों और गारे के बीच उनकी करनी ठीक वैसी ही चलती थी जैसे उनकी उंगलियां सितार के तारों पर। वे इस उम्र में संघर्षों का जैसे एक इतिहास थे। पिछले पचास वर्षों में अच्छी जंदगी के लिए वे बहादुरी से हर तकलीफों से गुजर गए थे और यह भी कि सितार बजाने और ईंट जोड़ने में वे भेद नहीं करते थे। वे कहते इनकी बुनियाद में आदमी होता है, उसके हाथ होते हैं, इसलिए फर्क नहीं करना चाहिए।

उनके प्रति गिरिश के आकर्षित होने के ऐसे अनेकानेक कारण थे। बीस वर्षों के लंबे संपर्क में उनकी अनगिनत विशेषताओं से वह परिचित हुआ था। सामान्य लोगों में यह कहाँ होता है कि किसी वक्त पर, एक मुकम्मल पैसे पाने पर, नए काम स्थगित कर दें, और पहाड़ों और पेड़ों के बीच वक्त गुजारें। पर यह सब फ्रैंकलिन के साथ न था। गिरीश को उनके जीवन के लगभग सारे तथ्य ज्ञात थे। उनका व्यक्तित्व पारदर्शी था। लेकिन उस वक्त वे जो कुछ बता रहे थे वह अपूर्व था और गिरीश को उस दिन तक इसकी कोई भनक नहीं थी। वे जो बता रहे थे उस पर विश्वास करना भी नामुमकिन था। वे अपनी आँखों के धुंधलाने की शिकायत अक्सर करते रहे थे पर इतनी नहीं कि वे कुछ का कुछ देखती हों। वह हरदम मजबूत रहते थे और सीधी रीढ़ वाले थे। पर उस वक्त जैसा चेहरा उनका था उसमें एक निराशा झलक रही थी और वह बदल रहा था।

और यही सब देखकर गिरीश घबरा गया था। इसलिए और भी कि वे जो बता रहे थे वह असंभव था। वे जिसके बारे में बता रहे थे वह एक साँप था कुछ और नहीं। वे धाराप्रवाह काफी देर तक बोलते चले गए थे। फिर किसी क्षण अधिक बोलने से उनकी सांसें उखड़ गई थीं और अंततः वे रुक गए थे।

अकबकाए हुए गिरिश ने सिर्फ इतना पूछा था–''ऐसा कब से है।'' उसके लहजे में एक संदेह था।

लहजे को फ्रैंकलिन पहचान गए थे। एक खोखली और संक्षिप्त हंसी का स्वर न जाने क्यों बाहर आया था, फिर उन्होंने एक रहस्यमयी हुंकार के बाद कहना शुरू किया था–''यह आजकल में घटी बात नहीं है। वह मेरे साथ तीस–पैंतीस वर्षो से हैं और लाख कोशिशों के बाद जाता नहीं है। वह कभी–कभार ही गायब होता है। मेरा कोई भी हथियार उस पर काम नहीं करता। उसके भोजन के बारे में मैं नहीं जानता। मैंने उसे कभी खाते नहीं देखा। लेकिन एक अजीब तरीके से मेरा राशन कम पड़ता रहता है। वह रात के गहन सन्नाटे में छप्पर की म्याली से नीचे उतरता है जब मैं थकान से मिली गहरी नींद में होता हूँ। बर्तनों को लुढ़कने–सरकने की कर्कश आवाजें मेरी नींद को छन्न–भिन्न कर देती है। लेकिन मेरे जागते ही आवाजें लुप्त हो जातीहै। वह एक चमक के साथ पहले जैसा ही बर्तनों पर सरकता रहता है पर आवाजें नहीं होती। उसे मेरी नींद पर शायद गुस्सा आता है। मेरी आँखों के सामने वह मेरी हर चीज की सुध लेता है। उसकी हर हरकत किसी धूर्त मालिक के मुशटंडे पहरेदार की तरह होती है। लेकिन मैं एक छोटी सी नींद में भी सपना देख लेता हूँ। वह सपना बहुत अच्छा है। मैं उसे पूरा देखना चाहता हूँ, वह हमेशा अधूरा रह जाता है।''

जब वे दोबारा रुके तो गिरीश काफी हद तक संयत हो चुका था। उसका दिलो दिमाग फ्रैंकलिन द्वारा बताई गई घटनाओं पर विश्वास करने को कतई तैयार नहीं था। वह उस वक्त संकोच के दबाव में था अन्यथा ऐसे अवसरों पर एक उन्मुक्त ठहाका वह अवश्य लगाता। बीसवीं शताब्दी के छोर पर भला ऐसी बातों पर कौन विश्वास करेगा? उसे मालूम था कि ये बातें फ्रैंकलिन ने कोई सनसनी पैदा करने के लिए नहीं कही थीं, वे अपनी बात पूरे विश्वास से कहते नजर आ रहे थे। लेकिन उसके लिए उन्हें समझना भी मुश्किल था। ले–देकर उसे उनके मानसिक स्वास्थ्य पर ही संदेह हो रहा था और इसीलिए वह उनके प्रति स्वाभाविक रूप से चिंतित हो गया था। उसे यह मालूम था कि फ्रैंकलिन के शरीर का मेहनत से सख्त हो गया बाहरी आवरण भीतरी तहों में भी ठीक वैसा ही नहीं था। जीवन के प्रति सच्ची चिंताओं का जो घोल उनके मस्तिष्क में बनता रहता था वह रगों और स्नायुओं में हमेशा तरलता के रूप में बहता रहता था और नमी बरकरार रहती थी। इसी नमी को पहचानना सभी के लिए आसान नहीं रहता। लेकिन न जाने कैसे और किस तरह गिरीश उसे पहचानने लगा था। उनके रिश्तों में एक तार यह भी था। वह जानता था कि यह बहुत नाजुक भी हो सकता है इसलिए उसने दूसरी बात कहने के पहले काफी समय चुप्पी में काटा, और पानी का एक गिलास भरकर फ्रैंकलिन को दिया। वे धीरे–धीरे पानी पीते रहे। खाली गिलास जब उन्होंने रखा तब भी गिरीश के पास कोई बड़ी बात नहीं थी उनसे कहने के लिए। लेकिन कुछ कहना अनिवार्य जानकर एक हिचक के साथ उसने कहा–''आप घर बदल दीजिए, कई बार इससे समस्या सुलझ जाती है।''

कुछ सोचकर वह बीच में रुका और उन्हें सामान्य कर देने की गरज से मजाकिया लहजे में कहा–''लोगों की मान्यता है कि जहां कोई खजाना होता है, वहीं पर सांप इस तरह रहते हैं...।''

वह अपनी बात शायद और आगे कहीं ले जाकर खत्म करता परंतु इतना सुनते ही फ्रैंकलिन बेतहाशा हँसने लगे। गिरीश ने महसूस किया उस हंसी में किंचित् नाराजगी झलक रही थी। क्षण–भर बाद वे अकस्मात् रुके फिर कहा–''क्या आपको मालूम है मैंने इस बीच कितनी बार घर बदले हैं? कई बार, लेकिन उसने मेरा पीछा छोड़ा नहीं। दूसरी बात वहाँ कोई खजाना होता तो मैं इस हालत में क्यों रहता?''

वे इतना कहकर काफी देर तक प्रश्नवाचक निगाहों से गिरीश को देखते रहे, पर गिरीश से तत्काल कोई प्रतिक्रिया न पाकर कुछ स्मरण करते हुए कहा–''आप इस बात पर हंस सकते हैं, पर मुझे यकीन है कि वह पैसों का लालची जरूर है। मुझे याद

आया, एक बार एक मकान मालिक ने मुझे एक बड़ी रकम उसके मकान में लगाने इसलिए दे दी थी कि वह कहीं बाहर जा रहा था। उस रात मैँ बहुत बेचैन रहा। मेरी पैंट की जेब में वे पैसे थे। बाद में मेरी समझ में नहीं आया कि मेरे कमरे में एक भूचाल सा क्यों आया हुआ है। वह बहुत तेजी से सरसरा रहा था। उसमें अजीब बेचैनी थी। वह कोने-कोने घूम रहा था। उसका रंग गाढ़ा नीला हो रहा था। दीवार पर एक खूंटी से मेरी पैंट टंगी थी। एकबारगी जमीन पर सरकते हुए वह मेरी लटकती पैंट के नीचे ठिठका, फिर अचानक लंबा होता चला गया और दूसरे पल उसका अगला हिस्सा ऊपर पैंट की ओर उठता गया। देखते-ही-देखते उसका मुँह पैंट की जेब में समा गया। फिर मेरी पैंट को वह बड़ी देर तक झकझोरता रहा, और अचानक शिथिल पड़ गया। कुछ देर बाद, जैसे किसी संतोष के मिल जाने पर, वह आराम से अपनी जगह पर पहुँच गया। आप इसे भी बिल्कुल नहीं मानेंगे कि इस बीच उसने मुझे एक बार भयानक गुस्से से देखा भी था।''

वे पल-भर के लिए रुके। शायद मुँह सूख गया था। फिर अपने होंठों पर जीभ फेरते हुए दोबारा कहना शुरू किया-''इस घटना के बाद लेकिन दूसरे दिन जब मैंने अपनी पैंट की जेब में हाथ डाला तो वहाँ पैसे नहीं थे। मैंने देखा वह म्याली पर था और मस्ती में हंस रहा था। वह पैसों को चट कर जाता है,और आप कह रहे हैं वह खजाने के पास रहता है। उन पैसों के एवज में मुझे मकान मालिक की कई महीने बेगार करनी पड़ी।''

उन्होंने अपनी बात समाप्त करके एक लंबी ठंडी साँस ली और अपना सिर झुका लिया।

गिरीश अब उनकी बातों से ऊब गया था। लेकिन उसे भरसक छुपाते हुए उसने कहा-''मैं यह सब नहीं मानता, ऐसा कैसे हो सकता है? आपको जरूर कोई भ्रम है। आपका बुढ़ापा है और एकदम अकेले रहते हैं इसलिए आपको ऐसी अजीब, झूठी और बेतुकी चीजें दिखती है। असल में आप जरूरत से ज्यादा सोचते भी हैं। अधिक तनाव से भी यह होता है।''

फ्रैंकलिन मुस्कुराए और कहा-''हो सकता है, आपके लिए यह झूठ हो, लेकिन मेरे लिए सारी बातें सच हैं, एकदम सौ फीसदी। मुझे विश्वास है, कोशिश करें तो आप भी यह सब देख सकते हैं।''

फ्रैंकलिन ने जिस विश्वास से अपनी अंतिम बात कही गिरीश को बहुत आश्चर्य हुआ लेकिन फिर भी उसने जोर देकर कहा-''असंभव! एकदम असंभव, मैं नहीं

मानता कि मुझे ऐसी कोई चीज दिख सकती है। मेरी मानसिक स्थिति बिल्कुल ठीक है। असल में आप मानसिक रूप से अस्वस्थ हो गए हैं। मेरा आग्रह है कि आप कुछ दिनों के लिए कहीं चले जाएं। यदि हर्ज न हो तो यहां, मेरे पास आकर रहें। शायद आपको किसी डॉक्टर से भी मिलना चाहिए।''

गिरीश के सारे सुझाव फ्रैंकलिन को बचकाने और किंचित् अपमानजनक लगे। लेकिन उन्होंने इसे प्रकट नहीं होने दिया, हालांकि उन्हें गिरीश से यह उम्मीद भी नहीं थी कि वह उनकी बातों पर विश्वास नहीं करेगा। लंबे समय तक विचारने के बाद ही उन्होंने उससे सब कुछ बताया था। अपने विश्वास की असफलता पर वे कुछ देर सोचते रहे और चुप रहे आए। पर शायद गिरीश पर उनका विश्वास पूरी तरह डिगा नहीं था इसलिए वे अचानक बोले-''आप क्यों नहीं मेरे साथ चलकर मेरे घर कुछ दिन रहते। आप स्वयं ही कुछ दिनों में उसे देख लेंगे। अगर तब भी वह आपको नहीं दिखा तो मैं यह मान लूँगा कि मैं मानसिक रूप से अस्वस्थ हो गया हूँ।''

गिरीश ने महसूस किया कि यह फ्रैंकलिन का प्रचलित विनम्र लहजा नहीं है। गहराई में कहीं कोई चुनौती है। उसे समझ में नहीं आ रहा था कि वह फ्रैंकलिन का यदि आदर करता है तो इसका यह मतलब तो नहीं कि उनकी इस तरह की बकवास को सच मान ले। असमंजस की स्थिति में वह उद्धिग्न हो गया था। बाहर तेज बारिश शुरू हो चुकी थी और उसका शोर उसी तीव्रता से कमरे में प्रवेश कर रहा था। गिरीश कुछ सोच ही रहा था कि आसमान में बिजली चमकी और भीषण गर्जन के साथ पूरा कमरा तीव्र रोशनी से नहा गया। तभी एक अजीब बात हुई। न चाहते हुए भी गिरीश के मुँह से निकला-''ठीक है, यही सही। आप कहते हैं तो यह करके भी देख लेते हैं। मैं कल से शाम को दफ्तर से लौटने पर सीधे आपके घर पहुँचकर तब तक रहूंगा, जब तक वह मुझे नहीं दिख जाता। लेकिन मैं एक बार फिर कहता हूँ कि आपकी मानसिक स्थिति ठीक नहीं है।''

यह सुनकर फ्रैंकलिन बहुत खुश हुए और बिना कुछ कहे एक झटके से उठे और तेज बारिश के बावजूद बाहर निकल गए। गिरीश हतप्रभ सा खड़ा रह गया। वह जब तक उन्हें रोक पाता तब तक वे तेज कदमों से पानी से सराबोर सड़क पर पहुँच चुके थे। गिरीश को लग रहा था कि बारिश और बढ़ेगी। वह दरवाजा बंद करके जब वापस कमरे में आया तो उसे अपना गला सूखता हुआ महसूस हुआ। उसने किचन में पहुँचकर फ्रिज से पानी की एक बोतल निकाली और गटागट पूरी बोतल एक साँस में पी गया। न जाने क्यों उसका पेट गर्म हो रहा था और भीतर पित्त उछालें भर रहा था। उसके लिए

यह नया अनुभव था। संभवत: वह अंदरूनी तौर पर खीजा और चिढ़ा हुआ था। फ्रैंकलिन को गए काफी देर हो चुकी थी और अब उसे किसी सीमा तक यह अफसोस हो रहा था कि उसने नाहक फ्रैंकलिन की बात को एक शर्त की तरह मान लिया था। वह खुद की समझदारी पर अचंभित था और हो गई बेवकूफी पर पछता रहा था। काफी देर तक वह एक ऊहापोह की मन:स्थिति में रहा। लेकिन अब विरुद्ध चले जाने का कोई चारा उसके पास नहीं था। थक-हारकर वह खुद को आने वाली स्थितियों के लिए तैयार करने लगा। लेकिन यह दिलचस्प था कि इसके बाद भी वह अपने आपको स्थिर-सकाग्र नहीं कर पा रहा था।

दूसरे रोज सुबह-सुबह उसने घर के तमाम लोगों को यह सूचना दे दी कि वह आज से कुछ दिनों के लिए फ्रैंकलिन के घर रहेगा। घर के लोगों को कुछ समझ न आया। उन लोगों ने आश्चर्यसहित न जाने कितने प्रश्न उससे किए, पर जवाबों को वह टाल गया। वह जानता था कि यदि उसने सही-सही कारण बताया तो लोग उस पर हंसेंगे। इसलिए उसने खुद के लिए झक्की या सनकी जैसी तोहमतों को चुपचाप मान लिया और दफ्तर ले जाने वाले ब्रीफकेस में ही कुछ कपड़े और दूसरे आवश्यक सामान लेकर वह दफ्तर के लिए निकल गया।

दफ्तर से फारिग होकर जब वह देर शाम गंदी और बंहद कुंद गलियों को पार करता फ्रैंकलिन के घर पर पहुँचा तो पानी नहीं गिर रहा था और उमस बढ़ गई थी। वह पसीने-पसीने था। फ्रैंकलिन अपने दरवाजे पर उसका इंतजार ही कर रहे थे। कोई तीखी दुर्गंध उसकी नाक में समा रही थी और वह रुमाल रखकर उससे बचने की असफल कोशिश कर रहा था। वह जब फ्रैंकलिन के बिल्कुल करीब पहुँचा तो वे मुस्कुराए। इस क्रिया में उनके दाँत दिखने लगे थे और आँखें बाहर निकल आई थीं। गिरीश को न जाने क्यों वे पहली बार कुछ-कुछ खौफनाक नजर आए। उसने अनजाने डर से नजरें हटा लीं।

फ्रैंकलिन ने सिर्फ इतना कहा-''आइए, मैं आपका इंतजार ही कर रहा था।'' फिर वे दोनों चले गए और बाहर पूरी तरह अंधकार में डूब गया।

अंदर एक बहुत पीला और जर्जर रोशनी वाला बल्ब जल रहा था। वहाँ सीलन और मरे चूहे की दुर्गंध समाई हुई थी। वह काफी बड़ा इकलौता कमरा था और वहाँ कोई खिड़की नहीं थी। काफी हद तक वह खाली था। सिर्फ एक कोने में दो खटियां बिछी हुई थीं और वहीं पास में कुछ बर्तन, थोड़े ढंके और थोड़े उधड़े पड़े हुए थे। उसी कोने पर कई खंडों वाला एक बड़ा आला था, जिसमें कुछ एल्यूमीनियम के पुराने डिब्बे

बेतरबीत बिखरे थे। पानी का एक काई लगा घड़ा और दो बाल्टियाँ भी वहीं थे। इन सबसे दूर दूसरे कोने में एक सितार दीवार से टिकी हुई थी। उससे थोड़ा हटकर एक आदमकद आईने का टुकड़ा तिरछा होकर रखा था। उस पर लंबे समय से धूल की गहरी पर्त जमा थी।

गिरीश की नजरें चारों ओर घूम रही थीं। पूरा कमरा एक अजायबघर का प्रभाव पैदा कर रहा था। कोई खड़खड़ाती आवाज बार-बार खुद को दोहरा रही थी। असल में एक बहुत पुराना और वजनदार पंखा अपनी सबसे कम गति में घूम रहा था और उसके घिस चुके बेयङ्गरग आवाज कर रहे थे। पंखा म्याली से लटका था। गिरीश की नजर जब वहाँ पड़ी तो वह चौंका। उसे अचानक कुछ याद आया, फ्रैंकलिन ने बताया था कि वह सांप अक्सर म्याली पर लिपटा रहता है। पर उस वक्त वहाँ कुछ नहीं था, अलबत्ता धूल चिपकी होने के बावजूद काली म्याली काफी हद तक चमक रही थी। उसे ख़ुशी हुई यह देखकर कि वहाँ सांप नहीं था। वह निश्चिंत हो गया और उसने एक हल्के व्यंग्य सहित फ्रैंकलिन से अचानक कहा-''यहाँ तो कुछ नहीं है, कहाँ गया आपका वह सांप?''

फ्रैंकलिन ने एक रहस्यमयी मुस्कान के साथ जवाब दिया-''बेसब्र मत होइए, इतनी जल्दी नहीं दिखेगा वह आपको।''

उनकी बात सही थी कि कुछ मिनट ही गुजरे थे गिरीश को वहाँ पहुँचे हुए। लेकिन उसे काफी हद तक यकीन हो चला था कि फ्रैंकलिन की दिमागी हालत वाकई ठीक नहीं है। उसने उनकी बात पर कोई प्रतिक्रिया नहीं की और चुपचाप खटिया पर बैठ गया। उसे पक्का विश्वास हो गया था कि फ्रैंकलिन की बातें सच नहीं होने वालीं।

उसके काफी देर तक चुप रहने पर फ्रैंकलिन अपने कामों में लग गए थे। उन्होंने इतनी देर में स्टोव जलाकर उस पर एक पतीला चढ़ा दिया था जिसमें तीन-चार बड़े-बड़े आलू उबल रहे थे।

लगभग एक घंटा गुजरा था। निहायत बे-स्वाद भोजन करने के बाद गिरीश जब एक बेहद गंदी और पतली तकिया अपने सिरहाने रखकर लेटा तो मच्छरों की तेज भनभनाहट कमरे में गूँज रही थी। काली चमकती म्याली खप्परों के नीचे ठीक उसकी नजरों के सामने थी। वह टकटकी लगाकर उसे देख रहा था। वहाँ अब भी सुनसान था। फ्रैंकलिन दूसरी खटिया पर लेटे थे और गिरीश को बहुत मद्धिम प्रकाश की वजह से समझ नहीं आ रहा था कि वे कहाँ देख रहे हैं। दूर कहीं से ट्रेन के सरकने की आवाज आ रही थी। गिरीश ने अपना बायाँ हाथ उठाकर गौर से अपनी रिस्ट वॉच पर नजर

डाली। शायद छोटी सुई बारह पर पहुँच गई थी। बारिश के मौसम के बावजूद उस दिन सुबह से बिल्कुल पानी नहीं गिरा था और पहले की अपेक्षा उमस ज्यादा बढ़ी हुई थी। शरीर चिपचिपा रहा था और पंखे की गर्म हवा बेअसर थी। पिछले दिन से लेकर उस दिन तक गिरीश ने काफी कुछ सोच डाला था और फ्रैंकलिन की बातें किसी कोने से विश्वसनीय नहीं लगी थीं। वह जरूर अधिक सोचने से तनावग्रस्त था। एक गहरी थकावट वह महसूस कर रहा था और बेहोशी जैसी तंद्रा में झूल रहा था और बार-बार झटके से जाग जाता था। फिर तत्काल उसकी नजर म्याली पर पड़ती थी। लेकिन वहाँ कुछ नहीं पाकर वह आँखें मूँद लेता था।

अभी एक मुकम्मल झपकी वह ले भी न पाया था कि मच्छरों ने उसके शरीर पर जगह-जगह काटना शुरू कर दिया। उनसे बचने के लिए उसने अपने शरीर पर जगह-जगह मच्छरों को मारना शुरू किया, पर मच्छरों का आक्रमण जारी रहा। उसकी झपकी भी लोप हो गई और शरीर खुजलाने लगा। उसने जब कुछ पूछने की गरज से फ्रैंकलिन की ओर देखा तो वे सो चुके थे। उनके महीन खर्राटों की आवाज उसे सुनाई पड़ रही थी। बल्ब की रोशनी इतनी कमजोर थी कि उसे रात में भी बुझाया नहीं जाता था इसलिए वह उस वक्त भी जल रहा था। गिरीश उठा और उसने कुछ खोजना शुरू कर दिया। पर बहुत देर की कोशिशों के बाद भी उसे किसी तरह का मस्क्टिों मैट नहीं मिला। वह बेचैन हो गया। बाहर सड़क पर लगातार कुत्ते भौंक रहे थे। वह काफी देर तक लाचार सा खटिया पर बैठा रहा। उसकी बेचैनी खीज में बदल रही थी और अब मच्छर जागृत हालत में भी काट रहे थे। उसे रह-रहकर एक प्रश्न घेर लेता था कि कहीं उसने फ्रैंकलिन के घर आकर मूर्खता तो नहीं कर दी? फिर उसे यह सोचकर तसल्ली मिलती कि यदि उनकी मानसिक हालत उसके वहाँ रहने से ठीक होती है तो बुरा क्या है। हालाँकि उसे यह महसूस भी हो रहा था कि वह उसके जीवन की सबसे बुरी रात है। उसकी नजर अचानक फिर म्याली पर गई, वह अब भी खाली थी। नींद का अंत तक पता नहीं था।

वहाँ सुबह जल्दी हो गई थी। रह-रहकर मुर्गे बोल रहे थे। कोई मुर्गा ठीक दरवाजे के सामने बोला था। तेज आवाज से गिरीश हड़बड़ाकर जाग गया था। सुबह के साढ़े आठ बजे थे। उसे याद आया, वह रात को अपने-आप नहीं सोया था बल्कि झपकी टूटने के बाद भारी तकलीफ में वह खटिया पर बैठा था। फिर वह सो कैसे गया, कुछ याद नहीं आ रहा था। उसने याद करना छोड़कर चारों ओर देखा, कमरे में उस वक्त कोई नहीं था और दरवाजा खुला था। धूप का एक बड़ा टुकड़ा अंदर जमीन पर फैला

था। वह खटिया से उठने को ही था कि फ्रैंकलिन तभी बाहर से अंदर आए और उसे जागा देखकर कहा–''रात काफी अच्छी नींद आपको।'' उनके हाथ में पानी से भरी बाल्टियाँ थीं।

वह तिलमिला गया उनकी बात सुनकर कि उसे अच्छी नींद आई। अपनु गुस्से को उसने दबा लिया फिर भी तुर्शी से उसने कहा–''आप भी खूब मजाक करते हैं। रात भर मुझे एक पल नींद नहीं आई और कह रहे हैं अच्छा सोया...।''

वह शायद कुछ और भी बोलता पर बीच में फ्रैंकलिन ने आश्चर्य सहित टोका–''क्या रात में आपने उसे देख लिया?''

हालाँकि फ्रैंकलिन बिल्कुल सहज थे पर अब वह अपने आपको दबा नहीं सका और अकारण गुस्से में बोला–''मैं उसे देखने यहाँ नहीं आया हूँ मुझे सिर्फ आपकी तकलीफ का ख्याल है। आप समझते क्यों नहीं कि वह है ही नहीं तो क्यों दिखेगा?''

फ्रैंकलिन चुप हो गए। उनके चेहरे से मगर निराशा झलक रही थी। कोई बात उनकी जुबान तक आते-आते लौट गई थी।

उस पूरे दिन फिर उन लोगों के बीच कोई बात नहीं हुई। वे लोग अपने-अपने कामों पर समय के पहले ही निकल गए।

गिरीश का मन उस दिन किसी काम में नहीं लगा। वह कुछ भी अनाप-शनाप करता रहा। उसकी उखड़ी मन:स्थिति में जब वह शाम को लौट रहा था तो उसे गुजरी रात याद आ रही थी। उसका प्रभाव अभी भी ताजा बना हुआ था। नींद न होने से गहरी थकावट थी और पैर लड़खड़ा रहे थे। उसके दफ्तर से फ्रैंकलिन का घर दूर नहीं था यह सोचकर वह अपना स्कूटर भी आते वक्त घर से लेकर नहीं चला था और अब अपनी इस मूर्खता पर पछता रहा था। बार-बार इच्छा हो रही थी कि वह रास्ता बदल दे और अपने घर की ओर निकल जाए। लेकिन क्या वह ऐसा कर सकता है, या ऐसा करना बेईमानी न होगी। ऐसे अनेक प्रश्न उसके मन में उठ रहे थे। वह इतना कमजोर क्यों हो रहा था उसे स्वयं समझ नहीं आ रहा था। एक दिन ही गुजरा था और उसकी यह हालत थी। आनेवाले असीमित दिनों को वह कैसे काटेगा यह सोचकर वह बेहद परेशान था उसने अपने आपको एक झटका दिया और सोचने से अपना ध्यान हटा दिया। फिर उसकी चाल तेज हो गई, जबकि पहले वह लड़खड़ा रहा था। वह भूलना चाहता था।

सड़ांध मारती लंबी गली को पार करता हुआ जब वह फ्रैंकलिन के घर पहुँचा तो पूरी तरह बेदम हो चुका था। वे पहले से ही दरवाजे पर खड़े थे। नजरें मिलते ही उसने

एक अजीब बात महसूस की। उनका चेहरा उसे बेहद कुरूप नजर आया। वे पहले से ज्यादा काले नजर आ रहे थे। उसकी समझ में नहीं आया कि इसके पहले ये विकृतियां उसे क्यों नजर नहीं आई कभी भी। उसने अपने अंदर एक सिहरन सी महसूस की और नजरें हटाकर, बिना कुछ बोले अंदर आ गया। वही मटमैली, पीली रोशनी कमरे में टिमटिमा रही थी। अंदर कमरा गर्मी से उबल रहा था। बारिश विगत दिनों से न जाने क्यों रुकी हुई थी। उसके तन-मन को किसी भी तरह आराम नहीं मिल रहा था।

फ्रैंकलिन न जाने कब अंदर आकर अपने रोजमर्रा के काम में लग गए थे। वे सुबह की तरह ही गुमसुम थे। वह खटिया पर सोचता हुआ बैठा था और जलते हुए स्टोव पर उसकी निगाहें जमी थीं। लेकिन ध्यान कहीं और था। तवा स्टोव पर चढ़ाने की आवाज पर वह चौंका। फ्रैंकलिन पास में बैठे थे और तवे के गर्म होने का शायद इंतजार कर रहे थे। इस बीच उन्होंने कई लोइयाँ बना ली थीं और अभ्यस्त हाथों से रोटियां बेल रहे थे। फिर जब तवा गर्म हुआ तो उन्होंने रोटियां सेंकनी शुरू कर दीं। एक कपड़ा उनके हाथ में था जिससे वे तवे पर सिंकती रोटी को गोल-गोल घुमा रहे थे और वह रोटी फूलने लगती थी।

सब कुछ, जिनके लिए वह वहाँ था, बहुत अविश्वसनीय बातें थीं लेकिन फिर भी उसे कोई इंतजार सता रहा था। दहशत जैसी चीज उसके अंदर शुरू से नहीं थी लेकिन वह बार-बार उस म्याली पर नजर डाल ही देता था जहाँ सांप के रहे आने की बात कही गई थी। वह अपनी कल्पनाशक्ति से भी कोई रंग, रूप या स्थिति उसे दे नहीं पाया था। न ही यह समझ पाया था कि अगर वास्तव में ऐसा हो भी तो वह क्या हो सकता है?

यह सब सोचते-सोचते कोई हल न मिलने से वह काफी विचलित होता जा रहा था। वह उस घड़ी अपने में नहीं था और छटपटाहट में उठकर टहलने लगा था। कमरे में तेज चलते पंखे की आवाज के अलावा बाहरी तौर पर सब कुछ शांत था। फ्रैंकलिन रोटी सेंकते रहने के बावजूद उसे देख रहे थे। अचानक बगैर किसी भूमिका के उन्होंने गिरीश से कहा-''आप चाहें तो अपने घर चले जाएं। मैं देख रहा हूँ आप काफी बेचैन हैं। शायद आपका मन यहाँ नहीं लग रहा है। आप निश्चिंत रहें मुझे कतई बुरा नहीं लगेगा।''

''नहीं-नहीं, ऐसी कोई बात नहीं है। जगह बदलने से थोड़ा खराब तो लगता ही है। मैं बिल्कुल ठीक हूँ। आप मेरे लिए परेशान न हों,'' उसने तुरंत खुद को किसी हद तक सँभालते हुए कहा। फ्रैंकलिन काफी देर तक उसे गौर से देखते रहे और बिना आगे

बात किए फिर से रोटी सेंकने लगे।

गिरिश अपनी स्थिति पर चिंतित हो गया था। ऐसा कौन सा पहाड़ उस पर टूट पड़ा था कि वह ऐसा व्यवहार करने लगा था, उसके लिए यह समझना कठिन न था। वह अपने व्यवहार से शर्मिदगी भी महसूस कर रहा था। जबकि वह अपनी ऊब को भरसक छिपाने की कोशिश कर रहा था। उसे अपने घर की याद आ रही थी। वह बहुत दूर नहीं था न ही अतीत में, पर याद आना कुछ इसी तरह का था। उसे फिर याद आया, अपने घर को छोड़े छत्तीस घंटे गुजर गए थे।

थोड़ी देर बार फ्रैंकलिन ने उसे पुकारा-''आइए खाना तैयार है।''

वह चौंका और यंत्रवत् जमीन पर बिछी दरी पर आकर बैठ गया। वहाँ चीनी मिट्टी की पुरानी हो चुकी प्लेटों में मोटी-मोटी रोटियाँ रखी थीं और किनारों पर जलकर काली हो गई कोई अनजानी सब्जी।

पहला कौर मुँह में डालते ही उसका स्वाद बुरी तरह बिगड़ गया। तेज लाल मिर्च की जलन और सरसों के तेल की तीखी गंध मुँह में समा गई। एक पल को उसकी अंतड़ियाँ उसे बाहर आती लगीं। लेकिन उसने जबर्दस्ती चबाना शुरू कर दिया। भूख उसे तेज लगी थी हमेशा की तरह, पर भूख में कुछ भी खा लेना उसकी आदत नहीं थी। लंबे अर्से से वह रिफाइंड तेल में बना भोजन करता आ रहा था। बचपन में तो शुद्ध घी का सेवन ही घर में होता था। आने वाली उल्टी को उसने किसी तरह नियंत्रित किया। इस कोशिश में लेकिन उसकी आँखों में आँसू आ गए। वह जल्दी-जल्दी कौर निगलने लगा ताकि बुरे स्वाद और उबकारी से उसे शीघ्र निजात मिले। एक क्षण को रुककर उसने फ्रैंकलिन की तरफ देखा। वे बहुत मनोयोग से भोजन कर रहे थे और उसमें एकदम एकाग्र थे। उसे आश्चर्य हुआ कि ऐसा भोजन भी कोई इतनी तन्मयता से खा सकता है। जबकि मोटी कड़ी रोटियाँ चबाते-चबाते उसके मसूड़ों में दर्द हो रहा था। कड़ी रोटी का एक टुकड़ा भी मुँह में चले जाने पर पर पत्नी को डाँटने लगता था लेकिन वह बिना नाराज हुए कड़ी रोटी हटाकर तुरंत मुलायम रोटी उसकी थाली में रख देती थी। उसे यह आद आते ही रोटियाँ और कड़ी लगने लगीं।

ढाई-तीन रोटियाँ बड़ी मुश्किल से निगलने के बाद वह उठने को ही था कि एक मधुर बेताल ध्वनि ने उन दोनों को चौका दिया। वह ठिठक गया। फ्रैकलिन तेजी से उस ओर पलटे जिस ओर उनकी सितार रखी हई थी, फिर हड़बड़ाते हुए गिरीश से कहा-''देखिए-देखिए, वह वहाँ है, देखिए, देखिए भाग रहा है वह।''

गिरीश थोड़ा घबराया पर लपककर सितार के पास पहुँचा। पर आश्चर्य कि वहाँ कुछ नहीं था। एक बार उसने कमरे में चारों ओर नजर दौड़ाई और अविश्वासपूर्वक कहा–''कहाँ? यहाँ तो कहीं कुछ नहीं है।'' वास्तविकता यही थी कि उसे कुछ नहीं दिखा था।

''लेकिन आपने सितार की आवाज तो सुनी थी, वहाँ वही था। शायद वह किसी कारण गुस्से में था। अपना गुस्सा प्रकट करने के लिए वह ऐसी हरकतें करता रहता है। लेकिन यह बड़ी अजीब बात है कि वह आपको नहीं दिख रहा जबकि वह अभी भी वहीं पर है, सिर्फ ध्यान से देखने की जरूरत है।''

फ्रैंकलिन अभी बोल ही रहे थे कि दीवार से लंबवत् टिकी सितार अचानक भरभराकर धराशायी हो गई और वहाँ धूल का एक छोटा सा गुब्बारा उठा और धीरे-धीरे जमीन पर बैठने लगा। फिर दूसरे सेकेंड पर लाइट गायब हो गई। गिरीश ने तभी महसूस किया जैसे कोई चीज तेजी से जमीन पर सरक रही है। उसके रोंगटे खड़े हो गए लेकिन वह समझ न सका कि क्या है वह सबकुछ जो अभी-अभी गुजर गया। उसे जब कुछ भी नहीं दिखा तो वह विश्वास कैसे कर सकता था। उसने खुद को ढीला छोड़ते हुए कहा–''बेकार की बात, कोई चूहा भी तो हो सकता है। साँप होता तो अवश्य दिखता, वह लंबा होता है, पलक झपकते गायब नहीं हो सकता।''

उसने अपने तईं सही बात कही थी लेकिन यह भी एक सच था कि उसने कोई चूहा भी नहीं देखा था। संभवतः इसलिए उसे पहली बार दहशत का अहसास हुआ था। उस वक्त गर्मी अधिक नहीं थी पर वह पूरी तरह पसीने से भीगा हुआ था। उसने अपने सारे कपड़े उतार दिए और सिर्फ अंडरवियर में खटिया पर लेट गया। नींद एक मूर्च्छा की तरह उस पर सवार हो रही थी लेकिन एक बेहद पतली, पुरानी जर्जर हो चुकी दरी के कारण खटिया की रस्सी उसके नंगे बदन पर बुरी तरह गड़ रही थी। वह राहत पाने के लिए करवटें बदल रहा था। नजर के सामने छप्पर की म्याली थी और वह साँप के दिख जाने की आशंका से बार-बार वहाँ देख रहा था। फिर न जाने क्यों किसी पल उसे लगा जैसे कोई उसकी रीढ़ को जकड़ रहा है। वह छटपटाकर उठ बैठा। लाइट वापस आ गई थी।

फ्रैंकलिन ने उसके अविश्वास को देखकर उससे फिर आगे कुछ नहीं कहा था और वे भी लेट गए थे। वे बहुत निराश थे और बीड़ी के लंबे-लंबे कश ले रहे थे। गिरीश की नजर जब उन पर पड़ती तो उनका चेहरा धुएँ के पीछे ढका था। उसे यह देखकर अच्छा लगा। यह अजीब बात थी कि वह उनके चेहरे को देखने से कतराने

लगा था।

उस रोज मच्छरों की भनभनाहट पिछले दिन की अपेक्षा बढ़ी हुई थी। उसे याद आ रहा था कि अब तक की अपनी जिंदगी में वह इस तरह कभी नहीं सोया था। किसी मुसाफिरखाने में नहीं, किसी सराय में नहीं, न ही किसी रेलवे प्लेटफार्म पर। उसके पास हमेशा अपना साफ-सुथरा बिस्तर होता था। आज भी उसने अपने घर में सबसे आरामदायक अपने शयनकक्ष को बनाकर रखा है।

लेकिन वहाँ कोई चारा उसके पास नहीं था। नींद आने के बाद भी नहीं आ रही थी। तरह-तरह के ख्याल आ रहे थे। एक बार उसने यह भी सोचा कि वह कल बाजार से अपने लिए कए मच्छरदानी ले जाएगा। मगर दूसरे क्षण लगा कि एक फ्रैंकलिन के लिए भी लाना चाहिए। पर उसने अपने इस विचार को भी तुरंत खारिज कर दिया। उसे पक्की तौर पर यकीन था कि फ्रैंकलिन उसे ऐसा नहीं करने देंगे। उससे उनके आत्मसम्मान को ठेस लगेगी। दूसरी तरकीब उसके दिमाग में बहुत सोचने पर भी नहीं आई। वह घंटों सोचता रहा। फ्रैंकलिन के खर्राटे सुनाई पड़ने लगे थे। ईश्वर को उसने कभी याद नहीं किया था इसलिए नींद लाने के लिए उसने सौ से एक तक उलटी गिनती गिननी शुरू कर दी और अपनी आँखों को कसकर मूंद लिया।

गिनती बिगड़ने पर बार-बार दोहराते हुए वह कब सोया याद नहीं। सुबह आँख खुली तो कमरा खाली था। बाहर धूप चढ़ आई थी। उसकी आँखों में तीखी जलन हो रही थी और वे कीचड़ से सनी हुई थीं। पूरे बदन में तेज दर्द था और उठने की इच्छा नहीं हो रही थी।

दूर कहीं किसी रेडियो या टी.वी. से समाचार प्रसारित हो रहे थे पर आवाज इतनी अस्पष्ट थी कि कुछ समझ में नहीं आ रहा था। उसे ध्यान आया, उसने पिछले दो दिनों से न तो टी.वी. पर समाचार सुने थे न ही कोई अखबार पढ़ा था। सब कुछ वहाँ उसकी आदतों के विपरीत था। राजनीति में उसकी शुरू से दिलचस्पी रही है और वह प्रत्येक रोजमर्रा की तेजी से बदलती राजनीतिक सरगर्मियों से वाकिफ रहता था लेकिन पिछले दो दिनों में देश में क्या हुआ उसे ज्ञात नहीं था। न जाने क्यों वह उस वक्त बेहद उतावला हो गया और जैसे ही उसे पहली बार फ्रैंकलिन दिखे उसने अधीरता से न जाने कैसे पूछ लिया–''आप अगर इजाजत दें तो मैं घर जाकर टी.वी. पर न्यूज सुन आऊँ?''

उसने बहुत बचकानेपन से पूछ तो लिया लेकिन तत्काल उसे निराशा हुई। जब

फ्रैंकलिन ने कहा–''मैंने तो कोई दबाव आप पर डाला नहीं है। पहले भी कहा था, आपका मन नहीं लग रहा है तो आप जाएं। यहां वैसे भी बहुत तकलीफें है।''

फ्रैंकलिन की आवाज के पीछे एक विनम्र गुस्से को वह ताड़ गया। वह चुप ही रहा। एक अज्ञात अपराध बोध के चलते वह उनसे यह नहीं कह सका कि वह सिर्फ थोड़ी देर के लिए जाना चाहता है और लौट के आ जाएगा। वे उसकी बात को गलत ढंग से क्यों समझ रहे हैं।

फ्रैंकलिन अपने कामों में निरपेक्ष भाव से ऐसे लगे हुए थे जैसे कुछ हुआ ही न हो। यह देखकर वह भारी मन से उठा और बाहर नल पर नहाने चला गया।

वहाँ गिरीश के दिन इसी बेसब्री, छटपटाहट और बेचैनी से कट रहे थे। वहाँ वह जिस उद्देश्य से था वह पूरा नहीं हुआ था और उसे उसकी कतई उम्मीद नहीं थी। किसी संयोग से भी कोई सांप वहाँ नहीं दिखा था इसलिए एक बात वह तय मानकर चल रहा था कि फ्रैंकलिन किसी भयानक फोबिया से ग्रस्त है ओर उनकी हालत दिन–प्रतिदिन धीमे–धीमे खराब होती जा रही है। वह है कि उनकी किसी दूसरी तरह से मदद करने की जगह उनकी बातें एक तरह प्रत्यक्ष रूप में मानकर उनकी बढ़ती बीमारी में सहायक हो रहा है। अब तक के प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष प्रयत्न उसके बेकार साबित हुए थे। हालाँकि सांप के किस्से के अलावा उनके अंदर कुछ भी ऐसा असामान्य नहीं था जिसके चलते उनके अंदर किसी तरह की बीमारी का संदेह हो, मगर वे इतने संवेदनशील थे कि उनसे किसी दूसरी तरह की बात करना बिल्कुल आसान नहीं था। कम–से–कम गिरीश स्वयं को इस सिलसिले में अक्षम समझता था और अपनी वहां पर हरने की परेशानी को निरर्थक मान रहा था।

काफी दिन वहाँ रहते हुए हो गए थे पर फ्रैंकलिन की हालत में कोई सुधार उसे नहीं दिखा था। शुरू में वह सिर्फ यही मानकर चला था कि उनके अंदर का अकेलापन और उसका बुरा प्रभाव उसके साथ रहने से दूर हो जाएग। इस तरह उसका वहाँ रहना सार्थक होगा मगर ऐसा नहीं हुआ था बल्कि उसकी अपनी तकलीफें बढ़ गई थीं। उसे अच्छा भोजन नहीं मिल रहा था, उसकी नींद गायब हो गई थी। वह संसार की तमाम सूचनाओं से एकदम कट गया था। उसके पास जीवन की आवश्यक सहूलियतें थीं पर अचानक उन सुखों से अकारण वह दूर हो गया था। हैरत उसे काफी गहराई से इन बातों पर अवश्य होती थी कि फ्रैंकलिन के पास माध्यमों का सर्वथा अभाव था पर रोजमर्रा की सूचनाओं, बदलती सामाजिक स्थितियों और राजनीति की जानकारियां बाकायदा उनके पास होती थीं और वे उन पर खुलकर चर्चा भी करते थे। उसे उनके साथ इतने दिन रहने के बाद भी यह सब समझ में नहीं आया था और हैरत अब भी कायम थी।

मगर उस वक्त उसे इन बातों की गहराई में जाने की कोई दिलचस्पी नहीं थी और वह फ्रैंकलिन से कुछ सीधी बात करने का इंतजार कर रहा था।

फिर किसी दिन और इंतजार करना उसने मुनासिब नहीं समझा और फ्रैंकलिन को एक शाम कुछ प्रसन्न देखकर बगैर भूमिका के कहा–''आप अन्यथा नहीं लेंगे पर आज तक आपका वह साँप मेरे रहते तो नहीं दिखा। मैं आपकी तकलीफ समझाता हूँ इसलिए मेरी सलाह मानें। मैं आपको एक अच्छे डॉक्टर के पास ले चलता हूँ। मुझे विश्वास है आप जल्दी ठीक हो जाएँगे, फिर आपको कोई साँप–वाँप नहीं दिखेगा।''

वे पहली बार गुस्से से पलटे और कहा–''आप क्या समझते हैं, मैं पागल हो गया हूँ? आपके आने के बाद भी वह रोज मुझे दिखता है। उसकी हरकतों में कोई फर्क नहीं आया है। मुझे समझ नहीं आता आप उसे क्यों नहीं देख पाते। फिर मैं यह कैसे विश्वास कर लूँ कि आपको वह अभी तक नहीं दिखा होगा। यदि आपकी बात मैं मान भी लूँ कि वह नहीं है तो उसके न रहने पर वर्षों से लगातार जो सपना मैं अधूरा देख रहा हूँ उसे पूरा हो जाना चाहिए था। लेकिन ऐसा नहीं हुआ है और आपसे मेरी विनती है, अपनी सलाह अपने पास रखें।''

गिरीश बेहद घबरा गया उनकी बातें सुनकर। उन्हें इतना खिन्न और गुस्से में उसने कभी नहीं देखा था। वह चुप हो गया। उसने महसूस किया कि फ्रैंकलिन की हालत कमोबेश फिर उस दिन की तरह हो गई थी जैसी पहले दिन सांप के बारे में बताते हुए हुई थी।

शायद यह गिरीश की आखिरी कोशिश थी कि वह अपनी तरह उनके भ्रम को दूर करे और अपने विश्वास के मुताबिक उन्हें सलाह दें। इस आखिरी कोशिश के पहले उसे बहुत हद तक यह विश्वास था कि वे जिद नहीं करेंगे और उसकी बात मान लेंगे। पर वह बुरी तरह असफल हो गया। फिर वह बिल्कुल असहाय सा हो गया। अब उसके पास दो ही विकल्प बचे थे–पहला, या तो वह बिना कुछ उनसे कहे अपने घर चला जाए और कभी उनसे कोई संबंध भी थे, यह भूल जाए। दूसरा, उनकी बातों को सच मान ले और उनकी हाँ में हाँ मिलाए। ये दो विकल्प थे, जिन पर वह सोच चुका था। लेकिन उसने पाया था कि वह दोनों में से किसी एक पर भी नहीं चल सकता। वह किसी को भी चुनने पर अंततः दोगला कहलाएगा। अगर वह भाग जाता है तो फ्रैंकलिन उसे दोगला और धोखेबाज कहेंगे आगे और यदि वह उनकी हाँ में हाँ मिलाता है तो उसका अंतर्मन उसे दोगला कहेगा। दूसरी स्थिति ऐसी थी जिसमें वह जिंदा रहने की

कल्पना नहीं कर सकता था। तीसरा विकल्प कोई नहीं बनता था।

वह कुछ दिन और इंतजार करता रहा कि संभव है स्थितियाँ कुछ ऐसी बनें कि अपने आप सब कुछ ठीक हो जाए पर वैसा भी नहीं हुआ। केवल कुछ अजीब-अजीब घटनाएँ जरूर घटती रहीं जिन्हें रहस्यमय कहा जा सकता था लेकिन वे ऐसी नहीं थीं जिन्हें वह नुकसानदेह कह सकता। अब हर तरह से सोच-सोच कर उसका सिर चकराता रहता था। उसका मन और कहीं लगता ही नहीं था। फ्रैंकलिन के घर से दूर दफ्तर में रहने पर भी। उसे अंततः यह महसूस होने लगा था कि वह बरसों से एक खुली जेल में रह रहा है। अब अपना घर अतीत के किसी सुखद सपने की तरह याद आता। और यह सबसे अजीब था कि जैसे ही उसे अपना घर याद आता वह तकलीफ से तड़पने लगता। उसकी तकलीफ बढ़ने लगती और सिर तड़तड़ाने लगता।

एक सुबह जब वह उठा तो शरीर बेहद निढाल था। वह अपने अंदर बहुत कमजोरी महसूस कर रहा था। सुबह मिलने वाली ताजगी वैसे तो कम होती जा रही थी लेकिन उस दिन वह शून्य पर पहुँच चुकी थी। वह फ्रैंकलिन से लगातार कतराता रहता लेकिन उस दिन वह उनकी सूरत भी नहीं देखना चाहता था पर वे बार-बार सामने आ रहे थे। वह बार-बार इधर-उधर मुँह फेर रहा था। मगर न चाहने के बाद भी एक बार उसकी नजर उन पर टिक गई। उसने देखा, वे तेजी से कुछ खोज रहे थे और उनका मुँह कुछ ऐसा बन रहा था जैसे वे कुछ सूंघ रहे हों। वे बार-बार म्याली की ओर देख रहे थे। उसने भी जब वहाँ देखा तो कुछ नहीं पाया। उसकी निगाह वापस जब उनके चेहरे पर गई तो उसे महसूस हुआ वे घबराए हुए हैं। वे उस वक्त कतई इस दुनिया के आदमी नहीं लग रहे थे। उसकी निगाह किसी अदृश्य शक्ति के वश में होकर उन पर टिकी हुई थी और चाहने पर भी नहीं हट रही थी। अपनी इस कमजोरी को वह समझ न सका और एक झटके से उठा और बाहर हो गया। उस वक्त उसे उन पर दया भी आ रही थी और गुस्सा भी।

अभी समय शेष था मगर उसने दफ्तर की राह पकड़ ली और चलता चला गया।

दफ्तर में पूरा समय कैसे गुजरा उसे बिल्कुल पता नहीं चला। वह जैसे किसी सम्मोहन में था। रात जब होने को आई तो उसने खुद को किसी समय दफ्तर में अकेला बैठा पाया। वह हड़बड़ाकर अपनी टेबल से उठा और तेजी से बाहर की ओर लपका।

जब वह सड़क पर पैदल चल रहा था तो अचानक उसे लगा उसकी पैंट नीचे की ओर खिसक रही है। उसने सोचा, शायद बटन टूट गई है और पैंट पर हाथ लगाया तो पाया कि वह अपनी जगह पर है और काज में फँसी है। फिर पैंट क्यों खिसक रही है

समझ न आया। क्या वह दुबला हो गया है? उसने संदेह से बुशर्ट उठाकर दोबारा जाँच की। लेकिन बटन अपनी सही जगह पर थी। यह देखकर वह घबरा गया। उसने एक हाथ डाला तो शरीर और पैंट के बीच में वह आसानी से चला गया। अब संदेह की गुंजाइश नहीं थी। वह घबराहट में बुदबुदाया-"ये हो क्या रहा है मुझे?"

उसने स्मरण शक्ति पर जोर डाला, कहीं उसने किसी और की पैंट तो नहीं पहन ली? लेकिन नहीं, यह तो वह पैंट थी जिसे छह महीने पहले पत्नी ने उसके जन्म दिन पर सरप्राइज के साथ उसे गिफ्ट किया था। वह और बेचैन हो गया। उसे तभी कुछ याद आया, उसने खोजती निगाहों से चारों ओर देखना शुरू किया। उसके कदमों की रफ्तार फिर चार गुना बढ़ गई थी। वह एक जगमगाती टाकीज के पास आकर रुका। उसे वजन तौलने की मशीन बाहर ही दिख गई थी। वह दौड़कर उसके पास पहुँचा और दूसरे सेकेंड उस पर खड़ा हो गया। संकेतक चक्र जैसे ही रुका उसने एक सिक्का उसमें डाला। कार्ड जब बाहर आया और अपना वजन उसने देखा तो उसकी घबराहट और हैरत का ठिकाना नहीं रहा। उसका वजन आठ किलो कम हो गया था। वह बेतहाशा पागलों की तरह अपने शरीर पर हाथ फेरने लगा। जब उसके हाथ अपने चेहरे पर पहुँचे तो वह कुछ ढूँढ़ने लगा लेकिन असफल होने पर वह तेजी से फिर चल पड़ा। उसकी चाल की रफ्तार और बढ़ गई थी।

फ्रैंकलिन के घर तक का रास्ता उसने लगभग दौड़ते हुए तय किया। दरवाजा खुला था और कमरे में कोई नहीं था। उसका पागलपन बरकरार था और वह सारे सामानों को कुछ ढूँढ़ते हुए अस्त-व्यस्त कर रहा था। उसे याद था, आदमकद टूटे हुए आईने का एक लंबा टुकड़ा कभी उसने उस कमरे में देखा था। बहुत देर की मेहनत के बाद अंततः उसे वह टुकड़ा मिल ही गया। बेसब्री से उस पर छाई धूल उसने अपने हाथ से साफ की और ठिठक गया। वह उस आईने में अपने आप को देखने की हिम्मत बटोर रहा था। कई क्षण तेजी से गुजरे फिर एक झटके से आईना उसने अपने चेहरे के सामने किया। नजर पड़ते ही एक चीख उसके मुँह से निकलते-निकलते बची। वह अपने आपको पहचान नहीं पाया। उसके चेहरे से मांस लगभग गायब था। गाल अंदर धंस गए थे और जबड़ा उभर आया था। रंग काला पड़ गया था और आँखों के नीचे झाइयाँ स्पष्ट दिख रही थीं। वह खौफ से दोबारा बुदबुदाया-"ये क्या हो गया मुझे?" फिर अचानक उसने बेहद खौफनाक बात देखी। उसका चेहरा काफी हद तक फ्रैंकलिन के चेहरे जैसा हो गया था। उसका दिल तेजी से धड़कने लगा। वह काँपते हुए बड़बड़ाया-"यह सच नहीं हो सकता। ये भ्रम है।" उसने आईने को घृणा से दूर फेंक दिया। कई

तरह की भद्दी आवाजों से कमरा गूँज उठा। फिर बड़ी देर तक वह लंबी-लंबी साँसें लेता रहा। उसने महसूस किया, वह ठंडे पसीने से नहा रहा है और पूरा कमरा गोल-गोल घूम रहा है।

इसे दूसरी कोई बात नहीं सूझी। उसने तत्काल एक अनैतिक और दोगला फैसला किया और सोचा कि अब वह यहाँ एक पल नहीं रुकेगा। बिना देर किए वह पलटा और कमरे के बाहर निकला पर देर हो चुकी थी। वह चौंक गया, सामने फ्रैंकलिन खड़े थे मुस्कुराते हुए। उसने नजरें हटाकर लड़खड़ाती जुबान में कहा-''अंदर जरा ज्यादा गर्मी थी इसलिए मैं बाहर...।''

''हाँ-हाँ, जरूर जाइए। मैं घर पर ही रहूँगा,'' फ्रैंकलिन ने कहा और उसे जाते देखने लगे। काफी दूर पहुँचने पर उसने पलटकर देखा। फ्रैंकलिन उसे तब भी देख रहे थे। उनके चेहरे पर कोई अदृश्य पीड़ा थी। उन्होंने एक बीड़ी जलाई और लंबे-लंबे कश लेने लगे।

उस रोज जब रात गहराने लगी तो सन्नाटे में एक विचित्र सनसनी थी। झींगुरों की आवाजें भी नहीं थीं। गली की स्ट्रीट लाइटें अनजान कारणों से गुल थीं और आकाश में तारों की लाचार रोशनी के अलावा कोई प्रकाश वहाँ कहीं नहीं था। आमतौर पर ठहर-ठहर कर गली को गुँजा देने वाली कुत्तों के भौंकने की आवाजें भी बहुत देर से ठहरी थीं। कुत्ते थे नहीं या कहीं दुबक गए थे।

इन सबके विपरीत फ्रैंकलिन के कमरे में जरूर हलचल थी। चिरपरिचित पीली रोशनी में ऊपरी तौर पर मगर सब कुछ शांत लगता था। गिरीश पूरी तरह असंयत था और वही बेस्वाद भोजन करने के बाद खटिया पर लेटा था। हर तरह के प्रदूषण से पीड़ित उसका पेट खौल रहा था। पहले दिन से शुरू हुई खट्टी डकारें आज कुछ अधिक उछालें भर रही थीं और इस वजह से उसके सीने में एक तीखी जलन हो रही थी। वह समय उसके लिए अपूर्व था। सारे कष्ट अपूर्व थे। उसके अंदर चुपचाप निकलकर चले जाने में हुई असफलता का भारी पछतावा था। सिर्फ एक-दो मिनट की देरी की वजह से वह सुख की पुनप्राप्ति में असफल हो गया था।

दूसरी खटिया के चरमराने पर वह अचानक चौंका। फ्रैंकलिन उसी वक्त लेटे थे। तभी कमरे में कोई आवाज आनी शुरू हुई। एक निश्चित आवृत्ति में वहाँ भाँय-भाँय हो रही थी। वह सन्नाटे की आवाज थी। उसके सीने की जलन गले तक पहुँच गई थी। यह चरम था, इन्तेहा थी। किसी क्षण फिर फ्रैंकलिन के नथुनों और पोपले मुँह से खर्राटे की आवाजें आने लगीं। अब सन्नाटा टूट रहा था। गिरीश के लिए अब सब कुछ असहनीय

हो गया था। उस वक्त उसके शिथिल स्नायुओं में भयावह तनाव हो रहा था। उसके अंदर की कोई बेहद मूल्यवान चीज चुक रही थी। वह खुद को कराहता हुआ महसूस कर रहा था। बहुत गहरे पैदा रुदन बाहर आने को उतावला था। उसने आँखें मूँद ली थीं।

अभी इस स्थिति में थोड़ा समय ही गुजरा था कि एक महीन पर तेज सीटी की आवाज ने उसे चौंका दिया। उसकी आँखें खुलते ही एक खौफनाक चीख उसके मुँह से निकली। एक लंबा अनेक रंगों वाला साँप उसके चेहरे के सामने म्याली से लटका झूल रहा था और अपनी जीभ निकालकर फुफकार रहा था। गिरीश के दाँत चीख के बाद आपस में बँध गए थे और वह किट-किट की आवाज के साथ काँप रहा था।

फ्रैंकलिन हड़बड़ाकर जाग गए थे और ''क्या हुआ, क्या हुआ?'' पूछ रहे थे। उससे कुछ बोलते नहीं बन रहा था, वह सिर्फ साँप की तरफ इशारे कर पा रहा था। फ्रैंकलिन ने उस ओर गौर से देखा पर उन्हें कुछ दिखाई नहीं पड़ा।

अभी वे उठकर उसे सँभाल पाते कि वह अचानक उसी बदहवासी में उठा और दौड़ते हुए कमरे से बाहर हो गया। फ्रैंकलिन उसके पीछे चिल्लाते हुए दौड़े पर वह गली में भागता ही चला गया। उनकी बूढ़ी आँखें कुछ दूर ही उसका पीछा कर सकीं, फिर सब कुछ अंधकार में डूब गया। वे वापस मुड़े और निराश होकर अंदर आ गए। कभी न बुझने वाली पीली टिमटिमाती रोशनी और पीली पड़ रही थी। लंबे अंतराल के बाद वे फिर अकेले थे। उन्हें दोबारा नींद का इंतजार था और वे अपने सपने को पूरा करना चाहते थे। उन्हें अफसोस था कि गिरीश ने उनसे उनके सपने के बारे में कभी नहीं पूछा।

वे खटिया पर आँखे मूँदकर लेट गए। उसी वक्त उनके बर्तनों के पास खटर-पटर शुरू हो गई थी। उन्होंने सिर घुमाकर देखा, बर्तनों के बीच वह सरसरा रहा था और उनके उस ओर देखते ही आवाजें आनी बंद हो गई थीं।

राजेंद्र दानी

जन्म : 5 नवंबर, 1953

प्रकाशन : दूसरा कदम, संक्रमण, उनका जीवन, कछुए की तरह, नेपथ्य का अंधेरा, महानगर (कहानी संग्रह)

सम्मान : अखिल भारती मुक्तिबोध पुरस्कार

ग्रामोफोन

–हरि भटनागर

जाफर मियाँ शहनाई के लिए मुहल्ले क्या, अपने पूरे कस्बे में मशहूर थे। तीन-चार बजते ही वे शहनाई लेकर चबूतरे पर आ बैठते और धूप निकलने तक बजाते रहते। वे शहनाई बजाते और ढोल पर साथ देता उनका दोस्त, संभू। संभू शहनाई के बजते ही उठ बैठता और जाफर मियाँ के साथ ताल भिड़ाता। बताने वाले बताते हैं कि शहनाई का ऐसा बजैया और ढोल का ऐसा पिटैया कस्बे क्या, दूर-दूर के इलाके में दूसरा न था। सवेरे शहनाई और ढोल न बजे तो मुहल्ले के लोगों की आँखें न खुलती थीं। लगता कि रात है, अभी सोए रहो।

लेकिन अब न शहनाई है और न ढोल की आवाज। लंबे समय से सब कुछ खामोश है जैसे सज़ा दे दी गई हो। और वास्तव में सज़ा दे दी गई थी। ढोल और शहनाई को नहीं, जाफर मियाँ को। उस सज़ा से जाफर मियाँ इतने गमगीन हुए कि उन्होंने शहनाई बजाना ही छोड़ दिया। शहनाई से जैसे उनका कभी कोई ताल्लुक ही न रहा हो। और जब शहनाई नहीं बज रही थी तो ढोल क्यों बजेगा? संभू ने मारे अफसोस में ढोल खूँटी के हवाले कर दिया।

रहे शहनाई और ढोल के आदी लोग, उन्हें लगता कि शहनाई और ढोल की आवाज़ बस उठने ही वाली है। ऐसा वे सोच तो लेते पर तुरंत ही अपनी गल्ती महसूस करते। शहनाई क्या, जाफर मियाँ ने तो दर्जीगीरी तक छोड़ दी। कुछ नहीं करते वे। चबूतरे पर हर वक्त ग़मगीन से बैठे रहते। न किसी से बोलते; न बतियाते। बीवी सामने खाना रख देती तो खा लेते, नहीं भूखे बैठे रहते। लोग कहते कि दिमाग़ पर असर होने से उनकी बोलती बंद हो गई है। अब खुदा ही उन्हें बचा सकता है।

एक संभू ही है जो कहता फिरता है कि जाफर मियाँ को कुछ नहीं हुआ, सिवाय सदमे के।

खैर, उस सजा की एक छोटी-सी कहानी है।

जाफर मियाँ का कुंदन शाह नाम का एक दोस्त था। वह सुनार था और जाफर मियाँ के घर के ठीक सामने रहता था। जाफर मियाँ ने चोरी के डर से अपनी बेटी के शादी के जेवर और नगदी कुंदन शाह की तिजोरी में रखवा दिए थे। इस ख्याल से कि उसके पास सुरक्षित रहेंगे और निश्फिकर हो गए थे। मगर जब बेटी की सगाई हुई और वे जेवर और नगदी लेने गए तो कुंदन शाह ने साफ इनकार कर दिया कि उसके पास उसने कभी कुछ रखा ही नहीं।

जाफर मियाँ चीखे-चिल्लाये। लड़े-झगड़े। इंसाफ के लिए लोगों को बटोरा लेकिन कोई असर नहीं। कुंदन शाह टस से मस न हुआ। जाफर मियाँ की बीवी की जलती गाली से भी नहीं। आखिर में जाफर मियाँ ने अपना माथा चौखट से फोड़ लिया और दाढ़ी नोच डाली जिसका मतलब सब्र से था और इस बद्दुआ से कि गरीब-गुर्बा का जेवर पैसा मारा है, हजम नहीं होगा, खाक में मिल जाएगा।

मगर कुंदन शाह खाक में मिलने की बजाय दिन पर दिन तरक्की करता जा रहा था। कच्चा कवेलू वाला मकान तोड़वाकर उसने पक्का मकान बनवाना शुरू कर दिया था। दरवाजे पर लोहे का फाटक लगवा दिया था। और रोशनी के लिए एक लट्टू लटका दिया था। जाफर मियाँ के लिए यह सब तकलीफदेह था। पर गाली देने, बाल-दाढ़ी नोचने के सिवा कुछ भी करने में असमर्थ थे।

उस दिन दोपहर को जाफर मियाँ जबरदस्त तकलीफ में थे। इसकी वजह कुंदन शाह न होकर वह इक्का था जिस पर लाउडस्पीकर में तीखी आवाज में फिल्मी गाना बज रहा था। यह आवाज इतनी तीखी और कानफोड़ थी कि जाफर मियाँ बेचैन हो उठे। उन्होंने इक्केवाले को भद्दी गालियाँ देनी शुरू कर दीं जो गाने की धुन पर मटकता हुआ गंदे इशारे करता जा रहा था।

कान में उँगलियाँ रखकर तीखी आवाज से बचा जा सकता था मगर गुस्से के आगे यह सूझ दुम दबाए कहीं दुबकी थी। तकरीबन हजार-एक गालियाँ दे चुके होंगे जाफर मियाँ, फिर चुप हो गए जैसे थक गए हों। लेकिन तीखी आवाज के साथ कान के रास्ते होती हुई एक बात उनके जेहन में जा पहुँची जिससे कि वे अदृश्य से कहीं देखते हुए खोए रहे, फिर मुस्करा उठे। एकाएक फुर्ती से उठे और अंदर आकर बीवी से पूछा कि

ग्रामोफोन कहाँ है? बीवी ने कबाड़ की तरफ इशारा तो कर दिया मगर यह नहीं पूछ पाई कि ग्रामोफोन का क्या करेंगे। वह घबरा-सी गई। अभी तक तो ठीक थे, चुप रहते थे, अब...ग्रामोफोन माँग रहे हैं, इसका मतलब है, कहीं कुछ गड़बड़ है। नहीं, इतने पुराने-कूड़े-कबाड़ की क्या जरूरत थी?

वह जाफर मियाँ को डरी निगाहों से देख रही थी और जाफर मियाँ थे कि कूड़े-कबाड़ को उठा-उठाकर बाहर फेंकते जा रहे थे। पुराने जंग खाये टीन कनस्तर, सड़ी रजाइयाँ, सड़े-गले कपड़ों की कतरनें, पुराने टूटे छाते, खाट के पावे, बाद्य वगैरह-वगैरह बाहर चबूतरे पर फेके जा चुके थे, गर्द के साथ जिनकी तीखी गंध नथुनों में बेतरह चुनचुनाहट मचा रही थी। मगर जाफर मियाँ को इस तीखी गंध का तनिक भी अहसास नहीं हो रहा था। वे हड़बड़ी में थे और ग्रामोफोन को ढूँढ रहे थे। कुछ और सामानों को उलटने-पटकने के बाद ग्रामोफोन मिल गया था। खुशी से वे फूले नहीं समा रहे थे।

बीवी ने पूछा कि ग्रामोफोन का क्या करेंगे तो उनका जवाब था,-आग बरसाएँगे।

आग बरसाएँगे।

हाँ।

ग्रामोफोन से कहीं आग बरसती है! बुदबुदाते हुए बीवी ने कहा।

ऐसी आग बरसेगी कि दफन हो जाएगा साला! अपने में बड़बड़ाते हुए जाफर मियाँ ने हवा में एक भद्दी गाली उछाली और बाहर चबूतरे पर बैठकर ग्रामोफोन के कल-पुर्जों को साफ करने लगे।

बीवी ने सिर पर आँचल डाला और आसमान की ओर हाथ और आँखें कर अल्ला ताला से जाफर मियाँ पर रहम की भीख माँगी।

जाफर मियाँ बुरा-सा मुँह बनाकर बड़बड़ाये कि अल्ला ताला से दुआ माँगने की जरूरत नहीं। आग तो बरसकर रहेगी, अल्ला ताला भी नहीं रोक पाएँगे।

काफी देर तक जाफर मियाँ कल-पुर्जों को साफ करते रहे। आखिर में जब मामला जमता नहीं दिखा तो उन्हें कुछ याद आया। अंदर आए और उस चादर को ढूँढ़ने लगे जिसमें गरम कपड़े बँधे थे जिसे कभी वे ओढ़ा करते थे। चादरा जब मिल गया तो उन्होंने सारे गरम कपड़े जमीन पर पटक दिए और कल-पुर्जो को समेट बाजार आए, अपने दोस्त, दीना के पास जो कभी ग्रामोफोन दुरुस्त करता था, अब लाउडस्पीकर वगैरह दुरुस्त करता है।

दीना ने ग्रामोफोन देखा और हँस पड़ा। एकाएक उसने काम में डूबकर गंभीरता से कहा-कबाड़ी की दुकान पीछे है!

जाफर मियाँ ने उसे गुस्से से देखा।

दीना ने कहा-अबे, ऐसे क्या देखता है! मैं कबाड़ी हूँ जो मेरे पास कबाड़ ले आया।

जाफर मियाँ ने बताया कि इसे दुरुस्त करना है तो दीना ठठाकर हँस पड़ा-अबे, इसे ठीक कराकर सुहागरात मनाएगा?

हाँ, सुहागरात मनाऊँगा। जाफर मियाँ ने कहा और उनकी आँखें गीली हो गई। उन्होंने अपने साथ हुए जुल्म का बयान किया और ग्रामोफोन को 'राइट' कराने की वजह बताई।

यह बाल सुलभ हरकत थी, फिर भी दीना ने जाफर मियाँ का दिल नहीं तोड़ा और न ही किसी तरह की बहस की। ग्रामोफोन की जगह उसने एक टेपरिकार्डर और बहुत सारे सामानों के साथ बड़ा-सा लाउडस्पीकर दिया ताकि वे अपना काम बखूबी कर सकें।

इन सामानों को लिए हुए खुशी से भरे जाफर मियाँ जब अपने दरवाजे इक्के से उतरे तो बीवी ने मत्था पीट लिया, मुहल्ले के लोगों ने उन्हें आश्चर्य से घेर लिया।

थोड़ी देर में तेज आवाज में गाना बजा तो पूरे जश्न का माहौल था। तकरीबन पूरा मुहल्ला इकट्ठा था। बच्चे गाने की धुन पर थिरक रहे थे। उनके बीच जाफर मियाँ थे जो अनेकानेक भाव-मुद्राएँ बना मटकते जाते थे।

एकाएक जाफर मियाँ ने देखा, बीवी नदारद है। यहाँ तक कि मुहल्ले के सारे लोग जा चुके हैं। सिर्फ बच्चे हैं जो थिरक रहे हैं। समझ गए कि पागल हरकत मानकर सब सरक गए! उन्होंने सिर झटका और सोचा कि कोई मुजायका नहीं। कोई रहे या न रहे, वे अपना काम करेंगे, पूरी ताकत से करेंगे।

बाहर वे काफी देर तक खड़े रहे। गली में अँधेरा छाया था। मच्छर कानों से टकरा रहे थे। किसी-किसी घर के लोगों के खाँसने, बोलने-बतियाने और बर्तनों की आवाजें आ रही थीं। कोई कुत्ते को दुरदुरा रहा था। सुभावन के घर का पल्ला शायद खुला था जिसमें लालटेन की पीली, मरी-सी रोशनी सड़क पर पड़ी थी। लेकिन फौरन ही वह गायब हो गई। लगता है किसी ने पल्ला भेड़ दिया। किसी-किसी घर के सामने

चिमगियाँ चमक रही थीं। लोग बीड़ियाँ पी रहे थे।

जाफर मियाँ ने कुंदन शाह के घर की ओर देखा। अँधेरे में ढका था उसका घर। लट्टू भी कई दिन से नहीं जल रहा था। किसी के बोलने-बतियाने की आवाज भी नहीं आ रही थी। शायद सब सो गए थे।

जाफर मियाँ ने साँस खींचकर सिर झटका जैसे कह रहे हों कि सो, चैन से सो! देखता हूँ, कब तक सोते हो।

गली के छोर पर जब कुत्ते रोने लगे, वे लंबे डग बढ़ाते, अपने चबूतरे पर आए और गाने की तीखी आवाज का मुआयना करने लगे।

गाने की तीखी आवाज कुछ ऐसे गूँजती जैसे हजारों-हजार मोर एक साथ चीख-चिल्ला रहे हों। लाखों-लाख कौवे हों जो किसी एक कौवे पर हुए जुल्म पर चीत्कार कर जुल्मी पर टोंट-पंजे मार रहे हों। ऐसा भी लगता जैसे करोड़ों की तादाद में मुसलमान 'हाय हसन' करते हुए छाती पीट रहे हों। उन्हीं के साथ बड़े-बड़े नगाड़े, ड्रम, तासे मानो हाय छोड़ रहे हों।

जाफर मियाँ ठठाकर हँसे!

जिस वक्त तीखी आवाज में गाना बजना शुरू हुआ,कुंदन शाह खाना खा रहा था। उसने झाँककर देखा, जाफर मियाँ उसकी तरफ भद्दे इशारे करते हुए मटक रहे थे। उसे लगा कि यह सब उसे तंग करने के लिए है। क्रोध में पागल होते हुए उसने थाली उठाकर नाली पर फेंक दी। दरवाजे पर लात मारी। बीवी को भद्दी गालियाँ देते हुए जो उस पर बड़बड़ाने लगी थी, खाट पर लेट गया, दाँत पीसते हुए। एकाएक मन हुआ कि उठे और जाफर मियाँ के मुँह पर तेजाब डाल दे। वह उठा लेकिन ऐसा करने की हिम्मत न जुटा पाया। काँप गया।

एकाएक सोचा कि वह इतना परेशान क्यों है? क्यों मान बैठा कि जाफर मियाँ का गाना-बजाना उसे तंग करने के खातिर है। जाफर तो पागल है, पागल! उसकी पागल हरकत पर वह क्यों परेशान होता है? उसने ऐसा सोचा मगर दूसरे पल फिर परेशान हो उठा। जाफर उसे देखकर भद्दे इशारे कर रहा था और मटक रहा था, क्यों? उसे तंग करने के लिए ही! हे भगवान!!! उसने सोने की कोशिश की लेकिन वह रात भर सो न सका। बुरी तरह करवटें बदलता रहा। रह-रहकर बैठता और गालियाँ बकता।

सवेरे वह बेतरह बौखलाया हुआ था। उसने जोरों से दरवाज़ा खोला। अगल-बगल देखा, कोई न दिखा तो बाहर आ खड़ा हुआ लेकिन तुरंत ही घर में तेज़ी से घुसा

और जोरों से दरवाजा बंद किया। फिर पता नहीं क्या सोचकर उसने उतने ही जोरों से दरवाजा खोला और बाहर आ खड़ा हुआ। बेचैनी उसकी और बढ़ गई थी। दिमाग की नसों में तनाव और आ गया था। भिचीं मुट्ठियाँ काँप रही थीं। वह लड़ने के पूरे मूड में दिख रहा था। एकाएक वह किसी पागल की तरह बड़बड़ाता हुआ फाटक का खटका सरका नल की ओर फुर्ती से बढ़ा जहाँ पानी भरने वाले लोगों की भीड़ थी। उनके पास पहुँचकर वह हाथ लहरा-लहरा कर लोगों से कुछ कहने लगा। सुनाई तो पड़ नहीं रहा था। सिर और छाती पीटने से लग रहा था कि वह अपने ऊपर होने वाले जुल्म की शिकायत कर रहा है।

जाफर मियाँ बेहद खुश थे उस दिन। उनका निशाना सही जगह पर लगा था।

दो-चार रोज कुंदन शाह नहीं दिखा। जाफर मियाँ की बेचैनी बढ़ी। उन्होंने लोगों से पूछा तो पता चला कि पास के शहर में पायलें खरीदने गया है। जाफर मियाँ को यकीन नहीं हो रहा था क्योंकि उन्होंने उसे निकलते देखा ही नहीं। हर वक्त तो वे उस पर निगाह रखे हैं, कब निकल गया? फिर सोचने लगे कि हो सकता है अँधेरे में निकल गया हो!

खैर, कुंदन शाह घर में हो या न हो, जाफर मियाँ ने तीखी आवाज में मंदी नहीं आने दी।

एक दिन जाफर मियाँ की बीवी बाजार से सौदा-सुलुफ लेके लौटीं तो उन्होनें बताया कि कुंदन शाह तो कहीं नहीं गया, लोग झूठ बोलते हैं। वह तो बिस्तरे पर पड़ा है। कहते हैं कि उसके सिर में बेपनाह दर्द रहता है। बीवी-बच्चे पैरों से कचरते हैं तब भी चैन नहीं मिलता....

किसी वैद-हकीम को क्यों नहीं दिखाता? जाफर मियाँ ने संजीदगी ओढ़ते हुए कहा।

मुए ने जैसा करा है, वैसा तो भरेगा! इसमें वैद-हकीम क्या कर लेंगे।

वैद-हकीम तकलीफ की दवा देंगे। जाफर मियाँ कुटिलता से मुस्कुराए, तुम जाकर कहो न कि इलाज कराए!

हाँ, मैं कहूँगी उस कमीन, मुँहजले से! बीवी ने कुढ़कर कहा,-मर जाए तो अरथी पर थूकूँ तक नहीं!

ये दर्द क्यों हो गया उसे? जाफर मियाँ ने निहायत ही संजीदा होकर पूछा।

पता नहीं। पान की पीक थूकते हुए उन्होंने कहा,–भाड़ में जाए। यकायक उन्होंने आँखें गोल करके पूछा–तुम इतनी पूछ–ताछ क्यों कर रहे हो?

कुछ नहीं, बस यूँ ही पूछ रहा था। कुछ भी हो, आखिर अपना पुराना दोस्त ही तो है–उन्होंने बीवी को बहकाना चाहा।

बीवी यकायक भावुक हो गई, बोली–यह तो मैं भी सोच रही थी। पूरी बात तो नहीं, इत्ता जानती हूँ कि उसे नींद नहीं आती रात–रात। जागता रहता है। हर वक्त उसे लगता कि बड़ी–बड़ी टीन की चद्दरें, बड़े–बड़े ड्राम कोई छत पर पटक रहा हो...

जाफर मियाँ मुस्कुराहट छिपाए उठे और बाहर आ खड़े हुए जहाँ तीखी आवाज के सिवा कुछ न था। उस तीखी आवाज में उन्हें लगा कि हजारों–हजार आदमी औरत–बच्चे चीख–चिल्ला रो रहे हों। जैसे भीषण आग लगी हो, सब चीत्कार कर रहे हों। कोई बचाने वाला न हो। उन्हें लगा कि यह रोने–चीखने, चीत्कार करने वाले और कोई नहीं, वे ही खुद हैं! वे सोचने लगे कि इन्हें कहीं का न छोड़ने वाला क्या चैन से बैठ सकता है! नहीं! कतई नहीं!!! यकायक वे गुस्से में भर उठे और उन्होंने मुट्ठियाँ भींचकर तेज आवाज में कई गालियाँ बुलंद कीं।

इस बीच एक रिक्शा कुंदन शाह के दरवाजे पर आकर रुका। रिक्शावान जमीन पर उकड़ूँ बैठकर बीड़ी पीने लगा। थोड़ी देर में एक बीमार–सा आदमी जो गंदे–मुचमुचे कपड़े में लिपटा–सा था, जिसे कोई औरत पकड़े हुए, सँभालती ला रही थी, रिक्शे की ओर बढ़ा। जाफर मियाँ ने गौर से देखा, यह आदमी और कोई नहीं, कुंदन शाह था और उसको सँभालने वाली कुंदन शाह की बीवी थी। कुंदन शाह का हुलिया बदल गया था। चेहरे पर पीलापन छा गया था और उसमें सिकुड़न बासी मूली जैसी थी। सिर पर दाढ़ी के बाल जरूरत से ज्यादा सफेद और बेतरतीब हो रहे थे।

रिक्शेवान ने कुंदन शाह को रिक्शे में बैठाने में मदद दी और रिक्शा आगे बढ़ा ले चला।

कुंदन शाह डॉक्टर केपास गया। डॉक्टर ने उसकी नब्ज पर उँगलियाँ रखीं। पलकें फाड़ी और उनमें टार्च की रोशनी मारी। जीभ बाहर निकलवाई और मुँह बड़ा–सा फड़वाया। जब वह ठीक से मुँह नहीं फाड़ पाया तो डॉक्टर ने मुँह नहीं देखा। पीठ और छाती पर आला फेरा और घुटनों पर उँगलियाँ बजाईं।

यकायक कंपाउंडर पर किसी बात पर चीखते हुए डॉक्टर ने दवा की पर्ची लिखी और पाँच दिन के बाद आने को कहा।

कुंदन शाह ने दवा खाई और पाँच दिन के बाद डॉक्टर के पास पहुँचा। इस बार डॉक्टर ने सरसरी नजर उस पर डालकर पहले लिखीं दवाइयाँ फिर से खाने को लिख दी और पाँच दिन आकर हाल बताने को कहा।

डॉक्टर की हिदायत मानते हुए कुंदन शाह पाँच दिन के बाद काँखता–कूँखता फिर किसी तरह पहुँचा। इस बार उसकी हालत पहले से ज्यादा पस्त थी। पहले से ज्यादा टूटा था। डॉक्टर ने उसे ऊपर से नीचे तक देखा और माथा सिकोड़कर सामने खड़ा हो गया। जैसे मर्ज को फिर से जाँचने का विचार कर रहा हो। और बाएँ हाथ की उँगलियाँ होंठों पर दौड़ाने लगा। यकायक उसने उसकी जाँच शुरू कर दी। पलकें फाड़कर देखीं। जीभ बाहर निकलवायी। नाखून देखे। सीने और पीठ पर आला फेरा और गहरी साँस छोड़कर कुर्सी पर पसर गया। माथे पर उसके बल था। आँखें सिकुड़ी थीं और होंठ भिंचे। लगता था जैसे अभी–अभी चिल्ला पड़ेगा। लेकिन वह चिल्लाया नहीं। बस इतना बोला कि तुम्हें कोई बीमारी नहीं।

कोई बीमारी नहीं! कुंदन शाह काँखते हुए चुंधी आँखें मिचमिचाता किसी तरह उठकर बैठता हुआ, रोनी आवाज में बोला–कोई बीमारी नहीं तो हालत क्यों पतली है?

इस प्रश्न पर डॉक्टर कुछ नहीं बोला, एकटक उसे देखता रहा।

पत्नी कुछ बोलने को हुई कि कुंदन शाह ने आगे कहा–रात–रात भर नींद नहीं आती, कहीं उस दर्जी, उस जाफर की कारस्तानी तो नहीं...

कौन जाफर? कौन दर्जी? डॉक्टर ने सख्त नजरों से उसे देखा और गुस्से में कहा,–मैं किसी दर्जी–बर्जी को नहीं जानता!

सहसा कुंदन शाह की बीवी कड़कती आवाज में हाथ लहराती बोली–जाफर मुआ दर्जी है, मुँहजला! दिन–रात बाजा आग की तरह फूँके रहता है, उसका नाश जाए!

डॉक्टर सख्त होकर बोला–आप क्या चाहती है कि मैं जाकर उसका बाजा बंद कराऊँ! डॉक्टर झल्ला उठा यकायक और मेज पर मुक्के पटकने लगा–आप दोनों पागल हो गए हैं, पागल! चले जाइऐ यहाँ से!!!

लेकिन साब, मेरी तबीयत तभी से गड़बड़ है–कुंदन शाह काँपते पैरों पर खड़ा अपने दोनों हाथ सिर पर रखे बुदबुदाया,–उसी ने टेप बजा–बजाकर...

इधर डॉक्टर दोनों की बातों पर सिर पीट रहा था, उधर जाफर मियाँ से एक पड़ोसी ने पूछा,–क्यों मियाँ, आज तुम्हारी दुकान ठंडी क्यों है? कोई गाना वाना नहीं

हो रहा है?

जाफर मियाँ ने सिर हिलाते हुए कहा–बजाऊँगा, बजाऊँगा। परेशान न हो! कुंदन शाह को डॉक्टर के यहाँ से तो लौटने दो!

लेकिन जब कुंदन शाह डॉक्टर के यहाँ से लौटा, रिक्शे से किसी तरह उतर नहीं पा रहा था और आखिर में सीट से जमीन पर आ गिरा किसी कटे पेड़ की तरह–जाफर मियाँ अपने को रोक न सके। टेपरिकार्डर को परे करते तेजी से दौड़े।

कुंदन शाह के माथे पर उन्होंने हाथ फेरा। वह बेहोश हो गया था। दौड़कर जाफर मियाँ लोटे में पानी लाए और उसके मुँह पर पानी के छींटे मारे।

कुंदन शाह ने जब अपनी आँखें खोली और फड़फड़ाते होंठो से 'जाफर भाई' बुदबुदाया जैसे अंतिम साँस ले रहा हो–जाफर मियाँ की आँखों से झर-झर आँसू बह निकले।

थोड़ी देर बाद जाफर मियाँ चबूतरे पर बैठे शहनाई बजा रहे थे। शहनाई की आवाज से संभू बैठा न रहा। घर से वह ढोल बजाता निकला।

जाफर मियाँ की बीवी यह सब देख, सिर पर आँचल डाल अल्ला ताला से दुआ माँग रही थीं।

हरि भटनागर

प्रकाशन : सगीर और उसकी बस्ती के लोग, नाम में क्या रखा है, बिल्ली नहीं दीवार (कहानी संग्रह)

सम्मान : पुश्किन सम्मान